BED-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

शिक्षा संदर्भ और बंधता
Education Context and linkage

BED–06

शिक्षा संदर्भ और बंधता

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

अनुक्रमणिका

इकाई व इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 – शिक्षा का अर्थ एवं सम्प्रत्यय	6 – 20
इकाई 2 – शिक्षा के लक्ष्य, प्रवृतियां	21 – 40
इकाई 3 – शिक्षा के अभिकरण : औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरोपचारिक	41 – 65
इकाई 4 – शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक	66 – 75
इकाई 5 – समाज की संरचना शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन	76 – 96
इकाई 6 – विद्यालय का सामाजिक संदर्भ : विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध	97 – 108
इकाई 7 – शिक्षा, मानव संसाधन और विकास	109 – 122
इकाई 8 – शिक्षा मानव अधिकार के रूप में : भारत में बच्चों की स्थिति	123 – 134
इकाई 9 – बाल केन्द्रित शिक्षा	135 – 146
इकाई 10 – जनसंख्या शिक्षा	147 – 158
इकाई 11 – पर्यावरण शिक्षा	159 – 175
इकाई 12 – भारत में वंचित वर्ग के लिए शिक्षा	176 – 188
इकाई 13 –स्त्री शिक्षा एवं भारत में लैंगिक असमानता	189 – 202
इकाई 14 – मूल्यपरक शिक्षा	203 – 214
इकाई 15 –भारत में राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकीकरण और शिक्षा	215 – 223
इकाई 16 – खुला अधिगम समाज, उसकी विशेषताएंएवं खुली अधिगम प्रणाली	224 – 239
इकाई 17 – शिक्षा और भविष्य का भारतीय समाज	239 – 254

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

डॉ. दामीना चौधरी

सह आचार्य, शिक्षा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय. कोटा (राज.)

सदस्य

1. प्रो. पी. के. साहू
   शिक्षा विभाग
   इलाहाबाद विश्वविद्यालय (उप्र.)
2. प्रो. आर. पी. श्रीवास्तव (से.नि.)
   जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3. प्रो. आर. जे. सिंह
   लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ प्र.)
4. प्रो. डी. एन. सनसनवाल
   देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
5. प्रो. एस. बी. मेनन
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
6. प्रो. स्नेह. एम. जोशी
   एम. एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा
7. प्रो. सोहनवीर सिंह चौधरी
   इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
8. डॉ. एम. एल. गुप्ता
   सह आचार्य शिक्षा (से. नि.)
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
9. डॉ. अनिल शुक्ला
   लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उप्र.)

संपादन एवं पाठ लेखन

संपादक

प्रो. दिव्य प्रभा नागर

हेड एवं डीन (शिक्षा)
लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
जनार्दन राय नागर
राजस्थान विद्यापीठ
दबोक, उदयपुर (राज.)

पाठ लेखक

- प्रो. मधु सूदन त्रिवेदी
  विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र
  ज. रा. ना. रा. वि. उदयपुर
- डॉ. शशि चित्तौड़ा
  लो.ति.शि.प्र.म. डबोक, उदयपुर
- डॉ रमेशचन्द शर्मा
  ह.उ.म.शि.प्र.म., हटुण्डी, अजमेर
- डॉ. रचना राठौड़
  लो.ति.शि.प्र.म. डबोक, उदयपुर
- डॉ उषा चन्दर
  इग्नू, नई दिल्ली

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ) नरेश दाधीच	प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रेल 2012 ISBN - 13/978–85–8496–334–2

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव, व. म. खु. विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई 1– शिक्षा का अर्थ एवं सम्प्रत्यय
Unit 1–Concept and Meaning of Education

इकाई की रूपरेखा (Outline Of the unit)

1.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

1.2 विषय प्रवेश (Introduction)

1.3 शिक्षा का सम्प्रत्यय एवं परिभाषाएँ (Concept and Definitions of Education)

1.3.1 भारतीय मत (Indian Concept)

1.3.2 पाश्चात्य मत (Western Concept)

1.4 शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrow Meaning of Education)

1.5 शिक्षा का व्यापक अर्थ (Broad Meaning of Education)

1.6 शिक्षा का समन्वित अर्थ (Comprehensive Meaning of Education)

1.7 शिक्षा प्रक्रिया के अंग–मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक (Aspects of Educational Process – Psychological and Sociological)

1.8 शिक्षा की प्रकृति–कला अथवा विज्ञान (Nature of Education–Art or Science)

1.9 शिक्षा के आधार (Basis of Education)

1.9.1 दार्शनिक आधार (Philosophical Basis)

1.9.2 मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Basis)

1.9.3 वैज्ञानिक आधार (Scientific Basis)

1.9.4 समाजशास्त्रीय आधार (Sociological Basis)

1.10 शिक्षा में प्रचलित आधारभूत सम्प्रत्यय (Popular Fundamental Concept of Education)

1.10.1 अनुदेशन (Instruction)

1.10.2 विद्यालयीकरण (Schooling)

1.10.3 प्रशिक्षण (Training)

1.11 अनुदेशन, विद्यालयीकरण प्रशिक्षण व शिक्षा में अन्तर (Difference between Instruction, Schooling, Training and Education)

1.12 शिक्षा का जीवन में महत्व शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रकिया है (Importance of Education in Life: Life Long Process in Education)

1.13 सार–संक्षेप (Summary)

1.14 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the unit)

1. शिक्षा के अर्थ एवं सम्प्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
2. शिक्षा के संकुचित एवं व्यापक सम्प्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
3. शिक्षा के समन्वित अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
4. शिक्षा प्रकिया को समझ सकेंगे।
5. शिक्षा की प्रकृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. शिक्षा के प्रमुख आधारों को समझ सकेंगे।
7. शिक्षा में प्रचलित आधारिक सम्प्रत्यय में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
8. शिक्षा का जीवन में महत्व अर्थात शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रकिया है, जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 विषय प्रवेश (Introduction)

बालक जब जन्म लेता है तो असहाय एवं असामाजिक होता है। वह न बोलना जानता है न चलना फिरना। उसका न कोई मित्र होता है न कोई शत्रु। यही नहीं, उसे समाज के रीति–रिवाजों तथा परम्पराओं का ज्ञान भी नहीं होता है और न ही उसमें किसी आदर्श तथा मूल्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा पाई जाती है। परन्तु जैसे–जैसे वह बड़ा होता है, वैसे–वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पड़ता जाता है। इस प्रभाव के कारण उसका जहां एक ओर शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास होता है वहां दूसरी ओर उसमें सामाजिक भावना भी विकसित होती जाती है। इस प्रकार हम देखतें है कि बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन के लिए शिक्षा की परम आवश्यकता है। शिक्षा माता के समान पालन–पोषण करती है, पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यो में लगाती है तथा पत्नी की भांति सांसारिक चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा ही हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों ओर फैलता है तथा शिक्षा ही हमारी समस्याओं को सुलझाती है एवं हमारे जीवन को सुसंस्कृत बनाती है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश पाकर कमल का फूल खिल उठता है तथा सूर्य अस्त होने पर कुम्हला जाता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के प्रकाश को पाकर व्यक्ति कमल के फूल की भांति खिल उठता है तथा अशिक्षित रहने पर दरिद्रता, शोक एवं कष्ट के अंधकार में डुबा रहता है। अर्थात शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। इस प्रकार एक ओर शिक्षा बालक का सर्वागिण विकास करके उसे तेजस्वी, बुद्धिमान, चरित्रवान विद्वान तथा वीर बनाती है, उसी प्रकार दूसरी ओर शिक्षा समाज की उन्नति के लिए भी एक आवश्यक तथा शक्तिशाली साधन है। व्यक्ति के समान समाज भी शिक्षा के चमत्कारों से लाभान्वित होता है। शिक्षा के द्वारा समाज भावी पीढ़ी के बालकों को उच्च आदर्शो, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं आदि सांस्कृतिक सम्पति को इस प्रकार से हस्तान्तरित करता है कि उनके हृदय में देश प्रेम तथा त्याग की भावना प्रज्ज्वलित हो जाती है। जब ऐसी भावनाओं तथा आदर्शो से ओत–प्रोत बालक समाज अथवा देश की सेवा या कार्य करेंगे तो समाज भी निरन्तर उन्नति के शिखर पर चढ़ता ही रहेगा। इस प्रकार व्यक्ति एवं समाज दोनों ही के विकास में शिक्षा आवश्यक है।

1.3 शिक्षा का सम्प्रत्यय एवं परिभाषाएँ (Concept of Education and Definitions)

शिक्षा के सम्प्रत्यय और परिभाषाओं को भारतीय एवं पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में रख कर समझना उपयुक्त रहेगा। दोनों मतों का उल्लेख इस प्रकार है;–

(i)भारतीय मत (Indian view)

शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्षा' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है सीखना या सीखाना। शिक्षा के लिए प्राचीन युग में 'विद्या' शब्द का प्रयोग भी किया जाता था। विद्या शब्द 'विद' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है 'जानना'। विद्या का तात्पर्य है – ज्ञान। वेदों में कहा गया है कि विद्या वह ज्ञान है जिसे प्राप्त कर लेने के बाद और कुछ जान लेने को शेष नहीं रहता अर्थात विद्या का अर्थ आत्म ज्ञान समझा जाता था।

परिभाषाऐ (Definitions)

यजुर्वेद – "विद्यायामृतमश्नुतें' अर्थात विद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

गीता – "सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात वही विद्या है जो बन्धन से मुक्त करावें।

स्वामी विवेकानन्द–"शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।" (Education is the manifestation of perfection already in man).

रविन्द्रनाथ ठाकुर – "शिक्षा का अभिप्राय है – मस्तिष्क को इस योग्य बनाना कि वह चिरन्तन सत्य को पहचान सके, उसके साथ एक रूप हो सके और उसे अभिव्यक्त कर सके।

अरविन्द–"बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति में जो कुछ सर्वोतम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अन्तरंग और जीवनपूर्ण है उसको अभिव्यक्त करना होना चाहिए, वह उसके अन्तरंग गुण और शक्ति का सांचा है।"

महात्मा गाँधी – "शिक्षा से मेरा तात्पर्य है –व्यक्ति के शरीर मन और आत्मा का विकास।" (By Education I mean, an all round drawing out of the best in child and man–body,mind and spirit).

(ii) पाश्चात्य मत (Western view)

शिक्षा का अंग्रेजी पर्याय ' Education ' शब्द है जिसकी व्युत्पति लेटिन भाषा के शब्द Educatum, Educare या Educare से हुई है। Educatum का अर्थ है 'अध्यापन की क्रिया (The Act of Teaching or Training), Educare का अर्थ है आगे बढ़ाना, बाहर निकालना या विकसित करना (To Educate, To Bring Up, Educere) का विकसित करना अथवा निकालना (To Lead Out) कुछ लोगों का मत है कि E (ई) अर्थात भीतर (Out Of) तथा (Duco) (ड्यूको) अर्थात बाहर करना (Lead Forth) अत: Education शब्द का अर्थ हुआ आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रेरित करना। यह अर्थ भारतीय मत के अनुकूल प्रतीत होता है। भारतीय एवं पाश्चात्य मत कमश: आध्यात्मिक एवं भौतिक दृष्टिकोण के परिचायक हैं किन्तु तात्विक रूप से उनमें अन्तर्विरोध नहीं है।

पाश्चात्य मत के अनुसार शिक्षा सम्बन्धी विचारों को तीन प्रमुख दार्शनिक विचारधाराओं के अन्तर्गत वर्गीकृत कर देखना उचित होगा –

(1) आदर्शवादी दर्शन (Idealism) के अनुसार निम्नांकित कुछ प्रमुख चिन्तकों द्वारा दी गई परिभाषाएँ हैं -

प्लेटो (Plato) – "शिक्षा उसे कहते हैं जो सद्गुणों का विकास करती है।"

कॉमिनियस (Comenius) – "शिक्षा द्वारा विकसित ज्ञान व्यक्ति में नैतिकता और धार्मिकता उत्पन्न करता हैं|"

मिल्टन (Milton) – "शिक्षा का ध्येय परमात्मा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना, आत्मा को उन्नत करना तथा दैवी कृपा से एकता सीखना।"

पेस्टालॉजी (pestalozi) – "शिक्षा मनुष्य की समस्त शक्तियों का स्वाभाविक, प्रगतिशील एवं सर्वमान्य विकास है।" (Education is a natural harmonious and progressive development of man's Innate powers).

एडम्स (Adams) – "शिक्षा वह पूर्व नियोजित प्रकिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विकास हेतु विचारों का आदान–प्रदान करता है तथा ज्ञान के प्रबन्ध द्वारा परिवर्तन करता है।"

काण्ट (Kant) – "शिक्षा व्यक्ति की क्षमतानुसार उसकी पूर्णताओं का विकास है।"

हार्न (Horn) – 'शिक्षा द्वारा मनुष्य प्रकृति, समाज तथा विश्व के अन्यतम स्वरूप से तदात्मय स्थापित करता है।"

टी.पी.नन (T.P.Nunn) – "शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है। जिससे व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार मानव जीवन हेतु योगदान करता है। (Education is the development individuality so that he can make an original contribution to human life according to his best capacity).

फिक्टे (Ficte) – "शिक्षा ईश्वरीय इच्छा का अन्वेषण है।"

हर्बार्ट (Herbert) – "शिक्षा अच्छे नैतिक चरित्र का विकास है।" (Education is the development of good moral character)

आदर्शवादी दर्शन से प्रेरित उपरोक्त शिक्षा की परिभाषाएँ भारतीय मत के अधिक निकट हैं।

(2) प्रकृतिवादी दर्शन (Naturalism) के समर्थक कुछ प्रमुख शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है :–

रूसो (Roussau) – "शिक्षा जीवन है और उसका उद्देश्य व्यक्तित्व उत्कर्ष करना है।"

हर्बार्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) – 'पूर्व जीवन की प्राप्ति ही शिक्षा है।"

रॉस (Ross) – 'शिक्षा बालक के स्वाभाविक तथा प्राकृतिक गुणों का विकास करती है।"

फॉबेल (Froebel) – "शिक्षा प्रकिया द्वारा बालक की जन्मजात क्षमताओं की अभिव्यक्ति में सहायता मिलती है।" (Education is the process by which the child makes its internal,external.)

उपरोक्त परिभाषाओं से प्रकट होता है कि भारतीय मत में प्रकृतिवादी दर्शन का आदर्शवादी दृष्टिकोण से समन्वय किया गया है।

(3) प्रयोगवादी या अर्थ क्रियावादी दर्शन (Pragmatism) के अनुसार कुछ प्रमुख परिभाषाएँ है:–

जॉन डीवी (John Dewey) – "शिक्षा अनुभवों के सतत् पुनर्निर्माण के माध्यम से जीवन की प्रकिया है। यह व्यक्ति में उन समस्त क्षमताओं का विकास है जिसके द्वारा वह अपने पर्यावरण को नियन्त्रित करता है तथा अपनी उपलब्धि की सम्भावनाओं को पूरी करता है।" (Education is the living through a continuous reconstruction of experiences.It is the development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfil his possibilities.)

विलियन जेम्स (William James) – "शिक्षा ऐसी क्रिया की अर्जित आदतों का संगठन जो व्यक्ति को अपने भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से समायोजन योग्य बनाये।" (Education is the organization of acquired habits of such action as will fit the individual to his physical and social environment')

भारतीय मत में इन परिभाषाओं में व्यक्त शिक्षा की जीवनोपयोगिता एवं समाज सापेक्षता का समन्वय किया गया है। इनमें शिक्षा का सम्प्रत्यय समन्वयपूर्ण एवं सन्तुलित है। शिक्षा की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है किन्तु सभी दार्शनिक विचारधाराओं के समन्वय की दृष्टि से यह कहना उपयुक्त होगा कि –

'शिक्षा के उद्देश्य आदर्शवादी साधन प्रकृतिवादी तथा वास्तविक प्रकिया का दृष्टिकोण प्रयोजनवादी होना चाहिए।" (Aims of Education should be idealistic,means be naturalistic and the approach t actual process be pragmatic.)

स्वामूल्यांकन

(Self Evaluation)

1. भारतीय मत के अनुसार शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए|
2. पाश्चात्य मत के अनुसार शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए|

1.4 शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrower meaning of Education)

संकुचित अर्थ में शिक्षा योजनाबद्ध रूप में निर्धारित कर दी जाती है। ऐसी शिक्षा का रूप औपचारिक होता है अर्थात वह एक निश्चित स्थान पर विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में दी जाती है तथा उसकी एक निश्चित अवधि, निश्चित पाठ्यकम तथा निश्चित योग्यता के शिक्षक होते हैं। इस संकुचित अर्थ में शिक्षा काल विद्यालय में बालक के प्रवेश होने से प्रारम्भ होता है तथा शिक्षा संस्था को छोड़ने पर उसकी समाप्ति मानी जाती है। इस प्रकार संकुचित अर्थ में उन कतिपय प्रभावों तक सीमित है जो समाज प्रत्येक रूप में मनुष्य के जीवन

पर डालता है। **टी. रेमंट** (T.Raymont) के शब्दों में – "शिक्षा से हम उन विशेष प्रभावों को समझते हैं जिनको समाज का वयस्क वर्ग जान बुझकर निश्चित योजना द्वारा अपने से छोटों पर तथा तरूण वर्ग पर डालता है।" मिल के शब्दों में – "शिक्षा द्वारा एक पीढ़ी के लोग दूसरी पीढ़ी के लोगों में संस्कृति का संक्रामण करते हैं ताकि वे उसका संरक्षण कर सकें और यदि संभव हो तो उसमें उन्नति भी कर सकें।"

"The culture which each generation purposefully gives to those who are be its successors in order to quality them for at list keeping up and if possible for raising the level of improvement which has been attained."–John Sturat Mill.

एस एस मैकेन्नी (S.S.Mackenge) के अनुसार – "संकुचित अर्थ में किसी भी ऐसे सचेतन प्रयास को शिक्षा कहा जा सकता है जो हमारी क्षमताओं का विकास एवं वृद्धि करें।" An Narrower sense Education may be taken to mean any consciously directed effort to develop and cultivate our powers.)

प्रोफेसर ड्रीवर –"शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमें तथा जिसके द्वारा बालक के ज्ञान, चरित्र तथा व्यवहार को एक विशेष साँचे में ढाला जाता है।" "Education is a process in which the knowledge,character and behaviour of the young are shaped and moulded." Prof. Drever.

1.5 शिक्षा का व्यापक अर्थ (Wider meaning of Education)

व्यापक दृष्टि में शिक्षा का अर्थ बालक के उन सभी अनुभवों से है जिसका प्रभाव उसके ऊपर जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पड़ता है। अर्थात शिक्षा वह अनियन्त्रित वातावरण है जिसमें रहते हुए बालक अपनी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्रता पूर्वक नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है तथा विकसित होता है। शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रकिया है। ऐसी शिक्षा किसी विशेष व्यक्ति, समय, स्थान अथवा देश तक सीमित नहीं रहती अपितु जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर बालक जो कुछ भी सीखता है वे सब उसके शिक्षक हैं, जिन्हें वह सीखाता है वे सब उसके शिष्य हैं तथा जिस स्थान पर सीखने व सीखाने का कार्य चलता है वह विद्यालय हैं। शिक्षा बालक के प्राकृतिक विकास की प्रकिया है।

जॉन स्टुअर्ट मिल के शब्दों में –"विस्तृत या व्यापक अर्थ में शिक्षा चरित्र और मानवीय क्षमताओं पर उन बातों द्वारा पड़े हुए अप्रत्यक्ष प्रभावों का भी बोध कराती है जिनके प्रत्येक प्रयोजन नितान्त भिन्न होते हैं।"

डमविल (Dumville) के अनुसार, "शिक्षा के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रभाव आते हैं, जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं' (Education in its wider sense includes all the influeness which act upon an individual during the passage from the cradle to the grave).

1.6 शिक्षा का समन्वित अर्थ (Comprehensive meaning of Education)

जॉन डीवी के अनुसार, "शिक्षा गत्यात्मक विकासोन्नमुखी एवं बालक, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए।" अर्थात शिक्षा की गत्यात्मकता का अर्थ है कि शिक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति की क्षमताओं एवं गुणों की अभिव्यक्ति के अवसर देकर उसके व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास होता है तथा ऐसी शिक्षा व्यक्ति को परिवर्तित सामाजिक पर्यावरण से समन्जन करने योग्य बनाती है। शिक्षा प्रकिया द्वारा व्यक्ति का इस प्रकार विकास किया जाना वांछनीय है जिसमें वह समाज एवं राष्ट्र का एक सुयोग्य नागरिक बन अपना सक्रिय योगदान कर सकें।

1.7 शिक्षा प्रक्रिया के अंग – मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक (Pspects of Educational Process Psychological and Social)

बालक की मूल प्रवृतियों, क्षमताओं, योग्यताओं आदि का अध्ययन मनोवैज्ञानिक अंग का भाग है जबकि मानसिक अंग के अन्र्तगत उन बातों का निर्धारण किया जाता है जिससे कि बालक समाज के आदर्शो के अनुकूल स्वयं का संमजन कर सके तथा सामाजिक परिवर्तन में भी योगदान दे सके। कुछ विद्वान जैसे **एडम्स** (Admas) शिक्षा की द्विमुखी प्रकिया (Bi polar Process) मानते हैं जिसमें एक व्यक्ति (शिक्षक) दूसरे व्यक्ति (बालक) को ज्ञान प्रदान कर उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करते हैं। **रॉस** का भी यही मत है कि चुम्बक के समान शिक्षा में भी दो ध्रुवों का होना अत्यावश्यक है। ये दोनों ध्रुव शिक्षक एवं शिक्षार्थी हैं जिनके मध्य अन्त: क्रिया होती है जो ज्ञानार्जन या व्यावहारिक परिवर्तन का आधार है। अब शिक्षाविद् शिक्षा की प्रकिया को त्रिमुखी या त्रिध्रुवीय प्रकिया (Tri–polar process) मानने लगे हैं। **जॉन डीवी** ने शिक्षा प्रकिया में दो तत्वों शिक्षक एवं शिक्षार्थी के अतिरिक्त तीसरे महत्व समाज को भी सम्मिलित किया है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सामाजिक परिवेश शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षाक्रम को प्रभावित करता है तथा शिक्षा प्रकिया द्वारा बालक में सामाजिक कुशलता उत्पन्न करने पर बल देता है। ताकि शिक्षार्थी समाज के साथ समायोजन कर सकें। विकसित एवं विकासशील समाज में शिक्षा का यही स्वरूप मान्य है।

शिक्षा की भारतीय संकल्पना तथा उस पर आधारित शिक्षा की पभिाषाएँ उपरोक्त समन्वित आधुनिक संकल्पना के अनुकूल है क्योंकि वे शिक्षा को एक प्रकिया मानते हुए व्यक्ति एवं समाज दोनों पक्षों का समन्वय करती है। भारतीय शिक्षा भारतीय संस्कृति के पोषण एवं विकास में सहायक है।

1.8 शिक्षा की प्रकृति : कला अथवा विज्ञान?(Nature of Education : Science or Art)

शिक्षा की संकल्पना के साथ यह पक्ष भी जुड़ा है कि शिक्षा की प्रकृति क्या है? शिक्षा कला है या विज्ञान? इससे पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि कला एवं विज्ञान किसे कहते हैं? कला का प्रयोजन है –"करना कुछ प्रभाव डालना' अर्थात कला के माध्यम से मानवीय प्रकियाओं का रूपान्तरण किया जाता है। जबकि विज्ञान का अर्थ "ज्ञान अर्थात सत्य का धारण है। विज्ञान वर्गीकृत सिद्धान्त और निरीक्षण व परीक्षण करने योग्य ज्ञान का समाहार है जो तार्किक कम में व्यवस्थित किया जाता है। कला एवं विज्ञान की इस व्याख्याओं के संदर्भ में शिक्षा की प्रकृति का निर्धारण किया जाना चाहिए।

यदि हम शिक्षा की विषय–वस्तु, स्वरूप, विधि तथा उड़ेश्यों का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि शिक्षा न केवल कला है और न केवल विज्ञान है। अपितु वह कला तथा विज्ञान दोनों ही है। कला का अर्थ एक आदर्श प्रस्तुत करना है। कला हमे बताती है कि अभिष्ट क्या है, उद्देश्य तथा गन्तव्य क्या है। इस रूप में शिक्षा भी हमारे सम्मुख अनेक आदर्श प्रस्तुत करती है। अनेक उद्देश्य निश्चित करती है तथा गन्तव्य का निर्धारण करती है। उदाहरण के लिए चरित्र निर्माण करना राष्ट्रीय भावना का विकास करना, व्यक्तित्व का सर्वागीण तथा सन्तुलित विकास करना जैसे शिक्षा के अनेक उद्देश्य तथा आदर्श हैं जिनको शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करने के प्रयास किये जाते हैं। इस प्रकृति के कारण शिक्षा कला है।

शिक्षा विज्ञान भी है। विज्ञान हमें दक्षता पूर्वक कार्य करने की विधि से अवगत कराती है। यह ज्ञान को पूर्व नियोजित, संगठित तथा मितव्ययितापूर्वक प्राप्त करने की प्राविधियों से अवगत कराती है। शिक्षा में अनेक प्रयास इस प्रकार किये जाते हैं कि व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास पूर्व नियोजित संगठित, मितव्ययितापूर्वक व सफलतापूर्वक हो सकें। इसके लिए शिक्षा ने विविध प्रविधियों का भी विकास कर लिया है, विभिन्न शिक्षा सिद्धान्तों का विकास किया है, शिक्षा विधियों, उद्देश्यों का वर्गीकरण श्रव्य, दृश्य उपकरणों का निर्माण, मूल्यांकन प्राविधियों तथा विद्यालय संगठन के सिद्धान्तों का विकास किया है। यह सभी शिक्षा को मापन योग्य वस्तु निष्ठता तथा प्रभावशीलता प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया है। यह कार्य केवल विज्ञान ही कर सकता है अत: कहा जा सकता है कि शिक्षा विज्ञान भी है। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा कला तथा विज्ञान दोनो ही है। इसे केवल कला अथवा विज्ञान कहना भूल है।

स्वमूल्यांकन

(Self Evaluation)

1. शिक्षा की संकुचित अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. व्यापक संदर्भ मे सिक्षा के संप्रत्यय की विवेचना कीजिए।
3. "शिक्षा विज्ञान भी है कला भी" इस कथन की पुष्टि अपने तर्को द्वारा दीजिए।

1.9 शिक्षा के आधार (Foundation of Education)

शिक्षा एक प्रकिया है जिसमें शिक्षक, शिक्षार्थी एवं वातावरण की अन्त: किया द्वारा विद्यार्थी में वांछित व्यवहार भाव परिवर्तन लाकर उसके व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास किया जाता है। यह शिक्षा प्रकिया अनेक तथ्यों पर आधारित होती है जिनका वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है :–

1. दार्शनिक आधार (Philosophical Bases)

दार्शनिक आधार शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शो का निर्धारण करता है। यह शिक्षा की नैतिक कसौटी प्रदान करता है। यह शिक्षा को जीवन से सम्बन्धित कर मूल्यों का निश्चय करता है तथा शैक्षणिक प्रकिया को एक निश्चित दिशा का निर्देश देता है। दर्शन किसी देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों की आधारभूमि प्रस्तुत करता है ।

2.**मनोवैज्ञानिक आधार** (Pshychological Bases)

शिक्षा प्रकिया का उद्देश्य विद्यार्थी में शिक्षक एवं वातावरण से अन्तःकिया कर वांछित परिवर्तन करना तथा व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करना होता है। इस प्रकिया का आधार मनोविज्ञान प्रस्तुत करता है । व्यक्ति की मूल प्रवृतियों, संवेगों, विकास की अवस्थाओं, वंशानुकम व वातावरण के प्रभावो, व्यक्तिगत विभिन्नताओं, अभिरूचियों व्यक्तित्व अधिगम के सिद्धान्तों आदि का परिज्ञान शिक्षा मनोविज्ञान से होता है जो शिक्षा प्रकिया को वैज्ञानिक रूप प्रदान करता है।

3.**वैज्ञानिक आधार** (Scientific Bases)

शिक्षा एक समाज विज्ञान है क्योंकि इनके सिद्धान्तों के निर्धारण की प्रकिया वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक विधियों द्वारा ही शिक्षा के नियमों का निश्चयन एवं शैक्षिक समस्याओं का समाधान खोजा जाता है। अत: शिक्षा का वैज्ञानिक आधार है।

4. **समाजशास्त्रीय आधार** (Sociological Bases)

सामाजिक पर्यावरण शिक्षा प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण घटक होता है क्योंकि सामाजिक पर्यावरण से अन्तःकिया द्वारा ही विद्यार्थी में समाजोपयोगी एवं मान्य मूल्यों के अनुरूप व्यवहारगत परिवर्तन होते है। इसके अतिरिक्त शिक्षा समाज के परिवर्तनों के अनुकूल गतिशील रहती है तथा शिक्षा समाज में स्थायित्व एवं उसके उत्थान का प्रयत्न भी है। समाजशास्त्र इस दृष्टि से शिक्षा का एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करता है।

शिक्षा में प्रचलित आधारित सम्प्रत्यय (Basic concepts used in Education)

अनुदेशन (Instruction), विद्यालयीकरण (Schooling) तथा प्रशिक्षण (Training) शिक्षा के समानार्थक रूप में प्रचलन में है जिसमें भ्रन्ति उत्पन्न हो गई है। इसमें अनुदेशन, विद्यालयीकरण तथा प्रशिक्षण शब्दों को प्राय: शिक्षा का पर्याय मानकर प्रयुक्त किया जाता है, जो अनुचित है। अत: शिक्षा में इनका भेद समझना वांछनीय है।

(1) अनुदेशन (Instruction)

डी. एल. के. ओड के शब्दों में "अध्यापक द्वारा कक्षा में दिया गया तथ्यात्मक एवं आलोचनात्मक ज्ञान अनुदेशन कहलाता है। अनुदेशन के अर्न्तगत शिक्षक का व्यक्तव्य, प्रश्नोत्तर, चर्चा, प्रयोग सभी आ जाते हैं। अनुदेशन शिक्षा का एक अंग है, सम्पूर्ण शिक्षा नहीं। प्रचलित भाषा में हम जिसे पढ़ना कहते हैं वह इसी अर्थ का द्योतक है। अनुदेशन कक्षा में भी हो सकता है कक्षा के बाहर भी। शिक्षक तथा छात्र के बीच पाठ्यक्रमीय ज्ञान के आदान–प्रदान की क्रिया अनुदेशन कहलाती है।" **बट्रेण्डरसेल** (Burstrand Russell) के अनुसार "अनुदेशन प्रक्रिया के अर्न्तगत शिक्षक को विद्यार्थियों में शनैः शनैः कुछ मानसिक आदतों के निर्माण करने का अवसर मिलता है।" **गेट्स** के शब्दों में "अनुदेशन वह प्रक्रिया है जो विद्यार्थी को कुछ उद्देश्यों की ओर प्रभावित करती है।" इन परिभाषाओं में अनुदेशन व शिक्षा का भेद स्पष्ट होता है। **डा. एन. आर., स्वरूप सक्सैना** ने इस अन्तर को व्यक्त करते हुए कहा है कि जहां शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है क्योंकि वह बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास करती है वहां अनुदेशन का क्षेत्र केवल मानसिक विकास तक सीमित है। शिक्षा में बालक प्रमुख है जबकि अनुदेशन में शिक्षक। शिक्षा की भांति अनुदेशन बालक की रूचि व मानसिक स्थिति का ध्यान नहीं रखता। शिक्षा जीवन के लिए तैयारी करवाती है। जबकि अनुदेशन का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना होता है। शिक्षा निजी अनुभवों के आधार पर अर्जित ज्ञान को स्थायी बनाने पर बल देती है किन्तु अनुदेशन में ज्ञान रटाया जाता है जो स्थायी नहीं होता।

(2) विद्यालयीकरण (schooling) –

विद्यालयीकरण हिन्दी शब्द 'विद्यालय' तथा अंग्रेजी शब्द 'स्कूल' (School) से निर्मित है। स्कूल शब्द की व्युत्पति यूनानी शब्द (Skhole) से हुई है जिसका अर्थ है 'अवकाश' (Lesiure) जो 'आत्म विकास' या 'शिक्षा' हेतु प्रयुक्त किया जाता था। कालान्तर में ये अवकाशालय अर्थात 'स्कूल्स' एक निश्चित योजनानुसार पाठ्यकम निश्चित समय में समाप्त करने लगे। स्कूलों के विकास को स्पष्ट करते हुए **ए.एफ. लीच** ने कहा है, "वे विचार, गोष्ठियॉ अथवा वार्ता स्थल जिनमें रहकर एथेन्स के युवक खेलकूद व व्यायाम तथा युद्ध हेतु प्रशिक्षण में अपना अवकाश का समय व्यतीत करने थे, शनैः शनैः दशर्नशास्त्र एवं उच्चतर कक्षाओं के स्कूलों में परिणित होने लगे। अकादमी के सुसज्जित उद्यानों में व्यतीत किए गए अवकाश से स्कूल विकसित हुए।'

समाजोपयोगी नागरिक तैयार करने में इनकी भूमिका का उल्लेख करते हुए **जे. एस. रॉस** (J.S.Ross) ने स्कूल को इस प्रकार परिभाषित किया है, सभ्य मानव द्वारा 'स्कूल्स' संस्थाओं का आविर्भाव किया जिनका उद्देश्य युवकों को समाज के कार्यकुशल एवं समायोजित सदस्यों की तैयारी में सहायता करना था।" स्कूलों को एक विशेष पर्यावरण के रूप में देखतें हुए **जॉन डी वी** का कथन है, 'स्कूल एक विशिष्ट पर्यावरण है, जहां एक निश्चित जीवन स्तर व निश्चित प्रकार के क्रिया–कलापों तथा व्यवसायों का प्रावधान इस उद्देश्य से किया जाता है कि बालक का वांछित दिशा में विकास हो सके।"

इस प्रकार विद्यालयीकरण शिक्षा का औपचारिक रूप है अर्थात यह शिक्षा के संकुचित अर्थ को प्रकट करता है। विद्यालयीकरण शिक्षा का एक अंग है सम्पूर्ण शिक्षा नहीं। **डॉ. ओड** के शब्दों में इसका विवेचन शिक्षा के संकुचित अर्थ में किया गया है। निश्चित अवधि में, निश्चित

पाठ्यक्रम तथा निश्चित विधियों तथा निश्चित व्यक्तियों द्वारा समूह के रूप में दी जाने वाली शिक्षा स्कूलिंग कहलाती है।"

(3) प्रशिक्षण (Training)

डॉ. एल. के. ओड के शब्दों में, 'एक ही प्रकार के कार्य को पुन: आवृति द्वारा उसमें दक्षता अर्जित करना प्रशिक्षण कहलाता है। प्रशिक्षण बौद्धिक न होकर दक्षता परक होता है।" **आर. ए. शर्मा** ने प्रशिक्षण मनोविज्ञान को इन शब्दों में स्पष्ट किया है, "इस विचारधारा का आविर्भाव प्रशिक्षण की जटिल समस्याओं एवं परिस्थितियों पर किए गए शोध कार्यो से हुआ है। इसके अर्न्तगत उन क्रियाओं को विशष महत्व दिया जाता है जो छात्र सीखते समय करता है। इसमें शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। प्रशिक्षण मनोविज्ञान का उद्देश्य क्रिया की रूप रेखा तैयार करना और उनको इस प्रकार व्यवस्थित करना है जिनसे अपेक्षित उद्देश्य की प्राप्ति की जा सके। इच विचारधारा में कार्य विश्लेषण की प्रधानता की जाती है। प्रशिक्षण मनोविज्ञान शिक्षण प्रशिक्षण के लिए एक उपागम है।" स्पष्ट है कि शिक्षा का एक अंग या पक्ष मात्र ही है, शिक्षा का पर्याय नहीं।

1.11 अनुदेशन, विद्यालयीकरण,प्रशिक्षण व शिक्षा में अन्तर (Difference between instruction,Schooling,Training and Education)

क्र.सं.	शिक्षा (Education)	अनुदेशन (Instruction)	विद्यालयीकरण (Schooling)	प्रशिक्षण (Training)
1.	शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है|	अनुदेशन शिक्षक व विद्यार्थी के बीच पाठ्यक्रमीय ज्ञान के आदान प्रदान की क्रिया है|	विद्यालयीकरण निश्चित स्थान ,अवधि ,पाठ्यक्रम विधि तथा व्यक्ति द्वारा समूह में दी जाने वाली शिक्षा हैं|	विद्यार्थी को बारम्बार आवृति द्वारा किसी क्रिया के कार्य अवयवों में दक्षता अर्जित कराना प्रशिक्षण है।
2.	लक्ष्य बालक का सर्वागिण विकास करना	लक्ष्य विशिष्ट अवधि में पाठ्यक्रम पूरा कराना है। विद्यार्थी को परीक्षा में उत्तीर्ण कराना है।	लक्ष्य एवं निश्चित पाठ्यचर्यानुसार बालक का विकास करना है।	लक्ष्य किसी क्रिया विशेष में दक्षता अर्जित करना है। यह वौद्धिक की अपेक्षा शारीरिक दक्षता अधिक है।
3.	शिक्षा के अभिकरण औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों है।	केवल औपचारिक रूप कक्षा तक सीमित है।	औपचारिक रूप स्कूल तक सीमित है।	औपचारिक रूप केवल प्रशिक्षण संस्थान या परिवार

तक सीमित है।

4.	इसमें अर्जित ज्ञान स्थायी एवं जीवन से सम्बन्ध होता है।	ज्ञान अस्थायी व जीवन से असम्बंध होता हैं|	ज्ञान स्थायी होता हैं|	अर्जित दक्षता अस्थायी हैं|
5.	बालक का स्थान महत्वपूर्ण है।	बालक की अपेक्षा पाठ्यकम पर विशेष ध्यान दिया जाता है।	अध्यापक व पाठ्यकम का विशेष स्थान है।	प्रशिक्षण का प्रमुख स्थान हैं|
6.	शिक्षण विधियों में विभिन्नता हैं|	व्याख्यान व प्रश्नोत्तर विधि पर विशेष आग्रह हैं|	विषय ,आयु व कक्षानुसार निर्धारित विधियां होती है|	कुशलताओं (skills) के अनुरूप निश्चित विधियां हैं|
7.	पाठ्यक्रम सम्पूर्ण जीवन हैं|	विषयानुसार अत्यन्त सीमित हैं|	निश्चित विषयों व क्रियाकलापों तक सीमित है|	निश्चित प्रत्येक कार्य के अनुसार हैं|
8.	अवधि जन्म से मृत्यु	अवधि सीमित हैं|	बहाय व किशोरावस्था तक	निश्चित अल्प अवधि हैं|

1.12 शिक्षा का जीवन में महत्व : शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रकिया है (Importance of Education in Life : Life Long Process of Education)

विद्या बुद्धि की जड़ता को हरती (दूर करती) है। वाणी में सत्यता का संचार करती है, मान–सम्मान फैलाती है, पाप कर्मो से दूर रहती है, मन (चित्त) को प्रसन्नता प्रदान करती है, चारों दिशाओं में यश कीर्ति फैलाती है। कल्पलतारूपी विद्या क्या–क्या नहीं करती, अर्थात सब कुछ कर सकती है।

भारतीय पौराणिक शास्त्रों में कल्पवृक्ष की कल्पना की गई है और यह माना गया है कि कल्पवृक्ष से जो इच्छा प्रकट की जाती है, वह वृक्ष उस इच्छा की पूर्ति करता है। यही विद्या को भी इसी कल्पवृक्ष के समान कल्पलता (बेल) माना है। और यह स्वीकार किया गया है कि इस विद्या रूपी कल्पलता से जो कुछ भी इच्छा की जायेगी, वह यह पूरी करेगा। अर्थात विद्या मनुष्य की हर कामना को पूरी कर सकती है। मनुष्य विद्या के द्वारा यश कीर्ति, वैभव आदि सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

उपनिषद में शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये' कहा गया है अर्थात विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे अर्थात शिक्षा से स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है।विद्या अज्ञानता से स्वतन्त्रता दिलाकर ज्ञान प्रदान करती है, संकीर्णताओं से मुक्ति दिलाकर व्यापकता लाती है। जड़ता या

स्थिरता से विमुक्त कर गत्यात्मकता लाती है, विचारों को स्वतन्त्रता प्रदान करती है तथा जीवन के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता लाती है।

शिक्षा सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी अनिवार्य है। शिक्षा समाज की संस्कृति को जीवित रखती है। संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करती है। संस्कृति का परिमार्जन करती है तथा संस्कृति को उपयुक्तता प्रदान करती है। आध्यात्मिक उन्नति व मानसिक शक्ति के लिए भी शिक्षा अनिवार्य है।

शिक्षा मानव जीवन को सुखमय बनाती है। इसमें भौतिक सुख–सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं। आज मानव ने प्रकृति पर जो विजय प्राप्त की है वह भी शिक्षा का परिणाम है। वैज्ञानिक उन्नति तथा सुख सुविधा के लिए विज्ञान द्वारा प्रदत उपकरण शिक्षा की ही देन है। रेडियो, चलचित्र, विद्युत, वायुयान, रेलगाड़ियां, उद्योग आदि सब विद्या द्वारा ही दिये गये हैं। शिक्षा ने मानव जीवन की रक्षार्थ अनेक प्रकार की औषधियाँ हमें दी हैं। शिक्षा हमारे जीवन को प्रमाणित करती है। इससें ही हम पशुत्व से ऊपर उठकर ईश्वर के निकट आ जाते है।

स्व–मूल्यांकन

(Self Evaluation)

1 शिक्षा के आधारों की विवेचना कीजिए ।

2 अनुदेशन, विद्यालयीकरण एवं प्रशिक्षण के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।

3 ''शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रकिया है।'' स्पष्ट कीजिए।

1.13 सार संक्षेप (Summary)

शिक्षा का अर्थ एवं सम्प्रत्यय (Meaning and concept of Education)

बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन के लिए शिक्षा की परम आवश्यकता है। शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है।

(1) भारतीय मत (Indian view)

शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना या सीखाना। गीता दर्शन के अनुसार "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात वही हवद्या है जो बन्धन से मुक्त करावें।

(2) पाश्चात्य मत (Western view)

शिक्षा का अंग्रेजी पर्याय 'Education' शब्द है जिसकी व्युत्पति लेटिन शब्द Educatum, Educare या Educere से हुई है।

प्लेटो "शिक्षा उसे कहते है जो सद्गुणों का विकास करती है।"

शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrower meaning of Education)

ऐसी शिक्षा का स्वरूप औपचारिक होता है अर्थात वह एक निश्चित स्थान पर विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में दी जाती है।

शिक्षा का व्यापक अर्थ (Wider meaning of Education)

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रकिया है। शिक्षा वह अनियन्त्रित वातावरण है जिसमें रहते हुए बालक अपनी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है।

शिक्षा की प्रकृति–कला अथवा विज्ञान (Nature of Education: Science and Art)

यदि हम शिक्षा की विषय वस्तु स्वरूप विधि तथा उद्देश्यों का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि शिक्षा न केवल कला है और न ही केवल विज्ञान है। अपितु कला व विज्ञान दोनों ही है।

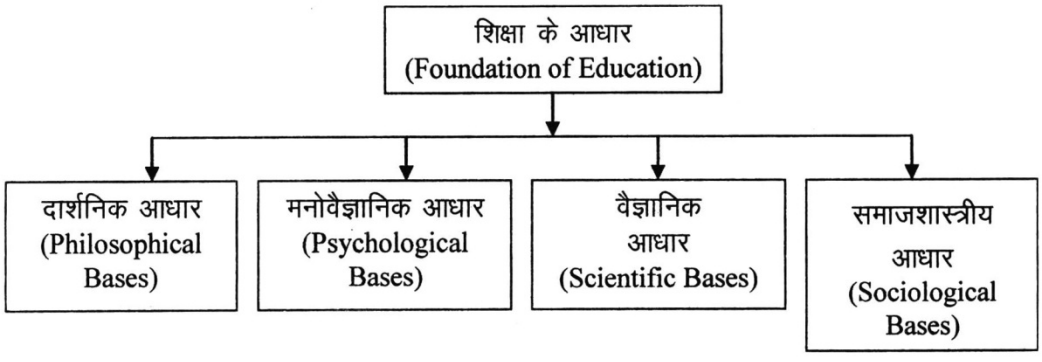

शिक्षा में प्रचलित आधारित सम्प्रत्यय

1. शिक्षा (Education)
2. अनुदेशन (Instruction)
3. विद्यालयीकरण (Schooling)
4. प्रशिक्षण (Training)

1.14 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

प्र.1 शिक्षा के सम्प्रत्यय की व्याख्या करते हुए किसी एक परिभाषा की विस्तृत विवेचना कीजिए।

Discuss the concept of Education and elaborate in detail one of the definition of Education.

प्र.2 शिक्षा के संकुचित एवं व्यापक अर्थ की व्याख्या करते हुए शिक्षा के समन्वित अर्थ की चर्चा कीजिए।

Discuss the Narrow and broader concept of Education and elaborate the Comprehensive.

प्र.3 शिक्षा से आप क्या समझते है? इसकी प्रकृति एवं महत्व बताइए।

What do you mean by Education? Mention its Nature and importance.

प्र.4 शिक्षा और अनुदेशन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Differentiate between Education and Instruction.

प्र.5 शिक्षा, अनुदेशन, विद्यालयीकरण एवं प्रशिक्षण की अवधारणाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Differentiate between concept of Education Instruction,Schooling and Training.

1.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1.	अग्रवाल एस. के.	:	शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त
2.	बंसल आर. ए. तथा शर्मा रामनाथ	:	शिक्षा के सिद्धान्त
3.	बटलर	:	फोर फिलोसॉफीज
4.	भाटिया	:	फिलोसॉफी ऑफ एजूकेशन
5.	चौबे अखिलेश एवं चौबे सरयू प्रसाद	:	शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार
6.	ओड एल.के.	:	शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
7.	पारीख मथुरेश्वर शर्मा रजनी	:	उदयीमान भारतीय समाज तथा शिक्षा
8.	सक्सैना एन. आर. स्वरूप	:	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
9.	डा. राधाकृष्णन	:	भारतीय दर्शन

1.16 रिपोर्ट सूची (Report List)

1. Report of secondary Education commission 1952.
2. Report of Education commission 1966.
3. National policy of Education 1986.
4. Programme of action : National policy of Education 1995.
5. International commission on Education on development of Education,Learning to be,UNESSCO 1972
6. International commission on Education for the twenty first century : learning the treasure within,UNESSCO Report of Delors,1996.

इकाई–2
शिक्षा के लक्ष्य, प्रवृतियॉ
Aims of Education and its Trends

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

2.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

2.2 विषय प्रवेश (Introduction)

2.3 लक्ष्य (Aims)

2.4 उद्देश्य (Objectives)

2.5 लक्ष्य व उद्देश्य में अन्तर (Difference between Aim and Objectives)

2.6 शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education)

2.7 विभिन्न आयोगों एवं समितियों के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Secondary)

2.7.1 विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Higher Education Commission)

2.7.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Secondary Education)

2.7.3 कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Kothari Commission)

2.7.4 नई शिक्षा नीति 1986 (New Education Policy 1986)

2.7.5 आचार्य राममूर्ति समिति द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा (Critical Analysis of New Education Policy by Acharya Rammurti Committee)

2.7.6 डेलर्स आयोग की रिपोर्ट "अधिगम अन्त:र्निष्ठ" (Repartof Dallors Commission “Learning Treasure within”)

2.8 आधुनिक भारतीय संदर्भ में शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education in the reference of Modern India)

2.8.1 व्यक्ति सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to Individual)

- शारीरिक विकास (physical Development)
- चारित्रिक विकास (Characteristics Development)
- मानसिक विकास (Mental Development)
- सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)
- आधुनिकीकरण करना (Modernization)

– उत्पादन का विकास करना (Development of Producation)
2.8.2 समाज सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to Society)
– सामाजिक बुराइयों का अन्त
– समाजवादी समाज की स्थापना
– लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास
2.8.3 राष्ट्र सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to Nation)
2.9 शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Prespactive of Education)
2.9.1 प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा
2.9.2 मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा
2.9.3 वर्तमान भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा
2.10 शिक्षा में परिवर्तित प्रवृत्तियाँ (Changing Trends In Education)
2.11 शिक्षा का भावी परिप्रेक्ष्य (Future Perspectives of Education)
2.12 सार संक्षेप (Summary)
2.13 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)
2.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)
2.15 रिपोर्ट सूची (Report List)

2.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

– शिक्षा के लक्ष्यों के सम्प्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
– लक्ष्य और उद्देश्यों के सम्प्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
– लक्ष्य और उद्दश्यों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
– शिक्षा के लक्ष्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
– विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्यों से परिचित हो सकेंगे।
– माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्यों से अवगत हो सकेंगे।
– कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा लक्ष्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
– नई शिक्षा नीति एवं राममूर्ति की समिति द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को समझ सकेंगे।
– अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग या डेलर्स रिपोर्ट में बताएं शिक्षा के लक्ष्यों से अवगत हो सकेंगे।
– आधुनिक भारतीय समाज के सन्दर्भ में शिक्षा के लक्ष्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे'।
– शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समझ सकेंगे।

2.2 विषय प्रवेश (Introduction)

मानव की प्रत्येक किया का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। यदि मानवीय क्रियाऐ सुनिश्चित होगी तो परिणाम भी स्पष्ट व कल्याणकारी होगा। इसके विपरीत बिना लक्ष्य या

उद्देश्य का निर्धारण किये सम्पन्न की गई क्रियाऐ समाज व व्यक्ति के हित में बाधक भी हो सकती है अत: शिक्षा के सन्दर्भ में सम्पूर्ण मानवीय क्रिया–कलापों को समाज के कल्याण की दिशा में प्रेरित करने के लिए शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों की संकल्पना का उदय हुआ।

शिक्षा ऐसी प्रक्रिया है। जिसके द्वारा विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षा का सीधा सम्बन्ध अधिगम (Learning) से है। अधिगम अर्जित करने के फलस्वरूप विद्यार्थी के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने हेतु व्यवस्थित रूप से प्रयास करना होता है। जिसके लिए शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित करने पड़ते हैं।

2.3 लक्ष्य (Aims)

शिक्षा को दिशा प्रदान करने वाले लक्ष्य होते हैं। ये वे साध्य है जो क्रिया के लिए पथ प्रदर्शित करने का कार्य करते हैं यथा छात्र में वैज्ञानिक चिन्तन का विकास करना, शिक्षा का एक लक्ष्य हो सकता है। इसकी प्राप्ति के लिए

सी.वी. गुड (C.V.Good) – 'लक्ष्य पूर्व निर्धारित साध्य होता है, जो किसी कार्य या क्रिया का मार्गदर्शन करता है।"

'Aims is a Foreseen and that gives direction to an activity."

शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने लक्ष्यों पर आधारित होती है। अत: शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण एक महत्वपूर्ण कार्य है। लक्ष्यविहीन शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

2..4 उद्देश्य (Objectives)

उद्देश्य, कार्य के फल या परिणाम का घोतक है जब क्रिया सम्पन्न की जाती है तो निश्चित रूप में वह किसी परिणाम की ओर उन्मुख होती है। हम कार्य को तब तक करते रहते हैं। जब तक निश्चित उद्देश्य को प्राप्त न कर लें। हम जो प्राप्त करना चाहते हैं वे हमारे उद्देश्य है।

रॉबर्ट मेगर (Robart Mager) –"उद्देश्य वह मानदण्ड है जिसे छात्र द्वारा विद्यालय क्रिया को पूर्ण करके प्राप्त किया जा सकता है।"

बी.एस. ब्लूम (B.S.Bloom) – "ज्ञान भावना व क्रिया में परिवर्तन लाना ही उद्देश्य का पूर्ण होना है। यह अलग–अलग भी हो सकता है तथा किसी एक क्षेत्र में भी।"

अन्त में हम कह सकते हैं क्रियाओं के व्यवस्थित रूप से संचालन हेतु उद्देश्य होते हैं। यदि उदद्देश्य सुस्पष्ट होंगे तो लक्ष्य की प्राप्ति भी सरलता से होगी। उद्देश्यों को पूर्ण करके ही लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास किया जाता हैं|

2.5 लक्ष्य एवं उद्देश्य में अन्तर (Difference between Aims and Objectives)

क्र.	लक्ष्य	उद्देश्य
1.	इनका निर्धारण दर्शन एवं समाज आवश्यकता के अनुरूप किया जाता है।	इन्हें शिक्षक कक्षा–कक्ष की अपेक्षा के अनुसार मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षक तकनीक आधारों पर निर्धारित रहता हैं।
2.	लक्ष्य विस्तृत एवं दीर्घकाल में प्राप्त किये जाते हैं।	उद्देश्य सटीक व स्पष्ट होते है व इन्हें अल्प अवधि में प्राप्त किया जाता है।
3.	लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पाठ्यक्रम निश्चित निश्चित नहीं होता विधियों का स्वरूप भी अस्पष्ट होता है।	निश्चित पाठ्यकम एवं शिक्षण की व्यूह रचनाओं के आधार उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।
4.	लक्ष्यों के निर्धारण में केन्द्रीय विचार सम्पूर्ण समाज का होता है।	उद्देश्य छात्र को केन्द्र मानकर निर्धारित किए जाते हैं।
5.	सैद्धान्तिक स्वरूप होने के कारण लक्ष्यों का मापन कठिन एवं समय साध्य होता है।	कार्य को आधार मानकर बनाए गए उद्देश्य सिद्धान्तों के साथ–साथ प्रयोगात्मक स्वरूप के भी होते हैं। अत: इनका मापन करना अनिवार्य होता है।
6.	लक्ष्य मूल्यों के अनुरूप निर्धारित होते हैं।	उद्देश्य का निर्धारण लक्ष्यों के आधार पर किया जाता है।

2.6 शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education)

वस्तुत: शिक्षा के संदर्भ में लक्ष्यों की चर्चा की जानी उपयुक्त है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में उद्देश्य एवं व्यवहारगत परिवर्तन की चर्चा की जाती है।

रिविलिन (Rivillin) - "वस्तुत: शिक्षा एक सप्रायोजन एवं नैतिक क्रिया है अत: लक्ष्यों के बिना इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।"

"Education is a purposeful and ethical activity,Hence it is unthinkable without aims."

लक्ष्यों की अस्पष्टता होने पर सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया प्रभावहीन हो जाती है। शिक्षा चाहे वह औपचारिक हो, अनौपचारिक या निरौपचारिक उसे गति व दिशा प्रदान करने का कार्य लक्ष्यों के आधार पर ही किया जाता है। समाज की संस्कृति को आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का दायित्व हो या व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का या परम सत्य की खोज का, ये सभी शिक्षा के लक्ष्य के स्वरूप में सम्मिलित किये जाते हैं। शिक्षा के लक्ष्यों को निम्नलिखित वर्गीकरण द्वारा भी समझा जा सकता है:–

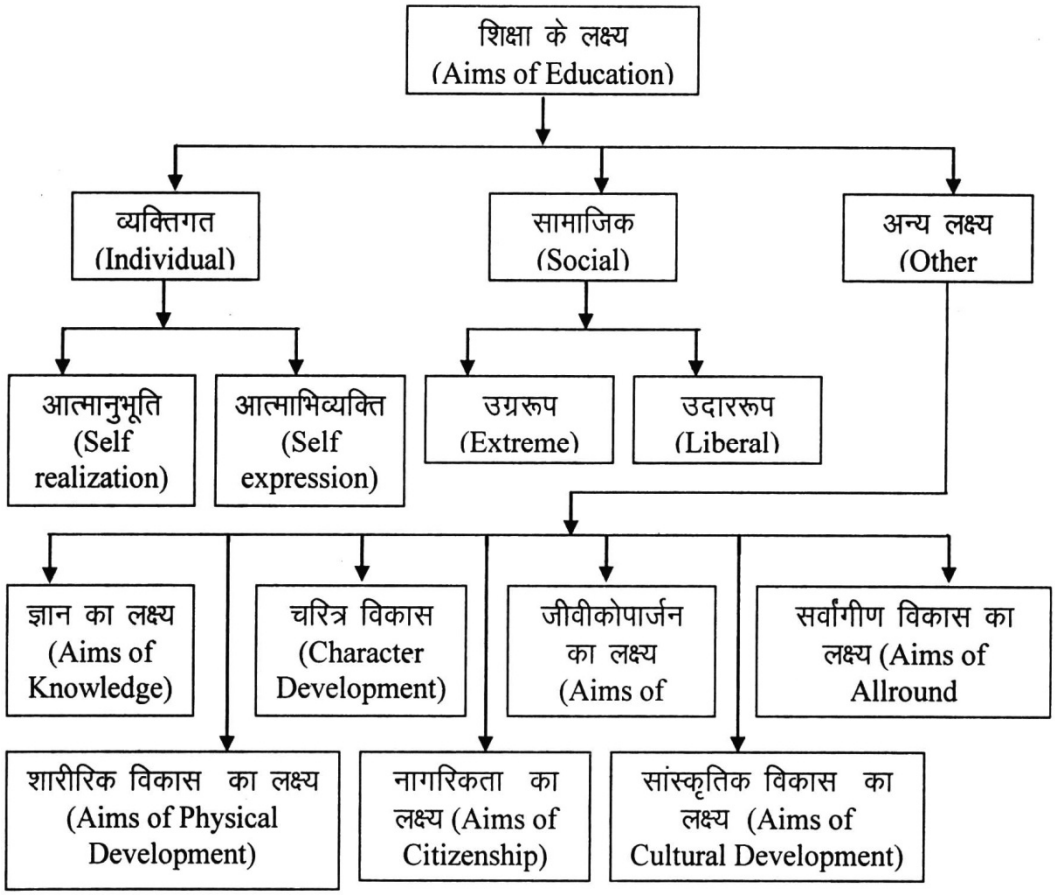

इसके अतिरिक्त प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में शिक्षा के अन्य लक्ष्य निम्नलिखित हो सकते हैं :–

1. सामाजिक दृष्टिकोण को विकसित करना
2. श्रेष्ठ नागरिकता का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना
3. अनुकूलन एवं सामन्जस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास करना
4. अच्छी आदतों के प्रतिमान विकसित करना
5. आर्थिक सम्पन्नता हेतु तैयार करना
6. वैज्ञानिक सोच विकसित करना
7. सामाजिक न्याय हेतु तैयार करना
8. उच्च आदर्शो के निर्माण की प्रकिया विकसित करना
9. स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चिन्तन क्षमता का विकास करना
10. सर्वधर्म समभाव की भावना का विकास करना

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. लक्ष्य और उद्देश्यों में अन्तर स्पष्ट कीजिए|
2. शिक्षा के लक्ष्यों का वर्गिकरण स्पेष्ट कीजिए|
3. प्रजातांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा के लक्ष्य बताइए|

2.7 विभिन्न आयोगों एवं समितियों के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education according to various commissions and committees)

2.7.1 विश्व विद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to University Commissions –1948–49)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार का विशेष ध्यान विश्वविद्यालय शिक्षा पर गया। जिसके आधार पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड और अर्न्तविश्वविद्यालय शिक्षा परिषद् की सिफारिशों को आधार बनाकर 1948 में **डॉ. राधाकृष्णन** की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। आयोग के विचारों से स्वतन्त्र प्रजातन्त्र का जीवन सामान्य समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालयों का कार्य होना चाहिए– विवेक का विस्तार, नये ज्ञान के लिए अधिक इच्छा, जीवन के अर्थ को जानने के लिए अधिक प्रयास और व्यावसायिक शिक्षा की अवस्था। आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के निम्न लक्ष्य बताये :–

1. विश्वविद्यालयों को छात्रों का सर्वागीण विकास (मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक) करना चाहिए।
2. ज्ञान व संस्कृति का संरक्षण व उन्नति करनी चाहिए।
3. व्यक्तियों में जन्मजात गुणों की खोज एवं प्रशिक्षण द्वारा उनका विकास करना चाहिए।
4. दूरदर्शी, बुद्धिमान एवं साहसी नेताओं के निर्माण द्वारा समाज सुधार पर बल दिया जाना चाहिए।
5. ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो राजनैतिक, प्रशासकीय एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में नेतृत्व कर सकें।
6. सफल प्रजातन्त्र के लिए योग्य नागरिकों का निर्माण करना।
7. विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य ऐसे विवेकी व्यक्तियों का निर्माण करना है जो प्रजातन्त्र की सफलता के लिए शिक्षा का प्रसार कर सकें।
8. छात्रों का चरित्र निर्माण करना।
9. छात्रों में विश्व बन्धुता की भावना का विकास करना।

2.7.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Secondary Education Commissions –1952–53)

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने सरकार के समक्ष माध्यमिक शिक्षा की जॉच करने के लिए एक आयोग के गठन का विचार रखा। फलस्वरूप सितम्बर 1952 को **डा. ए. लक्ष्मण स्वामी**

मुदालियर की अध्यक्षता में 'माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नांकित है :–

1. प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास (Development of Democratic Citizenship)
2. कुशल जीवनयापन की कला में प्रशिक्षण (Training in the Art of Living Efficiency)
3. व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)
4. व्यावसायिक कुशलता की उन्नति (Improvement of Vocational Efficiency)
5. नेतृत्व के लिए शिक्षा (Education for Leadership)
6. चरित्र निर्माण (Character Formation)
7. देश प्रेम की भावना का विकास (Development of Nationality)

2.7.3 कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education According to Kothari Commissions – 1964–66)

भारत सरकार के समस्त स्तरों पर शिक्षा के स्वरूप सिद्धान्तों एवं नीतियों पर सलाह देने के लिए शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। **डॉ. डी. एस. कोठारी** की अध्यक्षता में कार्य करने के कारण यह आयोग भी कोठारी आयोग कहलाया। **कोठारी कमीशन** रिपोर्ट में बहुत विस्तार से शिक्षा के उद्देश्य पर चर्चा की गई। आयोग के विचारों को संक्षेप में देखें तो ज्ञात होता है कि शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति है। राष्ट्र के पुनर्निर्माण हेतु शिक्षा में परिवर्तन एवं निम्न चार समस्याओं का समाधान होना आवश्यक है –

1. खाद्य सामग्री में आत्मनिर्भरता
2. आर्थिक विकास व बेरोजगारी का अन्त
3. सामाजिक व राजनैतिक एकता
4. राजनैतिक विकास

इन समस्याओं के समाधान के लिए आयोग ने शिक्षा को साधन के रूप में बताया। आयोग के अनुसार प्रजातन्त्र में व्यक्ति स्वयं साध्य है और शिक्षा का प्रमुख कार्य है व्यक्ति को अपनी शक्तियों के पूर्ण विकास करने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना। संक्षेप में निम्न उद्देश्य बताए गये हैं :–

1. उत्पादन में वृद्धि करना (To incease Productivity)
2. सामाजिक व राष्ट्रीय एकता का विकास करना (To Develop Social and National Unity)
3. प्रजातन्त्र को सुदृढ़ करना (To Consolidate democracy)
4. देश का आधुनिकीकरण करना (To Modernize the Country)
5. सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना (To Develop Social,Moral and Spiritual Values)

2.7.4 नई शिक्षा नीति 1986 (New Education Policy,1986)

नई शिक्षा नीति में निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखकर शिक्षा की चुनौती का रूप मानकर कार्यकम नियोजित करने की बात कही गई है। वे बिन्दु निम्नलिखित हैं :–

1. प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास
2. जीवन जीने की योग्यता का विकास
3. व्यक्तित्व का विकास
4. व्यावसायिक कौशल का विकास
5. नेतृत्व का विकास
6. संवेगात्मक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास
7. अन्तर सांस्कृतिक समझ का विकास
8. अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना का विकास

2.7.5 आचार्य राममूर्ति समिति द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा (Critical Analysis of New Education Policy by Acharya Rammurti Committee)

नई शिक्षा नीति के पुनरावलोकन एवं समालोचन हेतु भारत सरकार ने 7 मई, 1990 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति समीक्षा समिति का गठन किया जिसका अध्यक्ष **आचार्य राममूर्ति** नियुक्त किए गए। इसी कारण इसे राममूर्ति समीक्षा समिति के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक परिवर्तन को दिशा प्रदान करने वाले समाज की रचना सर्वप्रमुख राष्ट्रीय लक्ष्य है। शिक्षा की भूमिका, लक्ष्य और मूल्यों को समझाते हुए व्याख्या की गई है। प्रमुख बिन्दु हैं|

1. शिक्षा छात्र को ज्ञानात्मक आधार प्रदान करे जिससे शक्ति संचित कर वह आगे संवृद्धि कर सके।
2. शिक्षा उन संभावनाओं को भी प्रशस्त करे जहां छात्र बहुत परिस्थितियों व प्रकियाओं में संलग्न होते हुए कौशल अर्जित कर सके जिसके आधार पर बालक आगे चलकर विशिष्ट व्यावसायिक निपुणता या व्यवसाय आधारित कौशल विकसित करने में सक्षम हो सके।
3. शिक्षा उन शाश्वत मूल्यों के निर्माण में सहायक हो जो व्यक्ति के अपने चारित्रिक आधार है। साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय मूल्यों को समाहित करें। वे मूल्य ऐसा ढाँचा निर्मित करे जिसके संदर्भ में व्यक्ति अपने निर्णय व व्यवहारों को वैयक्तिक व राष्ट्रीय तथा सामाजिक हितों के मध्य समन्वित कर सके। ये वे मूल्य हों जो व्यक्ति को प्रतिबद्धता व समर्पण दे।
4. राष्ट्रीय समाकलन और एकता की प्राप्ति में शिक्षा मध्यस्थ व उत्प्रेरक की भूमिका का निर्वाह करे और छात्रों की सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ता बनाने में सहायक हो।

आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की समीक्षा समिति (1990) ने तीन मुद्दें बताए –

- काम का अधिकार
- राष्ट्रीय एकता
- भारत के जन–जन में मानवीय भावना जागृत करना ।

(6) डेलर्स आयोग की रिपोर्ट "अधिगम अन्त:र्निष्ठ (Repart of Dallors Commission "Learning Treasure within")

अन्तर्राष्ट्रीय यूनोस्के रिपोर्ट (Learning treasure within) में शिक्षा के चार स्तम्भ four pillars of education, बताएं है :–

जानने का अधिगम (Learning to know) – पर्याप्त रूप से व्यापक सामान्य ज्ञान को थोड़े से विषयों पर गम्मीरता से कार्य करने के अवसर संयोजित करने द्वारा। इसका अर्थ सीखने का अधिगम भी है, ताकि उन अवसरों का लाभ उठाया जाए जिनका शिक्षा, जीवन भर के लिए, प्रावधान करती है।

करने का अधिगम (Learning to Do) – न केवल व्यावसायिक कौशल परन्तु और अधिक विस्तृत रूप में, अनेक स्थितियों से निपटने तथा समूहों में कार्य करने हेतु भी क्षमता अर्जित करना। इसका अर्थ युवा वर्ग के लोगों के विचित्र सामाजिक एवं कार्य अनुभवों के संदर्भ में करना सीखना भी है, जो स्थानीय अथवा राष्ट्रीय प्रसंग के परिणाम स्वरूप अनौपचारिक अथवा औपचारिक हो सकता है जिसमें पाठ्यक्रम, एकान्तर अध्ययन तथा कार्य सम्मिलित होते हैं|

इकट्ठे रहने का अधिगम (Learning to live together) – अन्य लोगों के प्रति एक समझ तथा अन्योन्याश्रय के प्रति सराहना विकसित करना, संयुक्त प्रयोजनाऐ कार्यान्वित करना तथा झगड़ों को नियन्त्रित करना, सीखना बहुलवाद, पारस्परिक सूझबूझ तथा शान्ति के मूल्यों के प्रति सम्मान भाव बनाए रखते हुए।

बनने का अधिगम (Learning to be) – ताकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का बेहतर विकास हो तथा सदा ही बढ़ती स्वायत्तता, निर्णय एवं व्यक्तिगत उतरदायित्व सहित कार्य करने की योग्यता उत्पन्न हो। इस सम्बन्ध में, शिक्षा को व्यक्ति की अन्त: शक्ति के किसी भी पक्ष की अवहेलना नहीं करनी चाहिए: स्मरण शक्ति, तर्क शक्ति, सौन्दर्य बोध शारीरिक क्षमताएँ तथा संचार कौशल।

औपचारिक शिक्षा पद्धतियाँ अन्य प्रकार के अधिगम के प्रति अवरोधक बनकर ज्ञानार्जन बल देने के लिए तत्पर रहती हैं, परन्तु अब शिक्षा की एक ओर समाहित रूप में कल्पना करना महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के दृष्टिकोण को विषयवस्तु तथा विधियों के सम्बन्ध में भावी शैक्षिक सुधारों एवं नीति के प्रति निर्देशित एवं सूचित करना चाहिए।

जीवन पर्यन्त अधिगम (Life long learning)

(1) आजीवन अधिगम का प्रत्यय ही तो वह कुंजी है जो इक्कीसवीं शताब्दी की ओर उपगमन प्रदान करता है। यह प्रारम्भिक तथा निरन्तर शिक्षा के बीच की पारस्परिक विभिन्नता से कहीं परे तक जाता है। यह एक अन्य, प्राय: प्रेषित सम्प्रत्यय, अर्थात अधिगम समाज की अवधारणा से जोड़ता है जिसके अर्न्तगत प्रत्येक वस्तु अधिगम तथा वैयक्तिक अन्त: शक्ति परिपूर्ण करने का अवसर प्रदान करती है।

(2) अपने नये स्वरूप में, निरन्तर शिक्षा, जो कुछ भी पहले अभ्यास में है, से कहीं दूर आगे बढ़ती प्रतीत होती है, विशेषतया विकसित देशों में, अर्थात वयस्कों के लिए पुनश्चर्या प्रशिक्षण, पुनर्प्रशिक्षण तथा परिवर्तन अथवा प्रोत्साहन पाठ्यकम द्वारा पदोन्नति। इसे सभी के लिए शिक्षा के द्वार खोलने चाहिए, अनेक प्रकार के भिन्न उद्देश्यों हेतु उन्हें दूसरा अथवा तीसरा अवसर देना, ज्ञान और सुन्दरता के प्रति उनकी इच्छा पूर्ण करना अथवा स्वयं से ऊपर उठने की उनकी कामना

की पूर्ति करना अथवा प्रायोगिक प्रशिक्षण सहित, प्रशिक्षण के सही व्यावसायिक स्वरूपों को व्यापक एवं गहन बनाना संभव करना।

संक्षेप में, 'आजीवन अधिगम' को समाज द्वारा प्रदान किए गए सभी अवसरों का लाभ उठाना चाहिए।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. कोठारी आयोग के अनुसार निर्धारित शिक्षा के लक्ष्यों की विवेचना कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के अनुसार निर्धारित शिक्षा के स्तम्भों की विवेचना कीजिए।
3. विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य बताइये।
4. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य बताइए।

2.8 आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Education in the reference of Modern India)

प्रत्येक समुदाय, समाज तथा राष्ट्र अपनी विभिन्न आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है। आधुनिक जनतान्त्रिक भारत में भी राष्ट्र की कतिपय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा का आयोजन किया गया है। स्वतन्त्र एवं लोकतान्त्रिक भारत में भी आयोजित शिक्षा के अनुसार कुछ लक्ष्य है। इन लक्ष्यों को समझने से पहले यह उचित होगा कि हम आधुनिक लोकतान्त्रिक भारत की आवश्यकताओं को समझे, क्योंकि आवश्यकताओं के संदर्भ में ही शैक्षिक लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है। आज देश की विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताएँ निम्नांकित है –

1. शिक्षा द्वारा भारत के भावी नागरिकों के चरित्र का इस प्रकार विकास करने की आवश्यकता है कि वे एक ईमानदार, कर्तव्य निष्ठ तथा परिश्रमी नागरिक बन सकें।
2. शिक्षा द्वारा बालकों के मन और मस्तिष्क से उन प्रवृतियों को आमूलचूल नष्ट करने की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता तथा जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के विकास में बाधक है।
3. आज विश्व के समस्त राष्ट्रों में वैज्ञानिक प्रवृति की होड़ लगी है। भारत इस होड़ में तभी खड़ा रह सकता है, जब उसके नागरिकों में वैज्ञानिक चिन्तन एवं दृश्टिकोण का विकास हो।
4. आज भारत के व्यक्तियों की कार्य कुशलता बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे प्रकृति प्रदत्त साधनों का अधिकतम उपयोग कर राष्ट्र को आर्थिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करें।
5. आज भारत के नागरिकों के स्वास्थ्य सुधार की भी आवश्यकता है।
6. आज आवश्यकता इस बात की भी है कि भारतीय संस्कृति की रक्षा की जाए, उसका परिमार्जन किया जाए तथा उसके सही रूप को विश्व के सम्मुख रखा जाए।

7. वर्तमान में आवश्यकता है कि भारतीय जनता को अन्ध विश्वास, व्यर्थ की रूढ़िवादिता एवं अकर्मण्यता बढ़ाने वाली भाग्यवादिता के चंगुल से निकलकर उसका आधुनिकीकरण किया जाए।
8. आज भारत में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर सकें जीवन से सम्बन्धित हो तथा छात्रों की कार्य कुशलता एवं कार्यक्षमता को बढ़ा सकें।

शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निश्चित कर सकते हैं

2.8.1 व्यक्ति सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to Individual)

आधुनिक भारत में व्यक्ति से सम्बन्धित शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए जा सकते है :–

– **शारीरिक विकास (Physical Development)**

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए शिक्षा व्यवस्था में हमे व्यायाम, योग एवं प्राणायाम, स्वास्थ्य शिक्षा, शरीर विज्ञान, खेलकूद, भोजन के पोष्टिक तत्व आदि से सम्बन्धित व्यावहारिक सैद्धान्तिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

– **चारित्रिक विकास (Character Development)**

आज भारत के व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं राष्ट्रीय चरित्र का विकास करने की नितान्त आवश्यकता है। आज भारत के चारित्रिक स्तर काफी गिर गया है व इसमें चारो ओर बेईमानी, भ्रष्टाचार, बलात्कार, कामचोरी, घूसखोरी जैसी कुप्रवृत्तियों का बोलबाला है। भारत, में किसी भी प्रकार के राष्ट्रीय चरित्र का भी अभाव है। इन दोनों ही दृष्टिकोणों से आज भारत में व्यक्तित्व एवं राष्ट्रीय चरित्र के विकास की आवश्यकता है अत: शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तियों का चारित्रिक विकास करना भी है।

– **मानसिक विकास (Mental Development)**

भारत के नागरिकों का इस प्रकार से मानसिक विकास करने की भी आवश्यकता है कि वे स्वतन्त्र रूप से विवेकयुक्त चिन्तन कर सकें, तथ्यों का विश्लेषण कर सके एवं उपयुक्त निर्णय ले सकें।

– **सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)**

यह सत्य है कि आज भारत अपनी महान एवं गौरवमयी संस्कृति धूमिल कर बैठा है। शिक्षा के माध्यम से हमें अपनी संस्कृति का रूप पुन: निखारना है। संस्कृति के उन्नयन हेतु हमें संस्कृति का परिमार्जन एवं परिष्करण करना होगा। शिक्षा के द्वारा भारतीय संस्कृति को जन–जन में फैलाना होगा। शिक्षा के द्वारा आज हम भारतीयों पर पाश्चात्य सभ्यता का जो भूत सवार है उसे भगाना होगा।

– **आधुनिकीकरण करना (Doing Modernization)**

शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों को रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता एवं अज्ञानता की विषैली कुण्डली से बाहर निकालकर लाने की आवश्यकता है, जिससे आज के भारतीय नई वैज्ञानिक दुनिया के आगे गर्व से अपना सिर ऊँचा कर सकें। आधुनिकीकरण के द्वारा ही वे उन्नति के नये–नये साधनों व ज्ञान का प्रयोग कर सकते।

– **उत्पादन का विकास करना (Development of Productivity)**

आज भारत के किसान एवं श्रमिक दोनों ही प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन क्षमता एवं कार्यक्षमता विश्व के अन्य राष्ट्रों में बहुत ही कम है। यह इसलिए कि भारत के किसान एवं श्रमिक दोनों ही अशिक्षित है एवं आज भी भारत में उत्पादन की पुरानी तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के द्वारा उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ानी है।

2.8.2 समाज सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to society)

आज भारतीय समाज अनेक बुराइयों तथा हीन भावनाओं से ग्रसित है, इसके कारण आज का भारतीय समाज वांछित उन्नति नहीं कर पा रहा है। सामाजिक उन्नति के लिए शिक्षा को बहुत कुछ करना है। वास्तव में आज के समाज में व्याप्त बुराइयों, कुरीतियों तथा अव्यवस्थाओं का अन्त करके उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करने का कार्य केवल शिक्षा ही कर सकती है। इस कार्य हेतु शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए गए है :–

– **सामाजिक बुराईयों का अन्त (Educational of social Evils)**

आज का भारतीय समाज विविध सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त है। दहेज, मृत्युभोज, आडम्बर, ढकोसले, अन्धविश्वास, मूर्ति–पूजा, बाल विवाह जैसी सैंकडों बुराइयों का धुन हमारे समाज को शनै–शनै खाये जा रहा है। शिक्षा द्वारा इन बुराइयों के प्रति एक आन्दोलन जमाने की आवश्यकता है। शिक्षा द्वारा छात्रों को इन बुराइयों के प्रति जागरूक बनाकर उनको दूर करने के प्रयास करने होंगे।

– **समाजवादी समाज की स्थापना (Establishment of Socialistic Society)**

भारतीय संविधान में यह घोषणा की गई है कि भारत में समाजवादी समाज की स्थापना की जायेगी। समाजवादी समाज में सबको सामाजिक न्याय मिलता है, सबके लिए अवसरों की समानता होती है, सबको उपयुक्त क्षेत्रों में पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। इस संवैधानिक व्यवस्था की पूर्ति एवं प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही संभव है। आज की शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि वह भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के प्रयत्न व प्रयास करें।

– **लोकतान्त्रिक नागरिकता का विकास (Development of Democratic citizenship)**

आज की भारतीय शिक्षा का मुख्य लक्ष्य भारत में लोकतान्त्रिकता का विकास करना है। इस प्रकार की नागरिकता के विकास से ही भारत में लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था सफल हो सकती है। इस कार्य के लिए राष्ट्र के नागरिकों में नेतृत्व के गुणों का विकास करना होगा, जिससे नागरिक स्वतन्त्र निर्णय ले 'सकें, विचार व भाषण में स्पष्टता ला सकें, जाति प्रान्त भाषा जैसी संकीर्णताओं से ऊपर उठ 'सके तथा धर्मान्धता एवं पक्षपात को त्याग राष्ट्र के उत्थान हेतु कटिबद्ध हो सकें|

2.8.3 राष्ट्र सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य (Educational Aims Related to Nation)

आज भारत राष्ट्र के सामने भी अनेकानेक समस्याएँ हैं। इन राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षा के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए जा सकते हैं :–

1. राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना
2. मानवीय मूल्यों का विकास करना
3. जन–शिक्षा की व्यवस्था करना

4. आर्थिक उन्नति के मार्ग प्रशस्त करना
5. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करना
6. अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना

उपयुक्त लक्ष्यों की प्राप्ति शिक्षा द्वारा ही की जा सकती है। हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आवश्यकताओं से सम्बन्धित करना होगा।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों की विवेचना कीजिए|
2. व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों को बताइए|

2.9 शिक्षा का ऐतहासिक परिप्रेक्ष्य, शिक्षा में परिवर्तित प्रवृतियां, शिक्षा का भावी परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective of Education,Changing Trends In Education,Future Perspectives of Education)

2.9.1 प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा

विश्व में भारतीय संस्कृति प्राचीनतम एवं सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। भारतीय संस्कृति का मूल स्त्रोत वैदिक संस्कृति है जिसका प्रभाव शिक्षा पर पड़ता रहता है तथा शिक्षा ने भी बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल भारतीय समाज एवं संस्कृति में आवश्यक परिवर्तन, संशोधन एवं परिवर्द्धन किये हैं। भारतीय संस्कृति में समन्वय की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। प्राचीन भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था थी धर्म अथवा आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया जाता था। इसलिए शिक्षा को एक प्रकाश के समान माना गया था जिसका कार्य व्यक्ति को अन्धकार (अज्ञान) से प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले जाना था।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के संदर्भ में **डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेयर** का मत है कि "प्राचीन भारत में शिक्षा अर्न्तज्योति और शक्ति का स्त्रोत मानी जाती थी जो शारीरिक मानसिक, बौद्धिक और आर्थिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन लाती थी तथा उसे श्रेष्ठ बनाती थी। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती थी कि हम समाज में एक विनित और उपयोगी नागरिक के रूप में रख सकें। यह अप्रत्यक्ष रूप से हमें इहलोक और परलोक दोनो में आत्मिक विकास में सहायक थी।" शिक्षा की व्यवस्था समाज एवं संस्कृति के विकास में सहायक थी। प्राचीन काल में गुरूकुल एवं आश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। आश्रम व्यवस्था के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम शिक्षा प्राप्त करने की अवधि निश्चित थी। पाठ्यचर्या के विषय भी तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार समाजोपयोगी एवं बालक के सर्वागीण विकास में सहायक होते थे। शनै–शनै गुरूकुल आश्रम व्यवस्था के साथ–साथ बौद्धकाल में तक्षशिला, नालंदा, पाटलीपुत्रवलभी, एवं विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें विद्याध्ययन हेतु विदेशों से भी आया करते थे।

2.9.2 मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा

मध्यकालीन भारत में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने प्राचीन शिक्षण संस्थाएँ नष्ट भ्रष्ट कर दीं किन्तु जब शांति व व्यवस्था स्थापित हुई तो दिल्ली के सुलतानों ने शिक्षा की ओर कुछ ध्यान दिया। यद्यपि शिक्षा की कोई सुव्यवस्थित नीति मुस्लिम शासकों ने निर्धारित नहीं की थी। तथापि कई स्थानों पर मस्जिदों में मकतब और मदरसे खोले गए जिनमें अरबी व फारसी का अध्ययन किया जाता था। मकतब प्राथमिक शिक्षा की संस्थाऐ थीं तथा मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। पंडित व ब्राह्मण अपने घरों में या मन्दिरों में हिन्दू बालकों को प्राचीन पद्धति से शिक्षा देते थे। मुसलमानों में पर्दा प्रथा होने से महिला शिक्षा उपेक्षित रही। मुगल शासकों के समय शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। उर्दू व फारसी प्रशासन व न्याय की भाषा होने के कारण इनके अध्ययन की ओर लोगों का ध्यान अधिक जाने लगा ताकि उन्हें सरकारी नौकरी मिलने लगे।

भारतीय संस्कृति सदैव से समन्वयकारी रही है जितने भी विदेशी आक्रमणकारी–शक हुण, कुशाण, मुसलमान आदि भारत में आकर बस गये, भारतीय संस्कृति में उनकी संस्कृति का विलय हो गया। भारतीय समाज विदेशी प्रभावों के कारण परिवर्तित होते हुए भी अपनी प्राचीन सास्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रख सका तथा परस्पर सास्कृतिक आदान–प्रदान द्वारा नवीन सामाजिक मूल्यों का सृजन एवं विकास करता रहा। **डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव** का मत है कि "'आधुनिक भारतीय संस्कृति किसी एक जाति या सम्प्रदाय की देन नही है। यह मिश्रित संस्कृति है जिसमें हिन्दू, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई तथा अंग्रेजों का योगदान है।" मध्यकालीन भारतीय समाज में जो समन्वयकारी परिवर्तन व परिवर्धन हुए वे मुस्लिम शासकों की शिक्षा नीति से प्रेरित थे।

2.9.3 वर्तमान भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत में अंग्रेजी शासन आरम्भ हुआ। अंग्रेजों की ईस्ट ईण्डिया कम्पनी भारत में व्यापारी के रूप में आई किन्तु शनैः शनैः अपने देश के राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप कर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। आरंभ में अंग्रेजों ने देश में शिक्षा–प्रसार के प्रति उदासीनता दिखलाई किन्तु बाद में अपने शासन को सुदृढ़ करने हेतु उन्होंने ऐसी शिक्षा पद्धति की नींव डाली जो भारतीयों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित कर क्लर्क तैयार कर सकें। 1835 में गवर्नर जनरल की कौंसिल के कानून सदस्य एवं शिक्षा समिति के अध्यक्ष **लार्ड मेकाले** (Macauley) ने अंग्रेजी शिक्षा और माध्यम का समर्थन करते हुए कहा, "हमे अपनी समस्त शक्ति लगाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हम भारतवासियों की एक ऐसी श्रेणी बना सकें जिसमें व्यक्ति जाति और रंग में तो भारतीय ही रहें परन्तु रूचि, विचार और भाषा में पूर्ण अंग्रेज हो।" अंग्रेजों द्वारा अपनाये गये 'निस्पन्दन सिद्धान्त' (Down ward filteration theory) के अनुसार शिक्षा व्यवस्था केवल उच्च वर्ग विशेष के लिए की गई। कालान्तर में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के प्रचार व प्रसार द्वारा भारतीयों में अपनी संस्कृति के प्रति घृणा उत्पन्न की गई।

यद्यपि अंग्रेजी शासन के विरूद्ध भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की अवधि में कुछ भारतीय शिक्षाविदों एवं चिन्तकों ने राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति को अपनाने पर बल दिया जिनमें स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्रीअरविन्द, महात्मा गॉधी आदि प्रमुख है तथापि 1947 में देश की

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी परम्परागत अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ही जारी रही। फलत: भारतीय समाज व संस्कृति का विघटन होता रहा जो राष्ट्र के विकास में बाधक है। वर्तमान भारतीय समाज के परिवर्तन में शिक्षा पद्धति अपनी विधायक भूमिका नही निभा सकी। स्वातन्त्रोत्तर काल में देश की शिक्षा पद्धति को राष्ट्रीय हितों के अनुकूल विकसित करने हेतु अनेक शिक्षा आयोग ने अपनी प्रस्तुतियाँ प्रस्तुत की है किन्तु अभी तक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का निर्धारण नही हो पाया है जिससे कि देशवासियों की आशाओं एवं आकांक्षाओं के अनुकूल वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षक अपनी क्रान्तिकारी भूमिका निभाकर भावी भारतीय समाज का नव निर्माण कर सकें।

2.10 शिक्षा में परिवर्तित प्रवृत्तियों (Changing Trends in Education)

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य देशकाल के अनुसार परिवर्तित होते रहते है तथा वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें सतत् परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं संशोधन अपेक्षित हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य दृष्टिगत होता है।

प्राचीन भारत में शिक्षा धार्मिक (आध्यात्मिक) एवं नैतिक गुणों के विकास का साधन थी। अत: उस समय शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य भी आदर्शवादी दर्शन से प्रभावित थे। गीता के अनुसार "सा विद्या या विमुक्तये"' अर्थात विद्या वही है जो मुक्ति दे, शिक्षा का लक्ष्य था। फलत: शिक्षा पद्धति, शिक्षाक्रम, शिक्षक, शिक्षार्थी आदि के आदर्श भी उसी लक्ष्य के अनुकूल निर्धारित किये गये थे। जाति प्रथा के प्रचलन के बाद शिक्षा के लक्ष्य व्यावसायिक भी हो गये। मध्यकाल अर्थात मुस्लिम शासन के अन्तर्गत शिक्षा का लक्ष्य धार्मिक व व्यावसायिक बना रहा। इस काल में धर्म की अपेक्षा नैतिकता पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा तथा जीविकोपार्जन की योग्यता प्रदान करना शिक्षक का मुख्य उद्देश्य हो गया।

शिक्षा के उद्देश्य पश्चिमी देशों में भी निर्धारित किये गये। यूनान के स्पार्टा नगर राज्य में शिक्षा का उद्देश्य था शक्ति व साहस का विकास तथा राज्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा। दूसरे नगर राज्य ऐथेन्स में शिक्षा के उद्देश्यों में व्यक्ति को यथेष्ट महत्व देकर जीवन में सुख प्राप्त करना भी अभिष्ट समझा गया। प्राचीन पाश्चात्य शिक्षा के उद्देश्य देश काल की स्थिति के अनुसार निर्धारित किए गए थे जिनमें आगे चलकर काफी परिवर्तन हुआ।

वर्तमान काल में औद्योगिक, लोकतन्त्र, समाज धर्म निरपेक्षता, वैज्ञानिक प्रगति आदि के प्रभाव स्वरूप शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। आज प्रत्येक देश अपने देशवासियों की आशा एवं आकांक्षा तथा प्रचलित शासन व्यवस्था के अनुरूप नागरिक तैयार करने हेतु आधुनिक विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में अपनी शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करता है। मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक अनुसंधानों का शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्यों के निर्धारण पर प्रभाव हुआ है। बालक की जन्मजात क्षमताओं के विकास तथा व्यवहारगत वांछित परिवर्तन पर प्रभाव हेतु व्यवहार के तीनों पक्षों ज्ञानात्मक (ज्ञान, अवबोध व ज्ञानापयोग), भावात्मक (अभिवृति एवं अभिरूचि) एवं कियात्मक (कौशल) को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षण उद्देश्य निर्धारित होने लगे हैं। इसके अतिरिक्त जब शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों में समन्वय किया जाता है जिससे कि शिक्षा एकांगी न होकर व्यक्ति एवं समाज दोनों की दृष्टि से उपयोगी हो सके।

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. "शिक्षा के लक्ष्य देशकाल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं|" इस कथन की पुष्टि कीजिए|

2.11 शिक्षा का भावी परिदृश्य (Future Perspectives of Education)

यह एक सार्वभौमिक मान्यता है कि देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग में शिक्षा में नवाचार प्रस्फुटित होते हैं। समय की मांग के अनुसार शिक्षा में आमूल–चल परिवर्तन होना एक आवश्यक एवं स्वाभाविक प्रकिया है। इसी कारण शिक्षा में परिवर्तन समाज में परिवर्तन का एक प्रमुख बल माना जाता है।

अतीत एवं वर्तमान की शिक्षा पर पूर्ण रूप से चिन्तन मनन करने पर ही भावी शिक्षा की रूप–रेखा स्पष्ट हो सकती है। आज तीव्र गति में ज्ञान का विस्फोट हो रहा है उससे मुकाबला करने के लिए विद्यालय के पास कोई ठोस और निश्चित योजना तक नहीं है। विद्यालय समय में आज मात्र सूचनाऐ एकत्रित करने वाली शिक्षा कल के लिए महत्वहीन सिद्ध होगी। भावी शिक्षा में बालक व शिक्षक को सतत अध्ययनरत बनाए रखना होगा। पुस्तकालय ही ज्ञान प्राप्ति के स्त्रोत के रूप में पर्याप्त नही है। इसके लिए रेडियो, टीवी, कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि दूर संचार साधनों को कक्षा कक्ष में लाना होगा।

भविष्य में शिक्षा देने की अपेक्षा शिक्षा नीति के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित करना अधिक महत्वपूर्ण होगा। इसलिए सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन ने कहा है "'मैं कभी भी किसी को कुछ भी नहीं सिखाता हूँ किन्तु बालक के लिए ऐसे अवसरों का निर्माण अवश्य कर देता हूँ कि बालक स्वयं ही सीख ले।" अर्थात भावी विद्यालय और उनके कक्षा कक्ष वर्तमान विद्यालय और कक्षा कक्षों से नितान्त भिन्न होंगे।

विद्यालय में उपस्थिति की अनिवार्यता, अनुपयोगी पाठ, पुरानी पाठ्य–पुस्तकें, कृत्रिम तथा विकृत परीक्षा प्रणाली तथा आदमकालीन प्रभावहीन वर्तमान शिक्षण विधियाँ आदि बातें भावी शिक्षा के लिए निरर्थक और महत्वहीन होंगी।

भावी शिक्षा की संभाहित संकल्पनाएँ

1. भविष्य की शिक्षा भविष्य के प्रति चेतनाशोल होनो चाहिए।
2. भावी शिक्षा एक व्यक्ति के भविष्य के कल्पना चित्र को विस्तृत, समृद्ध एवं परिष्कृत करने में समर्थ होनी चाहिए।
3. भावी शिक्षा सीखने वालों को भविष्य के प्राकल्पित स्वरूपों को निर्मित करने योग्य बनाने वाली होनी चाहिए। अगले 20–50 वर्षो में किस–किस प्रकार के व्यवसाय होंगे, किस प्रकार के परिवार व मानव सम्बन्ध होंगे, किस प्रकार की तकनीक होगी एवं किस प्रकार की संगठनात्मक संरचनाएँ होंगी आदि।
4. भावी शिक्षा मानव तैयार करने तथा सामाजिक एकीकरण की कुशलताऐ विकसित करने योग्य होनी चाहिए।

5. भावी शिक्षा दीर्घगामी उद्देश्यों तथा उसको प्राप्त करने के प्रजातान्त्रिक तरीकों पर बल देनी चाहिए।
6. यूनेस्को की बहु चर्चित रिपोर्ट "अधिगम अन्तःर्निष्ट" का निचोड़ यह है कि भविष्य की शिक्षा के चार प्रमुख उद्देश्य होंगे –
   1. एक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का निर्माण करना
   2. प्रजातन्त्र में विश्वास उत्पन्न करना
   3. मनुष्य का सर्वागिण विकास करना
   4. जीवन पर्यन्त शिक्षा प्रदान करना

   उक्त प्रतिवेदन के अनुसार भावी शिक्षा की महत्वपूर्ण विशेषताएँ :–
   - विषय–वस्तु व्यक्ति विशेष हेतु होगी।
   - चयन के स्थान पर मार्गदर्शन पर बल दिया जायेगा।
   - शिक्षा व्यक्तिगत होगी।
   - विद्यालय प्रशासन विकेन्द्रित होगा।
   - विद्यालय में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था लागू की जाए, विशेष सुविधाऐ विशेषाधिकार समाप्त किए जाएं।
   - प्रत्येक सीखने वाले को स्वयं ही अपनी शिक्षा का उतरदायित्व संभालना होगा।
   - एक सीखने वाला समाज (Learning society) एवं सीखने वाला वातावरण (Learning Enviornment) बनाया जाए।
   - शिक्षा की औपचारिक व्यवस्थाओं के स्थान पर पूर्णतया खुली एवं गतिशील व्यवस्थाऐ होनी चाहिए। ताकि कोई भी सीखने वाला अपनी इच्छा, क्षमता या गति के अनुसार अपने जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान किसी भी स्त्रोत से प्राप्त कर सकें।
   - विद्यालय शिक्षण सामग्री के केन्द्र के रूप में हो, शिक्षक आवश्यकता पड़ने पर सहायता व मार्गदर्शन करें। समाज के विभिन्न औपचारिक एवं अनौपचारिक साधन शिक्षा प्राप्त करने में सहायक हो।
   - आयु सीमा, विषयों, पाठ्यक्रमो स्तरों, परीक्षाओं के कृत्रिम अवरोधक समाप्त कर दिए जाएं।
   - पूर्व प्राथमिक एवं प्रौढ़ शिक्षा पर विशेष रूप से अधिक बल दिया जाए।
   - शिक्षा को अत्याधुनिक तकनीकी शिक्षा प्रदान करने में अधिकाधिक प्रयोग किया जाएं।
   - अन्तर्विषयी शिक्षा व शोध कार्य पर बल दिया जाएं।
   - भावी शिक्षा गतिशील, सामाजिक असमानताओं और अन्यायों से मुक्ति दिलवाने वाली तथा परम्परागत मूल्यों वाली होनी चाहिए।

राष्ट्र विशेष की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास की अवस्थाओं के अनुसार सशक्त व सम्पूर्ण होना चाहिए। ऐसा तभी संभव होगा जबकि शिक्षाशास्त्री, सामाजिक व राजनीतिक नेता, अधिकारी सभी शिक्षा के भविष्य के बारे में खुले दिमाग से सृजनात्मक चिन्तन करें व व्यावहारिक कार्य करें।

2.12 सार संक्षेप (Summary)

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

लक्ष्य क्रिया के लिए पथ प्रदर्शित करते हैं जबकि उद्देश्य कार्य के फल या परिणाम का घोतक है।

शिक्षा के लक्ष्य

(1). व्यक्तिगत लक्ष्य
- आत्मानुभूति
- आत्माभिव्यक्ति

(2). सामाजिक लक्ष्य
- उग्ररूप
- उदार रूप

(3). अन्य लक्ष्य
- ज्ञान का लक्ष्य
- शारीरिक विकास का लक्ष्य
- चरित्र विकास
- नागरिकता का लक्ष्य
- जीविकोपोर्जन का लक्ष्य
- सांस्कृतिक विकास का लक्ष्य
- सर्वागीण विकास का लक्ष्य

विभिन्न आयोगों एवं समितियों के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य :–

1. विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य
3. कोठारी आयोग के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य
4. नई नीति 1986 एवं राममूर्ति समिति के अनुसार शिक्षा के लक्ष्य
5. राममूर्ति समिति द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा
6. अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (डेलर्स आयोग) "अधिगम अन्तःर्निष्ट निधि' में मुख्य संकेतक एवं सिफारिशे -

   शिक्षा के चार स्तम्म –

जानने का अधिगम	Learning to Know
करने का अधिगम	Learning to Do
इकट्ठे रहने का अधिगम	Learning to live together
बनाने का अधिगम	Learning to be

आधुनिक भारतीय समाज के संदर्भ में शिक्षा के लक्ष्य :–

- व्यक्ति सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य
- समाज सम्बन्धी शिक्षा के लक्ष्य
- राष्ट्र सम्बन्धी शैक्षिक लक्ष्य

शिक्षा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1. प्राचीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा
2. मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा
3. वर्तमान भारतीय समाज का स्वरूप एवं शिक्षा

शिक्षा का भावी परिप्रेक्ष्य

आज तीव्र गति से ज्ञान का विस्फोट हो रहा है उससे मुकाबला करने के लिए विद्यालय के पास कोई ठोस और निश्चित योजना तक नहीं है। भावी शिक्षा में बालक व शिक्षक को सतत् अध्यायनरत बनाए रखना होगा। पुस्तकालय ही ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में पर्याप्त नहीं है। इसके लिए रेडियों, टीवी. इण्टरनेट आदि दूर संचार के साधनों को कक्षा–कक्ष में लाना होगा।

2.13 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1. शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक लक्ष्यों में विरोधाभासी क्या बिन्दु है?
   What are the points of contradiction between Individual and social aims of Education?
2. आधुनिक भारतीय समाज की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के सम्बन्ध में शिक्षा के लक्ष्यों की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए ।
   Give a brief outline of the aims of Education relvent for fulfillment of the needs and aspiration of modern Indian Society.
3. आधुनिक भारतीय समाज के लिए शिक्षा के लक्ष्यों का वर्णन कीजिए।
   Enumerate the aims of education relevant to modern Indian Society.
4. लक्ष्य एवं उद्देश्यों के सम्प्रत्यय को बताइए। लक्ष्य एवं उद्देश्यों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
   Write the concept of Aims and Objectives/Diffenciate between Aims and Objectives.
5. वर्तमान भारत के लिए उपयुक्त लक्ष्यों का निर्धारण करते समय आप किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।
   What would you like to keep in your mind while formulat a suitable aims of Education for present Indian Society.
6. शिक्षा के विभिन्न लक्ष्य क्या है? उनमें से आप किसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझते है? विवेचना कीजिए।
   What are the various aims of Education?Which of them is most important according to you? Discuss.
7. विभिन्न शिक्षा आयोगों ने शिक्षा के लक्ष्यों के सम्बन्ध में क्या विचार दिये है? विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

Discuss the view of different Education Commission regarding the aims of Education.

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1.	अग्रवाल एस. के.	:	शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त
2.	बंसल आर. ए. तथा शर्मा रामनाथ	:	शिक्षा के सिद्धान्त
3.	बटलर	:	फोर फिलोसॉफीज
4.	भाटिया	:	फिलोसॉफी ऑफ एजूकेशन
5.	चौबे अखिलेश एवं चौबे सरयू प्रसाद	:	शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार
6.	ओड एल.के.	:	शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
7.	माथुर एस. एस.	:	शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार
8.	पारीख मथुरश्वर शर्मा रजनी	:	उदयीमान भारतीय समाज तथा शिक्षा
9.	सक्सैना एवं आर. स्वरूप	:	शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
10.	डा. राधाकृष्णन	:	भारतीय दर्शन

2.15 रिपोर्ट सूची (Report List)

1. Report of secondary Education commission 1952.
2. Report of Education commission 1966.
3. National policy of Education 1986.
4. Programme of action: National policy of Education1995.
5. International commission on Education on development of Education,Learning to be,UNESSCO 1972
6. International commission on Education for the twenty first century: Learning the treasure within, UNESSCO Report of Delars,1996.

इकाई–3

शिक्षा के अभिकरण : औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरोपचारिक

(Agencies of Education : Formal,Non–formal and Informal)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the unit)

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the unit)

3.2 विषय प्रवेश (Introduction)

3.3 शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण (Classification of Agencies of Education)

3.4 शिक्षा के औपचारिक अभिकरण (Formal Agencies of Education)

3.4.1 औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Formal Agencies)

3.4.2 औपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Formal Education)

3.4.3 विद्यालय शिक्षा के औपचारिक अभिकरण के रूप में (School as a Formal Agency of Education)

- विद्यालय की परिभाषा (Definition of School)
- आधुनिक विद्यालय की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of modern School)
- विद्यालय के कार्य (Function of School)

3.5 शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण (Informal Agency of Education)

- घर या परिवार (Home or Family)
- समुदाय (Community)
- राज्य (State)
- धर्म या धार्मिक संस्थाएँ (Religion or Religies Institutions)
- जनसंचार के साधन (Mass Media)

3.5.1 अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Informal Education)

3.5.2 अनौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Informal Education)

3.6 शिक्षा के निरोपचारिक अभिकरण (Non–Formal Agency of Education)

3.6.1 निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Non–Formal Education)

3.6.2 निरौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Non–Formal Education)

3.7 शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक अभिकरणों में अन्तर (Difference among Formal Informal and Non–Formal Education)

3.8 खुला विद्यालय, खुला विश्वविद्यालय (Open School, Open universities)

3.8.1 खुला विद्यालय (Open School)

3.8.2 खुला विश्वविद्यालय (Open University)

(अ) विश्वविद्यालय के प्रकार (Types of Open University)

- आवासीय विश्वविद्यालय (Residential University)
- अनुबन्धित विश्वविद्यालय (Contact Bases University)
- आवासीय तथा अनुबन्धित विश्वविद्यालय (Residential and Contact Bases University)

(4) खुला विश्वविद्यालय (Open University)

- खुला विश्वविद्यालय की आवश्यकता (need of Open University)
- खुला विश्वविद्यालय की कार्यविधि (Procedure of Open University)
- खुला विश्वविद्यालय : विकास कथा (Open University : Development History)

3.9 इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय (indira Gandhi National Open University)

3.10 राज्य स्तरीय खुला विश्वविद्यालय : वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (State Open University : Vardhman Mahaveer Open University)

3.10.1 उद्देश्य (Objectives)

3.10.2 वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय की विशेषताएँ (Characteristics of Vardhman Mahaveer Open University,Kota)

3.10.3 अध्ययन सामग्री एवं श्रेणांक (Study Material and Credit System)

3.10.4 वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय द्वारा संचालित विभिन्न पाठ्यकम (Difference Courses run by Vardhman Open University)

3.10.5 परीक्षा पद्धति (Examination Pattern)

3.10.6 मूल्यांकन (Evaluation)

3.10.7 विद्यार्थी सहायता सेवाएँ (Student Support Services)

3.11 सार संक्षेप (Summary)

3.12 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluations Question)

3.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

1. शिक्षा के अभिकरण का अर्थ समझ सकेंगे।

2. शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण समझ सकेंगे।
3. शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक अभिकरण के सम्प्रत्यय से परिचित हो सकेंगे।
4. इन तीनो अभिकरणों में अन्तर स्थापित कर सकेंगे।
5. विद्यालय एक औपचारिक अभिकरण के साधन के रूप में व्याख्या कर सकेंगे।
6. विद्यालय के कार्यो को समझ सकेंगे।
7. घर–परिवार, समुदाय, राज्य, धार्मिक संस्थाएँ एवं जनसंचार साधन में अनौपचारिक अभिकरण के साधन है, परिचित हो सकेंगे।
8. खुल विद्यालय के स्वरूप में अवगत हो सकेंगे।
9. विश्वविद्यालय के प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
10. खुला विश्वविद्यालय के स्वरूप, आवश्यकता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
11. खुला विश्वविद्यालय की कार्य विधि एवं विकास गाथा से परिचित हो सकेंगे।
12. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय खुला विद्यालय के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

शिक्षा के अभिकरण : औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरोपचारिक (Agencies of Education : Formal,Non–Formal and Informal Agencies)

3.2 विषय प्रवेश (Introduction)

जब हम शिक्षा को आजीवन चलने वाली प्रकिया के रूप में देखते हैं तो हम शिक्षा के साधन के रूप में सिर्फ विद्यालय को ही नहीं देखते वरन् उन अनेक संस्थाओं को भी उसमें समन्वित करते हैं जिनमें व्यक्ति जीवन पर्यन्त रहता है एवं जिसमें व्यक्ति उपयोगी व अनुपयोगी ज्ञान प्राप्त करता है। इन संस्थाओं को हम शिक्षा के अभिकरण (Agencies of Education) के नाम से पुकारते है। अत: शिक्षा के अभिकरण वह तत्व, कारण या संस्थाएं है जो बालक पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शैक्षिक प्रभाव डालते हैं। यदि हम व्यापक अर्थ में देखते तो मनुष्य का सम्पूर्ण वातावरण ही उसकी शिक्षा को प्रभावित करता है परन्तु इस वातावरण में कुछ तत्व अधिक महत्वपूर्ण होते हैं चूंकि इनका बालक की शिक्षा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। शिक्षा के अभिकरणों का अर्थ स्पष्ट करते हुए **बी.डी. भटिया** (B.D.Bhatiya) ने लिखा है 'समाज में शिक्षा के कार्यो को करने के लिए अनेक विशिष्ट संस्थाओं का विकास किया है। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है। (Society has developed a number of specialized institutions to carry out the function of education.These institutions are known as the agencies of Education).

3.3 शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण (Classification of the Agencies of Education)

ब्राउन (Brown) ने शिक्षा के अभिकरणों को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है :–

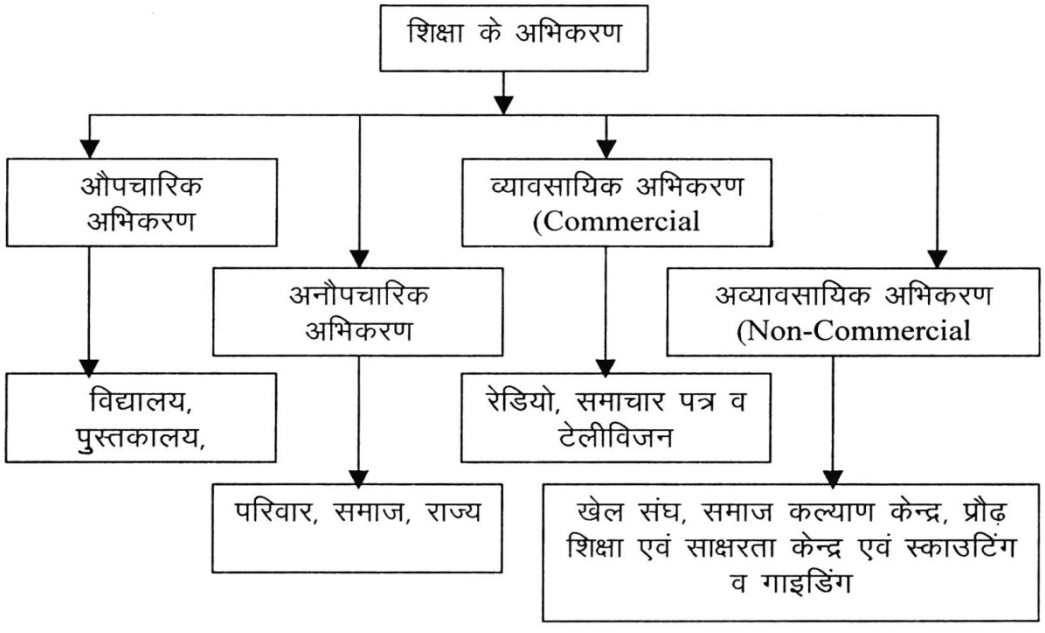

ड्यूवी (Duewy) ने शिक्षा के अभिकरणों को निम्न दो भागों में विभाजित किया है :–

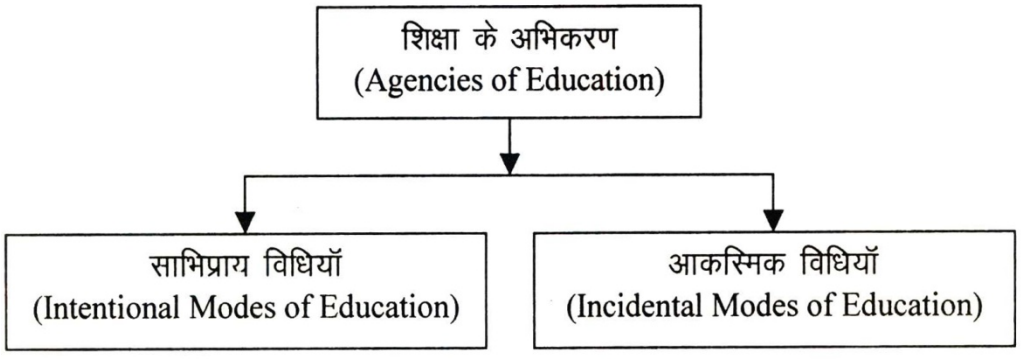

सामान्यतया हम शिक्षा के अभिकरणों को बालक के द्वारा की गई अन्तःक्रियाओं के आधार पर निम्न दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :–

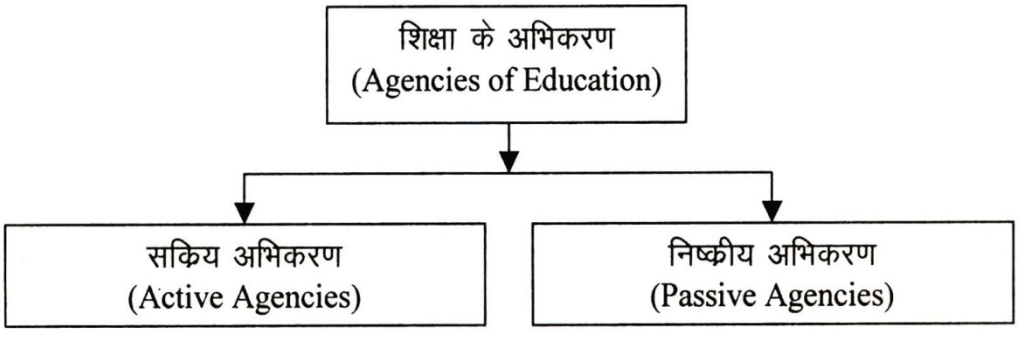

उपर्युक्त सभी वर्गीकरण को देखते हुए हम शिक्षा के अभिकरणों को मुख्यत: निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं :–

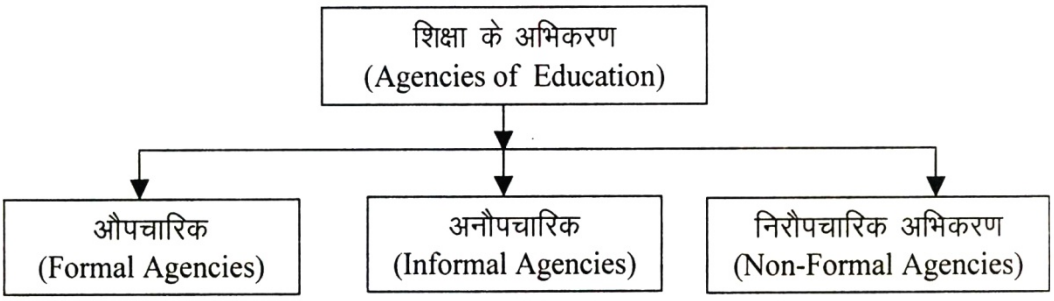

3.4 शिक्षा के औपचारिक अभिकरण (Formal Agencies of Education)

औपचारिक अभिकरण से तात्पर्य उन अभिकरणों से हैं जो पूर्व निश्चित योजना के अनुसार निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बालकों को नियन्त्रित वातावरण में रखते हुए निश्चित व्यक्ति द्वारा निश्चत पाठ्यक्रम (ज्ञान) को निश्चित विधि द्वारा निश्चित स्थान पर निश्चित समय में समाप्त कर देते हैं। औपचारिक अभिकरण द्वारा शिक्षा को स्पष्ट करते हुए **जे.एस.थॉमसन** (J.S.Thomson) ने कहा है, "शिक्षा एक ऐसी प्रक्रियॉ है जिसमें तथा जिसके द्वारा बालक के दृष्टिकोण, ज्ञान, चरित्र, व्यवहार एवं आदतों को स्थायी रूप से आकृति देने का, ढालने का प्रयत्न किया जाता है।" इस प्रकार विद्यालय एवं महाविद्यालयों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। जहाँ निश्चित समयावधि में निश्चित पाठ्यकम, निश्चित शिक्षकों द्वारा निश्चित लक्ष्य, उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पूर्ण किया जाता है। औपचारिक रूप से शिक्षा विद्यालयीकरण की प्रकिया है। औपचारिक अभिकरणों के लाभों पर प्रकाश डालते हुए **जॉन ड्यवी** (John Dewey) ने कहा है, "औपचारिक शिक्षा के बिना जटिल समाज के साधनों और उपलब्धियों को हस्तान्तरित करना संभव नहीं है। यह एक ऐसे अनुभव की प्राप्ति का द्वारा खोजती है, जिसको बालक दूसरों के साथ रहकर अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते।"

3.4.1 औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Formal Education)

- यह शिक्षा पूर्व नियोजन, आयोजन एवं सप्रयत्नशील उपायों द्वारा प्रदान की जाती है ।
- औपचारिक शिक्षा मूलत: विद्यालयों के द्वारा ही प्रदान की जाती है ।
- इसका प्रारम्भ विद्यालय जाने पर होता है एवं अन्त भी विद्यालय छोड़ने पर हो जाता है ।
- यह शिक्षा भौतिक मूल्यों से जुड़ी होती है और हमें भौतिक साधनों को जुटाने हेतु प्रेरित करती है।
- इसका उद्देश्य बालक को परीक्षा उत्तीर्ण कराकर प्रमाण–पत्र प्राप्त कराना है ।
- औपचारिक शिक्षा में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यकम, स्थान, समय, अध्यापक आदि सुनिश्चित कर लिए जाते हैं|

3.4.2 औपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Formal Education)

- यह शिक्षा सैद्धान्तिक अधिक व व्यावहारिक कम है।
- औपचारिक शिक्षा बालक को यह सिखाती है कि उसके जीवन का प्रमुख उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करना है एवं प्रमाण–पत्र प्राप्त करना है।
- यह शिक्षा अध्यापक को भी पाठ्यक्रम पूरा करने तक सीमित कर देती है।
- शिक्षा विद्यालय की चार दीवारी में बँध जाती है।

3.4.3 विद्यालय–शिक्षा के औपचारिक अभिकरण के रूप में (School as a Formal Agency Of Education)

प्राचीनकाल में ग्रीक में बालक जिस स्थान पर अपने आत्मा के विकास हेतु जाता था उन्हें स्कूल कहते थे। धीरे–धीरे इन संस्थाओं का विकास शिक्षा देने के एक पूर्व नियोजित स्थान के रूप में हुआ जो बालक को निश्चितकाल में निश्चित समय में निश्चित प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते थे।

भारतीय दर्शन की मान्यता विद्यालय के बारे में वह विद्या+आलय अर्थात् विद्यालय वह स्थान है जहाँ शिक्षा का आदान–प्रदान होता है। वास्तविकता में देखा जाए तो विद्यालय औपचारिक शिक्षा प्रदान करने का सक्रिय साधन है।

(1) विद्यालय की परिभाषा (Definition of School)

जॉन ड्यूवी (John Dewey) के अनुसार, 'स्कूल एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है जहाँ बालक के वांछित विकास की दृष्टि से विशिष्ट क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है।"

"School is a special environment where a certain quality of life and certain type of activities and occupation are provided with the object of securing the child's development along desirable lives."

रॉस (Ross) के अनुसार, "विद्यालय वे संस्थाएँ हैं जिनको सभ्य मनुष्यों ने इस उद्देश्य से स्थापित किया है कि समाज में सुव्यवस्थित तथा योग्य सदस्यता के लिए बालकों को तैयार करने में सहायता मिले।"

"Schools are institutions desired by civilized man for the purpose of aiding in the preparation of the young for well adjusted and efficient members of society."

विद्यालय की अवधारणा की चर्चा हम दो रूपों में कर सकते हैं :–

- विद्यालय की परम्परागत अवधारणा (Traditional Concept of Education)
- विद्यालय की आधुनिक अवधारणा (Modern Concept of Education)

विद्यालय की परम्परागत अवधारण में विद्यालय को ज्ञान प्रदान करने के एक साधन के रूप में देखते है। इनकी मान्यता है कि विद्यालय में ज्ञान का क्रय व विक्रय होता है। अध्यापक ज्ञान को बेचते है व बालक ज्ञान खरीदते है। यह विचारधारा शिक्षा की प्रक्रिया को नीरस व निर्जीव बनाती है एवं स्कूल के वातावरण को भी कृत्रिम बनाकर वास्तविकता से दूर ले जाती है। इन विद्यालयों में ज्ञान प्रदान करने का तरीका मनोवैज्ञानिक होता था। चूंकि बालक की रूचि, योग्यता व क्षमताओं पर ये ध्यान नहीं देते थे।

विद्यालय की आधुनिक आवधारणा के अन्तर्गत समाज विद्यालय से कुछ अधिक अपेक्षाएँ करता है। अब विद्यालय सूचना तथा ज्ञान प्रदान करने के केन्द्र मात्र नहीं रहे है। आज के विद्यालय का उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली के लिए एक कुशल व सफल नागरिक का निर्माण करना भी है।

(2) आधुनिक विद्यालय की प्रमुख विशेषताऐ (Main Characteristics of Modern School)

- छात्रों के प्रति नवीन दृष्टिकोण (New Attitude towards Students)
- शिक्षा में क्रिया के सिद्धान्त पर बल (Emphasis on principle of Activity in Education)
- सामुदायिक भावना का विकास (Development of Community Feeling)
- सक्रिय वातावरण होना (Have an active Environment)
- राष्ट्र व विश्व के प्रति दृष्टिकोण का निर्माण (Formation of the Healthy Attitude for Nation and the World)

(3) विद्यालय के कार्य (Function of School)

विभिन्न विद्वानों ने विद्यालय के कार्य के सम्बन्ध में अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं जिनमें से प्रमुख इस प्रकार है –

ब्रूबेकर (Brubacher) ने विद्यालय के कार्यो को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है:–

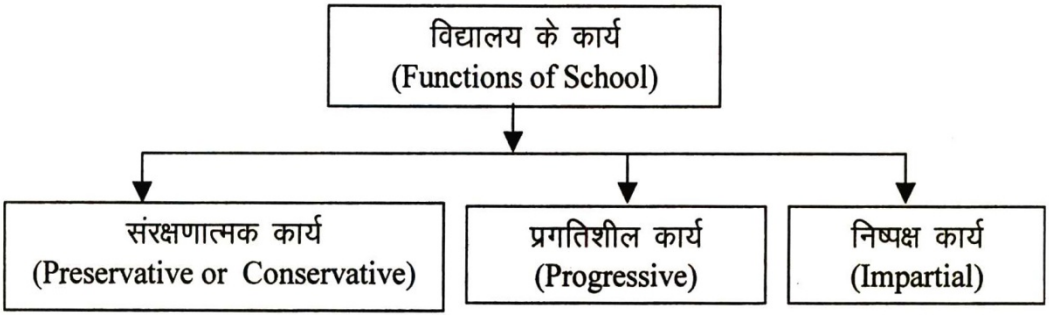

थॉम्पसन (Thompson) ने विद्यालय के कार्यो को इस प्रकार विभक्त किया है:–

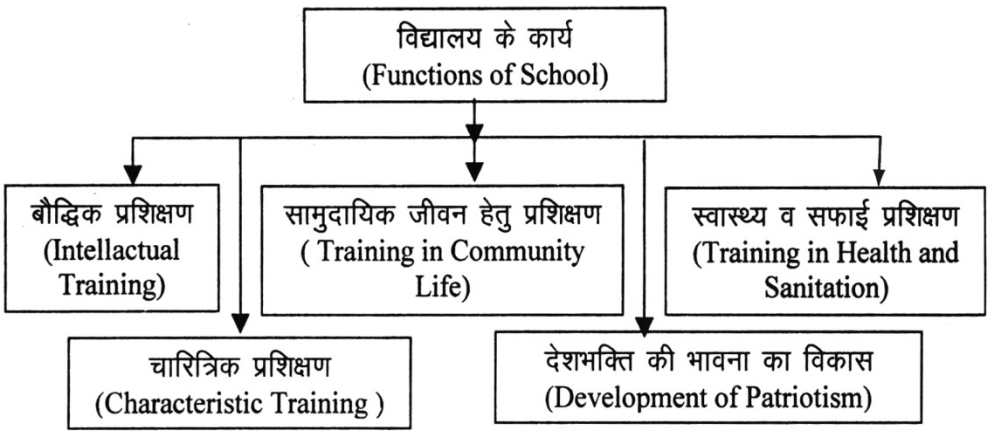

नैन्सी कैटी (Nancy Catty) ने विद्यालय के निम्न कार्य बताएं है :–

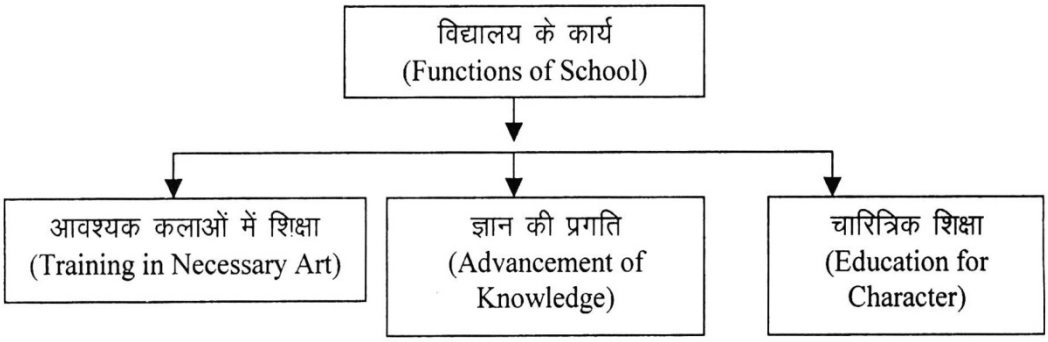

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. शिक्षा के अभिकरण का सम्प्रत्यय स्पष्ट कीजिए|
2. शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए|
3. औपचारिक अभिकरण के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए|
4. विद्यालय एक औपचारिक अभिकरण के साधन के रूप मे हैं| क्यों? स्पष्ट कीजिए|

3.5 शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण (Informal Agency of Education)

शिक्षा के अनौपचारिक साधन शिक्षा को एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रकिया के रूप में देखते हैं। इनका मानना है कि लिखना, पढ़ना या अक्षर ज्ञान प्राप्तकर लेना ही शिक्षा नहीं है। शिक्षा इसमें बहुत अधिक व्यापक तथा विस्तृत प्रत्यय है। शिक्षा वास्तव में वह है जो हम अपने जीवन के अच्छे–बुरे अनुभवों से सीखते हैं और यह अनुभव व्यक्ति जीवन पर्यन्त प्राप्त करता है।

डम्विल (Dumvile) के शब्दों में "शिक्षा के व्यापक रूप में वे सभी प्रभाव आ जाते है जो व्यक्ति को जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रभावित करते हैं।"

बैण्टाक (Bentak) के शब्दों में "शिक्षा सभी प्रकार के अनुभवों का योग है जिसे मनुष्य अपने जीवनकाल में प्राप्त करता है और जिसके द्वारा वह जो कुछ है, उसका निर्माण होता है।"

जे.एस.रॉस (J.S.Ross) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "अनौपचारिक शिक्षा बालक द्वारा सभी प्रभाव ग्रहण करना और उसे अपनी प्रकृति से उत्तेजित कर पूर्णतया विकसित करना सिखाती है।" वास्तव में देखा जाए तो अनौपचारिक शिक्षा जीवन से सम्बन्धित वे अनुभव है जिन्हें हम बिना किसी व्यवस्थित प्रयास संस्था तथा साधन के स्वाभाविक स्थिति से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से जीवन से सम्बन्धित होती है। यह शिक्षा स्वाभाविक रूप में होती है इसकी न तो कोई निश्चित योजना होती है और न ही कोई निश्चित नियमावली। यह

बालक के आचरण का रूपान्तरण करते हैं परन्तु रूपान्तरण की प्रक्रिया अज्ञात, अप्रत्यक्ष व अनौपचारिक होती है।

इन अभिकरणों में घर या परिवार, समुदाय, राज्य, धर्म या धार्मिक संस्थाएं एवं जन–संचार के साधन यथा रेडियो, टीवी, चलचित्र आदि की गणना की जाती है।

– **घर या परिवार (Home or Family)**

घर या परिवार प्राचीनकाल से ही मानव के सामाजिक जीवन का आधार रहा है। घर या परिवार में ही बालक प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करता है तथा बाद में भी अप्रत्यक्ष रूप से उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव डालता है। वह बालक की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और शैक्षिक सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। बालक अपने परिवारजनों को देखकर अनुकरण द्वारा अथवा घर के कार्यो में हाथ बटाकर अनेक चारित्रिक गुणों को सीखते है। अत: घर या परिवार का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों की अप्रत्यक्ष शिक्षा द्वारा उनके प्रति प्रेम, स्नेह व सहानुभूति का व्यवहार कर उनके व्यक्तित्व का विकास करे। विद्यालय अथवा औपचारिक अभिकरण के कार्य में भी घर या परिवार का सहयोग अपेक्षित है।

– **समुदाय (Community)**

स्थानीय समाज या समुदाय में रहकर बालक रीति–रिवाज, परम्पराएँ, धारणाएँ तथा जीवन पद्धति का अप्रत्यक्ष शिक्षण प्राप्त करता है। समुदाय सामाजिक जीवन का क्षेत्र है। विद्यालय अर्थात् औपचारिक अभिकरण की कार्यकुशलता एवं प्रभावोत्पादकता समुदाय पर ही निर्भर होती है। स्थानीय समुदाय के सहयोग, सदभावना एवं जन–सहयोग द्वारा ही शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों या संस्थाओं की स्थापना होती है एवं उनका शिक्षण कार्य उच्च स्तरीय बन पाता हैं|

– **राज्य (State)**

अनौपचारिक शिक्षा अभिकरणों में राज्य का प्रभाव आज की स्थिति में सर्वोपरी है। बालक की समुचित शिक्षा–दीक्षा हेतु पर्याप्त धनराशि आवंटित कर उपयुक्त शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने व शिक्षा के समान अवसर समाज के सभी वर्गो के बालकों को उपलब्ध कराने में राज्य का योगदान ही निर्णायक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त राज्य की राजनैतिक गतिविधियाँ भी बालक की शिक्षा पर अप्रत्यक्ष किन्तु निर्णायक प्रभाव डालती है। भारत जैसे लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के देश में विधायकों एवं सांसदों के व्यवहार एवं लोकतान्त्रिक संस्थाओं की कार्य प्रणाली बालक को प्रभावित करती है तथा उन्हें भावी नागरिक की भूमिका निभाने हेतु तैयार करती है। अत: राज्य का यह कर्तव्य है कि वह शिक्षा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझे।

– **धर्म या धार्मिक संस्थाएँ (Religion or Religies Institutions)**

धर्म या धार्मिक संस्थानों (मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च आदि) का बालक के व्यक्तित्व पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यद्यपि भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक राष्ट्र है किन्तु धर्म का भारतीय जनमानस पर सदैव से ही गहरा प्रभाव बना रहा है। अत: इन धार्मिक संस्थाओं का यह कर्तव्य है कि वे अपने सम्प्रत्यय के बालकों में धर्म–सहिष्णुता तथा दूसरों के धर्म के प्रति आदर की भावना विकसित करें जिससे कि साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में कोई बाधा न आये।

– **जनसंचार के साधन (Mass Media)**

जनसंचार के साधनों में समाचार पत्र, चलचित्र, टीवी. आदि का इस युग में शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरणों के रूप में प्रभाव अत्यधिक दृष्टिगत होता है। ये अप्रत्यक्ष रूप से बालक के मानस पर प्रभाव डालते हैं। शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थी असंतोष, अनुशासनहीनता, अपराधवृत्ति, अश्लील व्यवहार आदि अनेक असामाजिक तत्वों का समावेश जनसंचार के इन साधनों का दुष्प्रभाव है। अत: इन साधनों का दुरूपयोग न होकर बालक की अप्रत्यक्ष शिक्षा हेतु सदुपयोग किया जाना आवश्यक है।

3.5.1 अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताऐ (Characteristics of Informal Education)

1. अनौपचारिक शिक्षा स्वाभाविक होती है अर्थात् यह कृत्रिमता से परे होती है।
2. यह शिक्षा जीवनपर्यन्त चलती है अर्थात् जब बालक इस संसार में जन्म लेता है तब से प्रारम्म होकर मृत्यु पर्यन्त तक चलती है।
3. इस शिक्षा को देने का प्रमुख साधन परिवार, पड़ौस, समाज, राज्य, धर्म आदि है।
4. इसमें बालक अपने अनुभवों के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करता है।
5. इसमें बालक स्वतन्त्र वातावरण में शिक्षा ग्रहण करता है। उसके ऊपर कोई कठोर नियन्त्रण नहीं होता है|
6. यह शिक्षा बालक की रूचि एवं जिज्ञासा पर आधारित होती है।

3.5.2 अनौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Informal Education)

1. इसके द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान अस्पष्ट होता है।
2. इसमें शिक्षा का समय व स्थान अनिश्चित होने के कारण शिक्षा की स्थिति सदैव अस्पष्ट रहती है।
3. ज्ञान ग्रहण करते समय बालक गलत धारणाओं का विकास कर लेता है|
4. इस शिक्षा के द्वारा हम कौशलों एवं तकनीकियों का विकास नहीं कर सकते हैं।
5. इसकी नियमावली व अनुशासन ढीला होता है।

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण के सम्प्रत्यय स्पष्ट कीजिए|
2. शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण के साधन कौन–कौन से हैं?स्पष्ट कीजिए|

3.6 शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण (Non–formal Agencies of Education)

निरौपचारिक शिक्षा का स्वरूप उसके केन्द्र बिन्दु "जन–समुदाय" पर आधारित है। जन–साधारण को शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षा की जो व्यवस्था की जाती है वह निरौपचारिक शिक्षा है। इसे स्पष्ट करते हुए **अहमद** एवं **कूम्ब** ने कहा है –'निरौपचारिक शिक्षा औपचारिक विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे से परे एक संगठित व सुव्यवस्थित शैक्षिक प्रक्रिया है वे चाहे प्रौढ़ हो या बालक।" निरौपचारिक शिक्षा का सम्बन्ध सीखने से है। शिक्षार्थी अपने गति से सीखता है यह शिक्षा व्यवस्था उन सभी के लिए है जौ औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते।

यूनेस्को द्वारा निरौपचारिक शिक्षा के लक्ष्यों को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि यह व्यवस्था व्यक्ति और राष्ट्रीय विकास के प्रति जन–चेतना जागृत करने हेतु तथा यह जन–समुदाय में उत्पादन कौशल, प्रबन्ध कौशल का विकास कर मानव संसाधन विकसित करने के लिए यह स्वरूप उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

निरौपचारिक शिक्षा वह है जिसमें शिक्षा का स्वरूप पूर्ण रूप से नियन्त्रण में होता है। यह शिक्षा की एक सचेष्ट प्रक्रिया के रूप में देखते हैं एवं शिक्षा के विभिन्न आयामों पर नियन्त्रण रखते हैं अर्थात् इसमें शिक्षा का प्रवेश, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अध्यापक, छात्र, शिक्षा के उद्देश्य व शिक्षा की व्यवस्था पूरी तरह औपचारिक होती है परन्तु इसके साथ ही शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण को भी नियन्त्रित किया जाता है। निरौपचारिक शिक्षा में शिक्षा न तो पूर्णतया नियन्त्रित होती है और न पूर्णतया अनियन्त्रित वरन यह दोनों का सम्मिश्रण है ।

शिक्षा की इस अवधारणा के अन्तर्गत शिक्षार्थी कई क्षेत्रों में नियन्त्रित होता है एवं कई क्षेत्रों में अनियंत्रित होता है। इसमें प्राय: आयु, स्थान, शिक्षण विधि पर नियन्त्रण नहीं होता जबकि पाठ्यक्रम, परीक्षा, समय आदि की सीमा निश्चित होती है।

निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characterstics of Non–formal Education)

1. यह शिक्षा छात्रों को विद्यालय के तनावपूर्ण वातावरण से दूर रखती है।
2. एक समय में बहुत अधिक लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। अत: जिन देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रहीं है, वही पर बहुत उपयोगी है।
3. इसमें शिक्षा पर व्यय कम होता है।
4. यह शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा से अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें छात्र उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहता है साथ ही छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन एवं मापन करना सम्भव होता है।
5. इसका पाठ्यक्रम निश्चित होता है जिसमें छात्र अपने उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहता है।
6. इस शिक्षा को दूरस्थान पर रहने वाले या व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।

निरौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Non–formal Education)

1. छात्रों के मन में उत्पन्न शंका का तुरन्त समाधान सम्भव नहीं है।
2. कभी–कभी डाक व्यवस्था गड़बड़ होने के कारण छात्रों की पढ़ाई में व्यवधान पड़ जाता है।
3. सभी व्यक्ति अकेले में शिक्षा ग्रहण करते हैं इस कारण उनमें समूह भावना का विकास नहीं हो पाता।
4. अध्यापक व छात्रों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता अत: उन दोनों के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया का अभाव रहता हैं|

1.7 शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक अभिकरणों में अन्तर (Difference among Formal,Informal and Non–formal Agencies of Education)

क्र.सं.	शिक्षण के क्षेत्र Areas of Education	औपचारिक शिक्षा Formal Education	अनौपचारिक शिक्षा informal Education	निरौपचारिक शिक्षा Non–formal Education
1	**छात्र (Student)**	1. निश्चित होते हैं। 2. आयु सीमा निर्धारित होती है।	1. सीखने वालों की संख्या निश्चित नहीं होती | 2. आयु सीमा पर कोई नियन्त्रण नहीं होता।	1.छात्र निश्चित होते है।
2	**अध्यापक (Resource person Teacher)**	1.अध्यापक प्रशिक्षित होता है। 2.अध्यापक निश्चित होता है।	1. अध्यापक कोई भी हो सकता है। 2. आयु सीमा पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है।	1 शिक्षा देने वाले व शिक्षा ग्रहण करने वाले के मध्य कोई सम्बन्ध प्रत्यक्ष नहीं होता है।
3	**विषय–वस्तु (Content)**	1. सैद्धान्तिक होते है। 2. निश्चित होती है। 3. व्यावहारिकता कम होती है।	1 व्यावहारिक होती है। 2. अनिश्चित होती है। 3. सीखने वाले की रूचि पर आधारित होती है।	1. पाठ्यकम निश्चित होता है।
4	**शिक्षण पद्धति (Teaching Method)**	1. पाठ्यकम के अनुकूल होती है। 2. यह क्रिया पर कम बल देती हैं|	1 पद्धति लचीली होती है। 2. इसमें व्यावहारिकता, निरीक्षण आदि पर बल दिया जाता है।	1. लिखित पाठों के माध्यम से शिक्षण होता है| 2. अध्यापक व शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया असम्भव होती है।
5	**ढाँचा (Structure)**	1 शिक्षण कार्यक्रम व्यवस्थित होता है।	1.ढॉचे में कोई व्यवस्था नहीं होती	1. ढाँचा निश्चित होता है।

		2.यह विभिन्न इकाइयों में विभक्त होता है। 3.सीखना एक क्रमिक प्रकिया के रूप में होता है।	है। 2. सीखना एक अचानक होने वाली प्रक्रिया है।	2. सीखना कमिक रूप से नही होता है। 3. इसकी व्यवस्था सचेष्ट होता है।
6	**नियन्त्रण (Control)**	1. इसके ऊपर यान्त्रिक रूप से नियंत्रण होता होता हैं| 2. सीखने वाले पर शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र को लाया जाता है।	1 यह सीखने वाले के नियन्त्रण पर आधारित होता है।	इसमें शिक्षा के कुछ क्षेत्रों पर नियन्त्रण होता है | कुछ पर नहीं।
7	**स्थान (Location)**	1. स्थान निश्चित होता है।	1. स्थान निश्चित नहीं होता है।	1 स्थान छात्र के लिए निश्चित नहीं लेकिन शिक्षा देने का स्थान निश्चित होता है।
8	**समय (Time)**	1.समय निश्चित होता हैं|	1.समय अनिश्चित होता हैं|	1 अवधि निश्चित है किन्तु शिक्षा ग्रहण करने का समय नहीं
9	**मूल्यांकन (Evaluation)**	1. छात्रों का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।	1. छात्रों का मूल्यांकन सम्भव नहीं है।	1. छात्रों के मूल्यांकन की व्यवस्था है।
10	**परितोषिक (Reward)**	1 अंक या उपाधि के रूप में मिलता है।	1 प्रशंसा के रूप में प्राप्त होता है।	1 अंक या उपाधिक के रूप में मिलता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण के सम्प्रत्यय स्पष्ट कीजिए|
2. शिक्षा के अनौपचारिक व निरौपचारिक अभिकरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए|

3.8 खुला विद्यालय एवं विश्वविद्यालय (Open School,Open Universities)

3.8.1 खुला विद्यालय (Open Schooling)

शिक्षा जगत में **ईवान इलिच** की 'डीस्कूलिंग सोसायटी' और **एडवर्ड रेमर** की 'स्कूल इज डेड' पुस्तकों ने नयी–विचारधारा को जन्म दिया है। रेमर के अनुसार हमारी परम्परित विद्यालय पद्धति मर गई है और हमें शिक्षा के नये साधनों की खोज करनी है। इलिच का विचार है कि हम विद्यालयों को विस्थापित कर सकते हैं अथवा हम अपनी संस्कृति को विद्यालय रहित बना सकते हैं। क्योंकि विद्यालय अर्थहीन हो गये हैं। इलिच ने विद्यालयों को कारागाह माना है इसलिए वह खेल या स्वतन्त्र विद्यालयों की स्थापना करना चाहता है। उसके मत से इन स्वतन्त्र विद्यालयों की दो मुख आवश्यकताएँ हैं :–

1. उन्हें ग्रेडों व प्रमाण पत्रों से मुक्त होना चाहिए।
2. उन्हें विद्यालयी समाज के छुपे हुए मूल्यों से स्वतन्त्र होना चाहिए।

उसके अनुसार इस स्वतन्त्र विद्यालय के लिए स्वतन्त्र अध्यापकों की आवश्यकता है। अभी अध्यापक का क्षेत्र पाठ्यक्रम और विद्यालय के क्षेत्र तक सीमित है। उसे बढ़ाकर सम्पूर्ण मानव जीवन से सम्बन्धित करना है। उसके अनुसार इस तकनीकी युग में कुछ चुने हुए शक्तिशाली लोगों द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान और संचार साधनों पर प्रभुत्व पा लेने के कारण जन–साधारण उन सुविधाओं से वंचित रहता है। अत: इस समाज व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है।

एडवर्ड रेमर के अनुसार जब छात्रों की संख्या अत्यधिक है और शिक्षा के साधन न्यून हैं तब किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जा सकती है। उसके मतानुसार अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का विचार दोषपूर्ण है। इस विचार के कारण असमानता का विकास होता है। साधनों की न्यूनता के कारण कुछ साधन सम्पन्न व्यक्ति ही विद्यालयों का लाभ उठा सकते हैं और बचे हुए अन्य लोग समाज में निम्न स्तर बनाए रखने को बाध्य किए जाते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में अनेक वर्षो तक इस पद्धति के कारण केवल कुछ साधन सम्पन्न व्यक्ति ही शिक्षा प्राप्त करने की विलासिता का उपभोग करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के प्रति असन्तोष है और उसमें परिवर्तन की मांग बराबर की जा रही है। इसी परिवर्तन को मूर्त रूप देने के विचार से माध्यमिक स्तर पर केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दिल्ली द्वारा खुला विद्यालय की स्थापना की गई। इस योजना के अन्तर्गत 14 वर्ष की आयु से ऊपर के सब वयस्कों के लिए माध्यमिक स्तर तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करना तथा प्रमाण पत्र प्राप्त करने की व्यवस्था है। माध्यमिक शिक्षा के लिए कोई पूर्व प्रवेश योग्यता आवश्यक नहीं है। प्रवेशार्थी में केवल पढ़ने–लिखने की क्षमता होनी चाहिए। उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम के लिए माध्यमिक परीक्षा का प्रमाण–पत्र आवश्यक है। माध्यमिक शिक्षा के लिए एक भाषा तथा अन्य कोई 4 विषयों में परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक है। कोई परीक्षार्थी चाहे तो एक साल में अथवा धीरे–धीरे एक–एक, दो–दो विषयों की परीक्षा देते हुए पाँच साल में भी पाठ्यक्रम पूरा कर सकता है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी अथवा अंग्रेजी हो सकता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. खुला विद्यालय के स्वरूप की विवेचना कीजिए|

3.8.2 खुला विश्वविद्यालय (Open University)

विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक सभी छात्र–छात्राओं को विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं मिल पाता और कई बार ऐसा भी होता है कि उच्चत्तर शिक्षा की कामना करने वाले बहुत से व्यक्ति अपनी विशेष स्थितियों के कारण जीविकोपार्जन करने के लिए किसी न किसी काम–धन्धें को अपना लेते हैं। परन्तु उनकी यह अभिलाषा बराबर बनी रहती है कि वे विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त करें। इस प्रकार की विद्यार्थियों के लिए खुला विश्वविद्यालय की व्यवस्था की गई।

विश्वविद्यालय के प्रकार (Types of Universities)

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के विश्वविद्यालयों की व्यवस्था इस प्रकार से की गई है –

(1) आवासीय विश्वविद्यालय (Residential University)

इस प्रकार के विश्वविद्यालयों में शिक्षा की सारी व्यवस्था विश्वविद्यालय परिसर में ही उसके भिन्न–भिन्न विभागों में की जाती है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय आवासीय विश्वविद्यालय ही हैं।

(2) अनुबंधित विश्वविद्यालय (Contract bases University)

ऐसे विश्वविद्यालय में शिक्षण की समस्त व्यवस्था विश्वविद्यालय से अनुबंधित महाविद्यालय में की जाती है। इस प्रकार के विश्वविद्यालयों का काम केवल परीक्षा लेना और उपाधि देना होता है। आगरा विश्वविद्यालय, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, अजमेर विश्वविद्यालय हैं।

(3) आवासीय तथा अनुबंधित विश्वविद्यालय (Residential and Contract bases University)

इस प्रकार के विश्वविद्यालयों में दोनों ही बातें होती है :–

1. विश्वविद्यालय परिसर में शिक्षण व्यवस्था
2. अनुबंधित महाविद्यालय में शिक्षण कार्य

इस प्रकार के विश्वविद्यालय एक ओर तो शिक्षण कार्य करते है और दूसरी परीक्षा लेकर उपाधि भी देते हैं। जैसे मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय है।

(4) खुला विश्वविद्यालय (Open University)

प्रो. नूरूल हसन ने कहा था कि देश में सामान्य शिक्षण का एक विशाल कार्यक्रम एक खुले विश्वविद्यालय (जिसका क्षेत्राधिकार समस्त राष्ट्र हो) के द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए। इस खुले विश्वविद्यालय के द्वारा देश के दूरस्थ क्षेत्रों के विद्यार्थियों की, उनकी अर्जित करने की और अपने परिवार की क्षमता को कोई हानि पहुंचाये शिक्षा प्राप्त करने के अवसर होंगे।

खुला विश्वविद्यालय से तात्पर्य एक ऐसे विश्वविद्यालय से है जो उन सभी के लिए है जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। इन विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने के लिए –

1) किसी भी प्रकार की उपाधि या प्रमाण पत्र की जरूरत नहीं,
2) इसमें आयु की कोई सीमा नहीं,
3) कोई सीमित परिसर नहीं होता
4) छात्र किसी भी क्षेत्र का निवासी हो सकता है ।

खुला विश्वविद्यालय अन्य सामान्य विश्वविद्यालयों से अलग ही हो सकता है। इसमें सीमा का कोई बन्धन नहीं होता है। अध्यापकों के स्थान पर इस विश्वविद्यालय में दृश्य–श्रव्य उपकरण यथा–दूरदर्शन, लघु चलचित्र, श्रव्य साधन यथा–ध्वनिलेख संयंत्र (टेप रिकॉर्डर), रेडियो, ग्रामोफोन, लिंग्वाफोन द्वारा कार्य सम्पन्न होता है। साथ ही साथ उनके द्वारा छात्रों के पास सुझाव भेजे जाते हैं और उनसे कुछ विषयों पर लिखित उत्तर मांगे जाते है। कभी–कभी स्थानीय शिक्षण समूहों की सहायता के लिए शिक्षण की व्यवस्था भी की जाती है।

भारतवर्ष में कुछ विश्वविद्यालय पत्राचार पाठ्यक्रमों द्वारा भी विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्रदान करते है। पत्राचार पाठ्यक्रमों में अधिगम सामग्री डाक के द्वारा ही भेजी जाती है तथा उत्तरों को प्राप्त करने की भी व्यवस्था है कभी–कभी देश के विभिन्न स्थानों पर सम्पर्क कार्यक्रम (Contact Programmes) आयोजित किए जाते हैं। इस प्रकार के कार्यकम एक माह में दो बार अथवा वर्ष में दो या तीन बार आयोजित किए जाते हैं, जहां अध्यापक शिक्षण करता है।

इस बात को ध्यान में रखना होगा कि खुला विश्वविद्यालय, पत्राचार महाविद्यालय से सर्वथा भिन्न है। इनमें शिक्षा के दृष्य–श्रव्य उपकरणों का प्रयोग जिस प्रकार और जिस भाषा में किया जाता है वैसा पत्राचार विश्वविद्यालय में नहीं होता है।

खुला विश्वविद्यालय की आवश्यकता (Need of Open University)

आज जो शिक्षा छात्रों को दी जा रही है, वह मात्र औपचारिक बनकर रह गई है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में समस्या समाधान में उनका योगदान नहीं हो पाता। छात्र प्रकृति से दूर रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हमारी शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अच्छी नौकरी प्राप्त करना ही रह गया है। जो शिक्षा हम प्राप्त कर रहे हैं उसका वहीं अंश उपयोगी हो जाता है जिसका उपयोग हम अपने व्यवसाय या कार्यालय में कर पाते हैं। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि हम वर्तमान परिस्थितियों में औपचारिक, विद्यालय विहीन, खुला विश्वविद्यालय की तकनीकी की ओर ध्यान दें।

वैज्ञानिक उपलब्धियों ने सामाजिक क्रान्ति तो उत्पन्न की है, परन्तु अनेक जटिलताओं को भी बढ़ा दिया है। शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में असमर्थ रही है। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में भी मूल्यों का हास निरन्तर हो रहा है। शिक्षण संस्थानों की उपलखियॉ भी न के बराबर हैं। वे केवल बेरोजगारों की सेना ही तैयार कर रही है। इन शिक्षण संस्थानों से निकले युवक श्रम से दूर भागते हैं, उनकी स्वास्थ्य में कोई रूचि नहीं। भाषा की दृष्टि से वे कमजोर हैं तथा उनमें सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को पूरा करने की कोई भावना नहीं। इन कमियों का निराकरण करने के लिए खुला विश्वविद्यालय की आवश्यकता है।

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. विश्वविद्यालय के प्रकारों की विवेचना कीजिए|
2. खुला विश्वविद्यालय के स्वरूप को समझाए|
3. खुला विश्वविद्यालय की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए|

खुला विश्वविद्यालय की कार्य विधि (Procedure of Open University)

खुला विश्वविद्यालय की कार्य–विधि का अध्ययन करने पर इसके सम्बन्ध में निम्न बातें कहीं जा सकती हैं–

1. पाठ विद्वानों द्वारा तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक पाठ में कुछ कार्य–भार विद्यार्थियों को सौंप दिया जाता है।
2. विद्यार्थियों का मूल्यांकन निरन्तर किया जाता है।
3. छात्रों के लिए सम्पर्क व्याख्यानों का आयोजन किया जाता है।
4. विभिन्न कार्यक्रमों के लिए योग्य व्यक्तियों का चयन किया जाता है जिनकी देख–रेख में सब काम होते हैं|
5. खुले विश्वविद्यालय में आमतौर पर शिक्षण पत्राचार पर आधारित है इसके लिए अध्यापकों की नियुक्ति की जाती है ताकि –
   1) वे छात्र का मार्गदर्शन करें।
   2) वे उनके कार्यो का मूल्यांकन करें।
6. लगभग सभी पाठ्यक्रमों में खुला विश्वविद्यालय के छात्रों को एक सप्ताह अथवा दो सप्ताह के लिए आवासीय महाविद्यालय में उपस्थित रहना होता है। विशेष रूप से बी.एड. कक्षाओं के लिए यह उपस्थिति अनिवार्य है।
7. छात्रों को विभिन्न उपकरणों की सुविधा प्रदान करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक अध्ययन केन्द्र स्थापित किया जाता है। इन केन्द्रों में टेप रिकॉर्डर, दूरदर्शन, दृश्य–श्रव्य, कैसेट आदि की व्यवस्था भी होती है।

खुला विश्वविद्यालय : विकास कथा (Open University Development Story)

इंग्लैण्ड में खुले विश्वविद्यालय का विचार सबसे पहले वहां की प्रधानमन्त्री हेरोल्ड ब्रिल्सन ने सितम्बर 1963 में ग्लासगों को दिया। उन्होंने उसे हवार्ड विश्वविद्यालय का नाम दिया जो बाद में 'खुले विश्वविद्यालय' में परिवर्तित कर दिया गया। जनवरी 1969 में लेबर पार्टी की सरकार ने इस विचार को स्वीकृति प्रदान की। वहां के शिक्षा और विज्ञान मन्त्री ने इसे आगामी कुछ वर्षो का सबसे महत्वपूर्ण शैक्षिक प्रगति का कार्य माना। खुले विश्वविद्यालय को मूर्त रूप देने का कार्य 1971 में हुआ।

प्रारम्म में इस विश्वविद्यालय में 25 हजार लोगों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश दिया गया। 1985 में विद्यार्थियों की संख्या एक लाख तक पहुंच गई। इंग्लैण्ड में इस खुले विश्वविद्यालय द्वारा 300 केन्द्र चलाये जाते हैं। इन विश्वविद्यालयों की सफलता को देखकर जापान, जर्मनी, फांस, इटली, रूस, चीन, हॉलेण्ड, स्पेन, थाईलैण्ड, कोरिया, श्रीलंका और भारत जैसे देशों में भी खुले विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। वर्तमान में इजराइल, ईरान, इण्डोनेशिया,

बेनेजुएला, कनाडा और पाकिस्तान जैसे देशों में खुले विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी तेजी से प्रसार कार्य कर रहे हैं।

भारतवर्ष में 1970 से ही यह प्रयास किया जा रहा था कि यही पर भी खुला विश्वविद्यालय स्थापित हो। 1970 को अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक वर्ष घोषित किया गया। उस समय यह संकल्प किया गया कि भारत वर्ष में भी ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जायेगी।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर सबसे पहला खुला विश्वविद्यालय 1982 में आन्ध्र प्रदेश में प्रारम्भ किया गया। इसमें जिन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गई, वे थे (1) बी.ए., बी.एस.सी., बी.कॉम. (2) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम (3) पुस्तकालय विज्ञान (4) पब्लिक अकाउण्टेन्सी।

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. खुला विश्वविद्यालय की कार्य विधि बताइए।
2. खुला विश्वविद्यालय की विकास गाथा को बताइए।

3.9 इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय (Indira Gandhi National Open University)

जनवरी, 1985 ई. में प्रधानमन्त्री ने राष्ट्रीय स्तर पर खुला विश्वविद्यालय की स्थापना का अनुमोदन किया और सितम्बर 1985 में इन्दिरा गॉधी खुला विश्वविद्यालय की स्थापना दिल्ली में की गई। इस विश्वविद्यालय का प्रमुख प्रयोजन दूरगामी शिक्षा एवं प्रशिक्षण को विकसित करना है। इस विश्वविद्यालय का स्वरूप राष्ट्रीय है। अत: इस विश्वविद्यालय के केन्द्र समस्त देश में स्थापित किए गए। इसके संगठन का जो स्वरूप निर्धारित किया गया है वह इस प्रकार है –

1. प्रशासनिक एवं शैक्षिक कार्यो का संचालन केन्द्र द्वारा होगा।
2. राज्य एवं जिला स्तर पर विश्वविद्यालय के अध्ययन केन्द्र होंगे।
3. इसके अतिरिक्त चलते–फिरते Moobile केन्द्र भी होंगे।
4. केन्द्र के कार्यो के संचालन के लिए एक संयोजक होगा।
5. छात्रों के शिक्षण के लिए आधुनिक तकनीकों–आकाशवाणी, दूरदर्शन, विडियो आदि का प्रबन्ध केन्द्रों पर होगा।
6. दूरदर्शन पर प्रसारित पाठ, इस प्रकार के होंगे कि समस्त देश के विद्यार्थी लाभ उठा सकें।
7. सम्प्रेषण का माध्यम हिन्दी तथा अंग्रेजी होगा।
8. छात्रों को गहकार्य दिया जायेगा।
9. छात्रों के मूल्यांकन के तीन रूप होंगे –

   (अ) विद्यार्थी द्वारा स्वमूल्यांकन (ब) अध्यापक द्वारा मूल्यांकन

   (स) विश्वविद्यालय द्वारा मूल्यांकन

परीक्षा अध्ययन केन्द्रों पर ही ली जायेगी और उत्तीर्ण होने पर विश्वविद्यालय द्वारा उपाधि या प्रमाण पत्र दिये जायेंगे।

राज्य स्तरीय खुला विश्वविद्यालय (State Open University)

वर्द्धमान महावीर खुलाविश्वविद्यालय, कोटा

वर्द्धमान महावीर कोटा खुला विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1987 में राज्य विधान सभा के पारित अधिनियम के अन्तर्गत की गई। सरकार ने यह अनुभव किया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पाँच दशक बाद भी भारत में उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध अवसर असमान एवं अपर्याप्त है। पारम्परिक शिक्षा प्रणाली की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए दूरस्थ शिक्षा पर आधारित इस नए विश्वविद्यालय की स्थापना से उच्च शिक्षा से वंचित समाज के कमजोरवर्ग, महिलाएँ एवं रोजगार प्राप्त व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के साथ–साथ इस विश्वविद्यालय के द्वारा अपनी शैक्षणिक योग्यताओं में वृद्धि का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

(1) उद्देश्य (Objectives)

1. उच्च शिक्षा के प्रजातान्त्रिकरण के उद्देश्य से शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक समूहों, रोजगार प्राप्त व्यक्तियों, महिलाओं, विकलांगों एवं वयस्कों को शिक्षा प्राप्ति का अवसर प्रदान करना।
2. कम लागत पर गुणात्मक एवं रोजगारोन्मुखी उच्च शिक्षा उपलब्ध कराना।
3. प्रदेश के उच्च शिक्षा से वंचित दूरस्थ क्षेत्रों, आदिवासी एवं मरूस्थलीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का प्रसार करना।
4. रोजगारोन्मुखी पाठ्यकमों के माध्यम से रोजगार अवसरों का सृजन करना।

(2) वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय की विशेषताएँ (Characteristics of Vardhman Mahaveer Open University)

- प्रवेश सम्बन्धी लचीले नियम
- बिना भेद–भाव सबको समान अवसर।
- दूरस्थ शिक्षा तकनीकों पर आधारित विषय विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्य–सामग्री विद्यार्थियों को घर बैठे उपलब्ध करवायी जाती है यह पद्धति स्वयं पाठी के रूप में परीक्षा देने एवं पत्राचार पद्धति से श्रेष्ठ है।
- विद्यार्थियों को अपनी रूचि व योग्यता के अनुसार परीक्षा देने की स्वतन्त्रता।
- नियमित उपस्थिति की बाधा नहीं।
- आधुनिक संचार एवं शैक्षणिक तकनीकी का उपयोग कर दृश्य–श्रव्य सामग्री अध्ययन केन्द्रों पर उपलब्ध कराई जाती है।
- सतत् मूल्यांकन की दृष्टि से सत्रीय कार्य एवं सत्रांत परीक्षा का आयोजन।
- प्रत्येक के लिए प्रतिशत अंकों की बाध्यता नहीं।

(3) अध्ययन सामग्री एवं श्रेणांक (Study of Material and Credit System)

खुला विश्वविद्यालय में विभिन्न पाठ्यक्रमों के अधिकतम केडिट निर्धारित है। विषय विशेषज्ञों की राय में किसी पाठ्यक्रम के अध्ययन में लगने वाले समय के आधार पर इनका निर्धारण किया जाता है। सामान्यतया एक क्रेडिट को 30 घंटें के अध्ययन के बराबर माना गया है।

इसमें पाठ्य–सामग्री को पढ़ना एवं समझना, बोध प्रश्नों के उत्तर लिखना, उस विषय से सम्बन्धित सत्रीय कार्यो को पूरा करना। इसमें सम्बन्धित दृश्य एवं श्रव्य सामग्री में लगने वाले समय को सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार पाठ्यक्रम यदि 8 क्रेडिट का है तो छात्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वह 8 गुणा 30=240 घंटे का समय उस पाठ्यक्रम के अध्ययन करने में लगायेगा। इसके अतिरिक्त इस अध्ययन पद्धति में अध्ययन केन्द्रों पर परामर्शदाताओं के साथ एवं अपने साथी विद्यार्थियों के साथ विचार–विमर्श की सुविधा, सप्ताहन्त एवं अवकाश के दिनों में दी जाती है।

(4) वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय द्वारा संचालित विभिन्न पाठ्यकम (Different Courses Run by Vardhman Mahaveer Open University)

1. स्नातक उपाधि कार्यकम (B.A./B.Com.) कला एवं वाणिज्य।
2. पत्रकारिता (जनसंचार) में स्नातक उपाधि कार्यक्रम BJ(MC)
3. शिक्षा में स्नातक उपाधि (B.ED.)
4. शिक्षा में स्नातकोत्तर उपाधि कार्यकम (M.A.)
5. पत्र कारिता (जनसंचार) में स्नातकोत्तर उपाधि कार्यक्रम MJ(MC)
6. प्रबन्ध पाठ्यकम (Management Course)
7. इस विश्वविद्यालय द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में डिप्लोमा एवं सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम संचालित किए जाते है यथा संस्कृति एवं पर्यटन, पुस्तकालय विज्ञान, सूचना विज्ञान, श्रम कानून, औद्योगिक सम्बन्ध एवं कार्मिक प्रबन्ध, होटल प्रबन्ध, स्वास्थ्य शिक्षा, भोजन एवं भोजन कार्यालय प्रबन्ध, कम्प्यूटर प्रशिक्षण आदि।

(4) परीक्षा पद्धति (Examination Pattern)

इस विश्वविद्यालय की परीक्षा प्रणाली के दो प्रमुख तत्व है–

(अ) सत्रीय कार्य (Internal Assignment)

विद्यार्थी द्वारा चुने गए पाठ्यक्रम के प्रत्येक पेपर में विश्वविद्यालय सत्रीय कार्य प्रदान करता है। यह आन्तरिक मूल्यांकन कार्य विद्यार्थी द्वारा अपने घर पर बैठकर ही किया जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि आन्तरिक मूल्यांकन की पद्धति के कारण विद्यार्थी निरन्तर अध्ययनरत रहेगा। आन्तरिक मूल्यांकन के प्राप्तांक अन्तिम परीक्षा परिणाम में सम्मिलित किए जाते हैं जो कुल प्राप्तांक का 30 प्रतिशत होता है।

(ब) सत्रांत परीक्षा (Term End Examination)

कार्यक्रम की न्यूनतम अवधि पूरी होने के बाद विश्वविद्यालय द्वारा सत्रान्त परीक्षा आयोजित की जाती है। इसका अंक भार 70 प्रतिशत होता है। विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष में दो सत्रांत परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। जो सामान्यत: जून एवं दिसम्बर माह में होती है। अध्ययन की न्यूनतम अवधि समाप्त होने पर विद्यार्थी जून या दिसम्बर की सत्रान्त परीक्षा में अपनी सुविधानुसार भाग ले सकता है।

(6) मूल्यांकन (Evaluation)

1. परीक्षार्थी को सत्रान्त परीक्षा एवं सत्रीय कार्य में अलग–अलग पास होना अनिवार्य है ।
2. परीक्षार्थी को दोनों प्रकार की परीक्षाओं में 'सी' ग्रेड प्राप्त करना अनिवार्य है ।

3. सत्रान्त परीक्षा में 'सी' ग्रेड प्राप्त करने के लिए 70 में से कम से कम 35 अंक तथा सत्रीय कार्य में 30 में से कम से कम 15 अंक प्राप्त करना अनिवार्य है। अन्यथा विद्यार्थी अनुत्तीर्ण माना जायेगा।

(7) विद्यार्थी सहायता सेवाएँ (Student Support Services)

वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ने राजस्थान में अब तक 6 स्थानों पर क्षेत्रीय केन्द्र एवं 53 स्थानों पर अध्ययन केन्द्र प्रारम्भ कर दिए हैं। प्रत्येक क्षेत्र केन्द्र में निम्नलिखित सुविधाएं प्रदान की जाती हैं:–

- शिक्षण तथा परामर्श सुविधाएं
- दृश्य–श्रव्य उपकरण तथा उनके उपयोग के अन्य साधन
- पुस्तकालय सुविधा
- सूचना सेवा

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय के स्वरूप को बताइए।
2. राज्य खुला विश्वविद्यालय के उद्देश्यों एवं उनकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

3.1.1 सार–संक्षेप (Summary)

शिक्षा के अभिकरण (Agencies of Education)

जिनमें व्यक्ति जीवन पर्यन्त रहता है एवं जिसमें व्यक्ति उपयोगी व अनुपयोगी ज्ञान प्राप्त करता है। इन संस्थाओं को हम शिक्षा के अभिकरण के नाम से पुकारते हैं।

शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण (Classification of Agencies of Education)

शिक्षा के अभिकरणों को अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग तरह से वर्गीकृत किया है। सभी वर्गीकरण के आधार पर हम शिक्षा के अभिकरणों को मुख्यत: निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं :–

शिक्षा के औपचारिक अभिकरण (Formal Agencies of Education)

औपचारिक अभिकरण से तात्पर्य वे अभिकरण जो पूर्व निश्चित योजना के अनुसार निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बालकों को नियंत्रित वातावरण में रखते हुए निश्चित व्यक्ति द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम की निश्चित विधि द्वारा निश्चित स्थान एवं समय में समाप्त कर देते हैं।

औपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Formal Education)

- औपचारिक शिक्षा मूलत: विद्यालयों द्वारा ही प्रदान की जाती है।
- इसका प्रारम्भ विद्यालय जाने पर होता है एवं अन्त भी विद्यालय छोड़ने पर हो जाता है।

औपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Formal Education)

- यह शिक्षा सैद्धान्तिक अधिक व व्यावहारिक कम है।

– यह शिक्षा विद्यालय की चार–दीवारी में बंध जाती है।

विद्यालय : शिक्षा के औपचारिक अभिकरण के रूप में (School as a Formal agency of education)

भारतीय दर्शन की मान्यता विद्यालय के बारे में विद्या+आलय अर्थात् विद्यालय वह स्थान है जहाँ शिक्षा का आदान–प्रदान होता है। वास्तव में विद्यालय औपचारिक शिक्षा प्रदान करने का सक्रिय साधन है।

विद्यालय की परिभाषा (Definition of school)

जॉन ड्यूवी (Jhon Dewey) के अनुसार, "स्कूल एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है जहाँ बालक के वांछित विकास की दृष्टि से विशिष्ट क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है।"

विद्यालय के कार्य (Function of School)

विभिन्न विद्वानों ने विद्यालय के कार्य के सम्बन्ध में अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं जिनमें से प्रमुख हैं -

नैन्सी कैटी (Nancy Catty) ने विद्यालय के निम्न कार्य बताएँ है :–

शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण (Informal Agency of Education)

बैण्टाक (Bentak) के शब्दों में, "शिक्षा सभी प्रकार के अनुभवों का योग है, जिन्हें मनुष्य अपने जीवनकाल में प्राप्त करता है और जिसके द्वारा वह जो कुछ है, उनका निर्माण होता है।"

अनौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Charactristics of Informal Education)

– अनौपचारिक शिक्षा कृत्रिमता से परे स्वाभाविक होती है।
– यह शिक्षा बालक के जन्म से प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलती है।

अनौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Informal Education)

– इसमें शिक्षा का समय व स्थान अनिश्चित होने के कारण शिक्षा की रिथति सदैव अस्पष्ट रहती है।
– इस शिक्षा के द्वारा हम कौशलों एवं तकनीकियों का विकास नहीं कर सकते।

शिक्षा के निरौपचारिक अभिकरण (Non Formal Agencies of Education)

जनसाधारण को शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षा की जो व्यवस्था की जाती है वह निरौपचारिक शिक्षा है।

निरौपचारिक शिक्षा की विशेषताएँ (Characteristics of Non–formal Education)

– यह शिक्षा छात्रों को विद्यालय के तनावपूर्ण वातावरण से दूर करती है।
– इस शिक्षा को दूर स्थान पर रहने वाले या व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।

निरौपचारिक शिक्षा के दोष (Demerits of Nonformal)

– छात्रों के मन में उत्पन्न शंका का तुरन्त समाधान संभव नहीं है।
– अध्यापक–छात्रों के मध्य परस्पर अन्तःक्रिया का अभाव रहता है।

शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक अभिकरणों में अन्तर

औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ विद्यालय से होता है तथा अन्त भी विद्यालय में ही हो जाता है। अनौपचारिक शिक्षा बालक के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक चलती है। निरौपचारिक शिक्षा का स्वरूप उसके केन्द्र बिन्दु 'जन–समुदाय" पर आधारित है।

खुला विद्यालय (Open School)

माध्यमिक स्तर पर केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, दिल्ली द्वारा खुला विद्यालय की स्थापना की गई। इस योजना के अन्तर्गत 14 वर्ष की आयु से ऊपर सब वयस्कों के लिए माध्यमिक स्तर तथा उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करना तथा प्रमाण पत्र प्राप्त करने की व्यवस्था है।

खुला विश्वविद्यालय (Open University)

खुला विश्वविद्यालय से तात्पर्य एक ऐसे विश्वविद्यालय से हैं, जो उन सभी के लिए है जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते है। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार की उपाधि या प्रमाण पत्र की जरूरत नहीं, इसमें आयु की कोई सीमा नहीं एवं समय व स्थान की भी सीमा निर्धारित नहीं है।

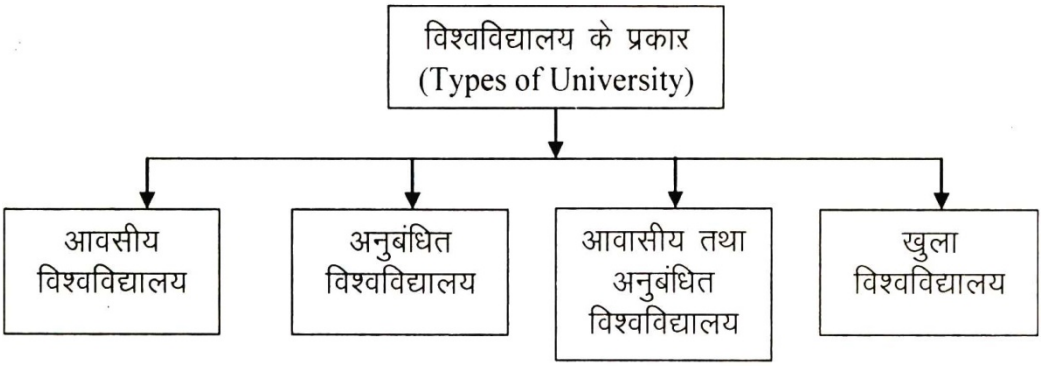

इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय

सितम्बर, 1985 में इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय की स्थापना दिल्ली में की गई। इस विश्वविद्यालय का प्रमुख प्रयोजन दूरगामी शिक्षा एवं प्रशिक्षण को विकसित करना है।

राज्य स्तरीय खुला विश्वविद्यालय (State Open University)

वर्द्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

इस विश्वविद्यालय की स्थापना राज्य विधान सभा में पारित अधिनियम के अन्तर्गत की गई। पारम्परिक शिक्षा प्रणाली की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए दूरस्थ शिक्षा पर आधारित इस नए विश्वविद्यालय को स्थापना से उच्च शिक्षा से वंचित समाज के कमजोर वर्ग, महिलाओं एवं रोजगार प्राप्त व्यक्ति जिम्मेदारियों को पूरा करने के साथ–साथ इस विश्वविद्यालय के द्वारा अपनी शैक्षणिक योग्यताओं में वृद्धि का लाभ प्राप्त कर सकते हैं|

3.12 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1. शिक्षा के अभिकरण से आपका क्या अभिप्राय हैं? शिक्षा के अभिकरणों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

What do you mean by Agencies of Education? Present the classification of agencies of Education.

2. "विद्यालय शिक्षा का औपचारिक अभिकरण है।" इस कथन की पुष्टि हेतु तर्क प्रस्तुत कीजिए।"

   School is formal agency of Education."Gove Logic to Explain.

3. शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए। अनौपचारिक अभिकरणों के गुण–दोषों को लिखिए।

   Explain the Meaning of Non–formal agency of Education.Write Merits and Demerits of Non–formal Agencies.

4. निरौपचारिक अभिकरण का अर्थ बताइए। शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक अभिकरणों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

   Write the meaning of informal agency.Differentiate among formal,Non formal and informal Agencies of Education.

5. खुला विद्यालय एवं खुला विश्वविद्यालय के सम्प्रत्ययों को स्पष्ट कीजिए।

   Explain the concept of Open School and Open University.

6. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय खुला विश्वविद्यालयों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

   Discuss in detail National and state Level Open Universities.

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (bibliography)

1. Sharma,R.A.,(1994),Distance Education:Theory, Practice and Research, Loyal Book Depot, Meerut.
2. Reddy,G.Ram(1984),'Open Education system in India'.Its Place and potential Hyderabad : Andhra Pradesh Open University.
3. Parmaji, S.C.(Ed.) (1984), Distance Education, New Delhi, Sterling publishers.
4. Lewis, B.N. (1974) : Educational Technology at the Open University. An Approach to the problem of Quality in British Journal of E.T.
5. Keegan, Dermond (1986) : The Foundation of distance Education, London, Croom Helm.
6. Foks,J. (1987) : Towards Open Learning, in P.Smith and M.Kelly (Eds.) Distance Education and the mainstream, London, Croom Helm.
7. Cunninghan(1987) : Openness and learning to Learn. Beyond distance teaching to wards open learning. Open University Press.
8. अग्रवाल एस. के. : शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त
9. बंसल आर. ए. शर्मा रामनाथ : शिक्षा के सिद्धान्त
10. बटलर : फोर फिलोसॉफीज

11. भाटिया : फिलोसॉफी ऑफ एजूकेशन
12. चौबे अखिलेश एवं चौबे सरयू प्रसाद : शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार
13. ओड एल.के. : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
14. पारीख मथुरेश्वर शर्मा रजनी : उदयीमान भारतीय समाज तथा शिक्षा
15. सक्सैना एन. आर. स्वरूप : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
16. डा. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन

3.14 रिपोर्ट सूची (Report List)

1. Report of secondary Education commission 1952.
2. Report of Education Commission 1966.
3. National policy of Education 1986
4. Programme of action:National policy of Education 1995.
5. International commission on Education on development of Education,Learning to be, UNESSCO1972.
6. International commission on Education for the twenty first century:Learning the treasure within.UNESSCO Report of Delars,1996.

इकाई–4
शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक
Factors affecting Education

इकाई की रूपरेखा (Outline of the unit)

4.1 विषय प्रवेष (Introduction)

4.2 राजनैतिक कारक (Political Factors)

4.3 सामाजिक कारक (Social Factor)

4.4 आर्थिक कारक (Economic Factor)

4.5 शैक्षिक कारक (Educational Factor)

4.5.1 अध्यापकों का अभाव (Lack of Teachers)

4.5.2 अधिगम (सहायक) सामग्री का अभाव (Lack of Indian Teaching Method)

4.5.3 भारतीय शिक्षण विधाओं का अभाव (Lack of Indian Teaching Method)

4.5.4 दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective Examination System)

4.6 भौगोलिक कारक (Geography Factor)

4.7 सारांश (Summary)

4.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

4.9 संदर्भ (References)

उद्देश्य (Objectives)

1. विद्यार्थी राजनैतिक कारक से परिचित हो सकेंगे।
2. सामाजिक कारक के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. आर्थिक कारक शिक्षा को प्रभावित करता है, समझ सकेंगे।
4. शैक्षिक कारक के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. भौगोलिक कारक से परिचित हो सकेंगे।

4.1 विषय प्रवेश (Introduction)

राष्ट्रीय विकास की गति तेज करने के लिए शिक्षा में सुधार करने तथा उसका निरन्तर विकास करने के लिए महत्वपूर्ण कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा। राष्ट्र की आशाओं, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में राष्ट्र का भविष्य निहित है। आधुनिक युग में प्रत्येक राष्ट्र राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में प्रगति कर अपने देशवासियों के जीवन स्तर को उन्नत करना चाहता है।

विश्व की प्रत्येक वस्तु, विचार तथा कार्य से लाभदायक परिणाम तभी मिल सकते है जबकि उनके पूर्व निश्चित उद्देश्य हों। शिक्षा सामाजिक विकास की आधारशिला है। समाज में जैसी शिक्षा होगी वैसा ही समाज होगा। अत: शिक्षा का स्वरूप एवं उद्देश्य देश काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप हो। समय–समय पर शिक्षा के स्वरूप एवं उद्देश्यों में परिवर्तन होते रहते हैं। वैदिक युग में शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वागीण विकास करना था। प्राचीन रोम में शिक्षा का उद्देश्य ' राज्य का कल्याण करना था।' यूनान में शिक्षा का उद्देश्य नैतिक एवं सामाजिक विकास करना था। वर्तमान युग में सामाजिक संरचना में परिवर्तन आने के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता रहता है। सामाजिक प्रगति हेतु शिक्षा प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है। अत: कह सकते हैं कि शिक्षा की समय–समय पर अनेक कारकों ने प्रभावित किए हैं। कुछ प्रमुख कारकों का विस्तार से वर्णन करेंगे–

4.2 राजनैतिक कारक (Political Factors)

कहावत है ' 'यथा राजा तथा प्रजा' ' अर्थात् जैसा शासक होगा वैसी ही प्रजा भी होगी। इतिहास इस कथन का साक्षी है।

कम्युनिस्ट, फासिस्ट, लोकतान्त्रिक, तानाशाही जिस प्रकार की सरकार होगी, वह सरकार अपने ध्येय प्राप्ति हेतु शिक्षा के उद्देश्यों का तद्नुसार ही निर्माण करती है। ब्राउन के निम्नलिखित कथन से ही यह तथ्य स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। "किसी भी देश की ओर सभी युगों की शिक्षा शासक वर्ग की विशेषताओं को व्यक्त करती है।" "Education in any country and at all period reflects values of rulling class."

–J.D.Brown

देश में लोकतन्त्र को सुदृढ करने हेतु भावी नागरिकों को अपने कर्तव्य एवं अधिकार के प्रति जाग्रत कर उनके सद्भावना, प्रेम, सहयोग, आदर, सेवाभाव, त्याग, निष्ठा आदि की भावनाओं का विकास करते है ताकि नागरिक लोकतान्त्रिक जीवन शैली अपना कर देश के प्रशासन में अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सके।

वर्तमान में भारत एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। फलत: शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण व्यक्ति और समाज का हित करने की दृष्टि से किया गया है। ये निम्नलिखित हैं –

(अ) व्यक्ति के दृष्टि में शिक्षा के उद्देश्य अर्थात् वैयक्तिक उद्देश्य।

(ब) समाज की दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्य अर्थात् सामाजिक उद्देश्य।

तानाशाही शासन व्यवस्था में वैयक्तिक पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। वही राजनैतिक पक्ष प्रमुख होता है। वर्तमान युग में कम्युनिस्ट देश इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। अमेरिकी शिक्षा प्रणाली में वैयक्तिक उद्देश्यों पर बल दिया गया है। राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्यों पर केवल उतना ही ध्यान दिया गया है जितना सामाजिक एकता के लिए आवश्यक है। अत: स्पष्ट है कि समाज में यथार्थवादी आधार में शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में भारत को स्वतन्त्रता तो अवश्य मिली किन्तु ब्रिटिश सरकार चलते–चलते देश का दो टुकड़ों में विभाजन कर गई और साम्प्रदायिकता की आग भड़का गई। फलत: आजादी के पश्चात् सरकार देश का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, कश्मीर समस्या, आन्तरिक समस्याएँ, जातीयता, प्रान्तीयता, चीन का

आकमण, पाकिस्तान का आक्रमण आदि में व्यस्त रहने के कारण शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दे पाई । परिणामत: शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय एवं आशातीत प्रगति नहीं हो सकी।

भारत में शिक्षा का दायित्व केन्द्र और राज्यों के प्रशासन पर है। ये दोनों प्रशासन अपनी सुविधानुसार व्यवस्था का कार्य करते हैं। इन दोनों प्रशासनों में सह–सम्बन्ध का भी आभाव है। स्थानीय प्रशासन को चलाने वाले लोग राजनैतिक ध्येय को ध्यान में रखते हुए सारे कार्य करते हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि सरकार को चाहिए कि शिक्षा की स्पष्ट नीति का निर्माण करें और अपनी नीति को निश्चित ढंग से कराने का संकल्प लें। इसके लिए प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करायी जानी चाहिए।

भारत के संविधान निर्माताओं ने खैर समिति के दृष्टिकोण को अपनाते हुए संविधान के अनुच्छेद 45 में सार्वभौम शिक्षा के लिए स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि –

यह राज्य उस संविधान के क्रियान्वित किए जाने के समय से 10 वर्ष के अन्तर्गत जब तक सभी बच्चे 14 वर्ष की आयु को पूरा नहीं कर लेते, निःशुल्क एवं अनिवार्य होने देने का प्रयास करेगा।

हमारे देश की वर्तमान राजनीति का कोई मानदण्ड नहीं है और न कोई चरित्र, स्वार्थ पूर्ति ही सर्वोच्च मापदण्ड है और वही सबसे बड़ा नेता है जो सर्वाधिक चाल चल कर अपना उल्लू सीधा कर सके। परिणामत: शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति व्याप्त है जो निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जायेगी –

(1). शिक्षक स्थानान्तरण – वर्तमान सरकार नेताओं का एक मात्र कार्य शिक्षक कार्य का स्थानान्तरण है। राजस्थान इस कार्य में अग्रणी है। शिक्षकों को फुटबाल बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना उनका मुख्य कार्य है।

(2). विद्यालय स्थापना – किसी गाँव, ढाणी, मुहल्ला या गली में विद्यालय खुलना चाहिए अथवा नहीं, वह भी स्थानीय नेता पर निर्भर करता है। विरोधी पक्ष के बालकों को शिक्षा से वंचित रखना तथा उनके गाँव अथवा गली में विद्यालय खुलवाना उसके शतरंज के पैंतरे की मुख्य चाल होती है। सरकार भी इस कार्य में मददगार होती है।

(3). विद्यालय व्यवस्था में हस्तक्षेप – स्थानीय भ्रष्ट नेता विद्यालय व्यवस्था में हस्तक्षेप करते रहते हैं। परिणामत: प्रधानाध्यापक शैक्षिक प्रगति हेतु स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाता। यदि कोई उत्साही प्रधानाध्यापक स्थानीय नेताओं को मुह नहीं लगाता तो उसके सिरदर्द बन जाता है और उसके विरूद्ध नाना प्रकार की शिकायतें उच्चाधिकारियों को करते हैं। उच्चाधिकारी भी उनके प्रभाव एवं अपनी कुर्सी बाधाओं के कारण कानों में तेल डालकर स्थानीय नेताओं को प्रसन्न करने के लिए उनकी इच्छानुसार कार्य कर देते हैं।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. "शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति व्याप्त हैं"इस कथन को स्पष्ट कीजिए|

4.3 सामाजिक कारक (Social Factor)

किसी भी देश की सामाजिक परिस्थितियाँ वॅहा की शिक्षा के उद्देश्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ–प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य ' 'ईश्वर प्राप्ति' ' था। भारत धर्म परायण देश था। फलत: ' 'नर से नारायण' बनने पर बल दिया जाता था। अपरा विद्या से परा विद्या को श्रेष्ठ बतलाया गया था। युग बदला, समाज में परिवर्तन आया। स्मृतिकाल में "वर्ण व्यवस्था" गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित न रहकर जन्म पर आधारित हो गई थी। फलत: शिक्षा का उद्देश्य ' 'बालक को उनके वर्णानुसार कर्म करने के लिए तैयार करना था। वर्तमान भारतीय समाज जाति, विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। परिणामत: शिक्षा का उद्देश्य "सामाजिक समानता" है जिसमें जाति, रंग, वर्ण, समुदाय के स्थान पर व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव पर अधिक बल दिया गया और इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति उच्च से उच्च पद पर आसीन हो सकता है। भारतीय संविधानानुसार समस्त भारतीय समान है। धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण के आधार पर न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। "अस्पृश्यता" अपराध है । अत: स्मिथ के अनुसार "विद्यालय को व्यापक कार्य संभालना चाहिए एवं उसे निश्चित रूप से ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कि सामाजिक कृतज्ञता एवं समुदाय भक्ति को उत्पन्न तथा पोषित किए जाने का कार्य हो सके।"

"School should assume wider functions and definitely set itself to the task of creating and fostering the sense of obligation loyalty to the community."

–W.P.Lister Smith

भारतीय संविधान की धार 29 व 30 में अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने व संचालित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान की धारा 350 (क) में कहा गया है – प्रत्येक राज्य और राज्य के अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारी का यह प्रयास होगा कि भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर शिक्षा उनकी मातृभाषा में देने की पर्याप्त सुविधा प्रदान करें।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य से तात्पर्य सामाजिक निपुणता से है । शिक्षा व्यक्ति को समाजोपयोगी बनाने में सहायक होती है और यह तभी सम्भव है जब शिक्षा के उद्देश्य समाज की परिस्थितियों के अनुकूल हों। रॉस के अनुसार– "सामाजिक वातावरण से भिन्न वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं है और व्यक्तित्व अर्थहीन शब्द है।"

"Individuality isof on value and personality is a meaningless term a part from the social environment."

–J.Ross

समाज में रहकर व्यक्ति एक–दूसरे के सम्पर्क में आता है। उसके साथ विचारों का आदान–प्रदान करता है। यह तभी सम्भव है जब कि शिक्षा के उद्देश्य सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल हों। ठीक इसके विपरीत यदि वे व्यक्तित्व के अनुसार भिन्न–भिन्न हुए तो व्यक्ति में टकराहट होगी और ऐसा समाज कभी प्रगति पथ पर अग्रसित नहीं हो सकता।

अधिकांश बालकों के अभिभावक स्वयं अशिक्षित है। फलत: वे शिक्षा के महत्व से अपरिचित हैं। वे अपने बालकों को शिक्षा दिलाने में रूचि नहीं रखते और साथ में भाग्यवादिता का सहारा लेते हैं। अशिक्षित अभिभावक बालकों की शिक्षा के लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं। और वे सम्पन्न होते हुए भी बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते।

छोटे–छोटे बालकों को विवाह बन्धन में बॉध दिया जाता है। राजस्थान में तो बाल विवाह का अत्यधिक प्रचलन है। परिणामत: बाल विवाह के कारण उन बालकों की शिक्षा का कोई प्रश्न नहीं उठता। जाति प्रथा अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार ब्राहमण वर्ग का है। शुद्र अथवा वर्तमान हरिजनों को शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। दूर–दराज के गाँवों में यह विचार क्रियाशील है।

भारत देश पुरूष प्रधान देश है। यहाँ पुत्र को अत्यधिक महत्व दिया जाता है तथा पुत्री को पराया धन समझ कर उसका तिरस्कार किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह भेद स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। फलत: बालिकाओं को पढ़ाने को हेय दृष्टि से देखते हैं। विद्यालय भवनों की दूरी, शिक्षकों का अभाव, विद्यालय में सुविधाओं का न होना, बालिका विद्यालयों में पुरूषों की नियुक्ति, निर्धनता रूढ़िवादिता आदि अनेक ऐसे सामाजिक कारण हैं जिनकी वजह से प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण नहीं हो पा रहा है।

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. सामाजिक कारक किस प्रकार शिक्षा को प्रभावित करता हैं?

4.4 आर्थिक कारक (Economic Factor)

देश के अधिकांश लोग निर्धनता की सीमा रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। जबकि कुछ लोग वैभव, समृद्धि व भोग विलास का जीवनयापन कर रहे हैं। ये विलासिता लोगों की वैमनस्य, कटुता एवं असन्तोष उत्पन्न कर देश के लिए घातक स्थिति बना रही है। एक ओर शोषण एवं दमन को प्रोत्साहित करती है तो दूसरी ओर वर्ग संघर्ष, विद्रोह, अपराध आदि असामाजिक तत्वों से देश का विघटन हो रहा है। भोजन जीवन का आधार है। भोजन प्राप्ति हेतु कोई न कोई कार्य करना आवश्यक है। विश्व में मानव तथा समस्त प्राणी जीविका के कारण क्रियाशील हैं। रोटी, कपड़ा और मकान मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। अत: आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्य निर्माण में अहम् भूमिका रखती हैं। प्राचीन काल में भारत धनधान्य में सम्पन्न था। माता वसुंधरा की कोख से प्रत्येक की आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से हो जाती थी। फलत: भारतीय ऋषि, महर्षि, सन्त, साध्वी, मनीषी एवं विचारक “दाल रोटी” की चिन्ता से मुक्त प्रकृति की सुरम्य गोद में आध्यात्मिक चिन्तन करते थे और जंगली कन्दमूल, पत्र पुष्प, फल आदि खाकर उदर पूर्ति किया करते थे। उस काल में शिक्षा का उद्देश्य "ईश्वर प्राप्ति" “परोपकाराय पुण्याय” था। समय बदला, भारत दासता की बेड़ियों में जकड़ा गया। विदेशी आक्रमणकारियो ने भारत को जी भरकर कूटीर उद्योग–धन्धें नष्ट कर दिये। विश्व में औद्योगिक विकास प्रारम्भ हुआ स्वतन्त्र भारत की सरकार विश्व के विकासशील देशों की श्रेणी में भारत का स्थान बनाने हेतु प्रयत्नशील है। परिणामत: शिक्षा का उद्देश्य वर्तमान युग में “वैज्ञानिक एवं

तकनीकी" उन्नति है ताकि इस आर्थिक दौड़ में हम भी भागीदारी कर सके। हार्टशोर्न का कथन है "जीविकोपार्जन की शिक्षा सबसे अधिक प्रभावशाली शिक्षा है। इसके बिना वे लोग आजीवन कष्ट उठाते हैं जो केवल विद्यालय ही जाते हैं।"

"Vocational Education is an Eduction of most effective and for lack of which those who merely go to school suffer all their lives."

–Hartshorne

अत: शिक्षा के उद्देश्य निर्माण में आर्थिक परिस्थितियाँ विशेष योग देती हैं। भारत एक विकासोमुख राष्ट्र है। आर्थिक उन्नति एवं प्रत्येक नागरिक को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु हमारी सरकार प्रयत्नशील है और इसकी पूर्ति हेतु व्यावसायिक विद्यालयों का समस्त देश में जाल बिछा दिया गया है ताकि प्रत्येक भारतीय नागरिक स्वतन्त्र व्यवसाय कर सके । कहावत है "भूखे भजन न होहि गोपाला डालों अपने कण्ठी माला"। अत: आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्य निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। कोई भी समाज, देश, राष्ट्र तब तक आत्मनिर्भर नहीं हो सकता जब तक कि उसके प्रत्येक नागरिक को जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध नहीं हो। अत: शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

वर्तमान युग अर्थतन्त्र का युग है। जिस देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी, वह ही उन्नति पथ पर अग्रसर हो सकेगा। आज विश्व में आर्थिक विकास एवं भौतिक समृद्धि के पीछे पागलपन सा छाया हुआ है। भारत की अधिकांश जनता गरीबी रेखा से नीचे स्तर की है। निर्धन अभिभावक माता–पिता अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेज पाते। आज शिक्षा पर होने वाला व्यय यथा– पौशाक, पाठ्य–पुस्तकें एवं अधिगम (सहायक) सामग्री का भार वहन करना उसकी सीमा से बाहर की बात होती है। इसके स्थान पर वे निर्धन माता–पिता बालकों को अर्थोपार्जन का एक माध्यम बनाते हैं। गाँवों में पशु चराना, खेतों में कार्य करना, माता–पिता के खेतीहर कार्य में लगे होने के समय छोटे भाई–बहनों की देखभाल उनका मुख्य कार्य होता है। शहरी क्षेत्र में निर्धनता की समस्या और भी अधिक उजागर होती है। गन्दी बस्तियों के बालक कचरे के ढेर अथवा कचरा पात्रों से कागज, पॉलीथीन के टूकड़े, फटे–चिथड़े एकत्रित करते, चाय की दुकानों पर कार्य करते अथवा भिक्षावृति करते हुए साधारणतया दिखलाई पड़ते हैं। निर्धनता के इस ताण्डव नृत्य के कारण अभिभावक उन मासूम बच्चों की अर्थोपार्जन सम्बन्धी कार्य में लगाना अच्छा समझते है न कि विद्यालय भेजना।

भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को राज्य का विषय बना रखा है। फलत: राज्यों में होने वाला शिक्षा व्यय का केन्द्रीय सरकार कुछ हिस्सा ही राज्य सरकारी कुाए देती है। वास्तव में देखा जाए तो शिक्षा का विषय केन्द्रीय सरकार का होना चाहिए। शिक्षा को केन्द्रीय सरकार सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करे। किन्तु अब समस्या के कारण केन्द्रीय सरकार शिक्षा पर होने वाले व्यय का कुछ अंश देकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में वर्तमान विद्यालय भवनों में 33 प्रतिशत भवन ही ऐसे हैं जिन्हें किसी प्रकार उपयुक्त नहीं कहा जा सकता अर्थात् 67 प्रतिशत भवन अनुपयुक्त है। ये अनुपयुक्त भवन अंधकार से पूर्ण, घुटन से युक्त तथा वर्ष भर सीलनयुक्त रहते हैं। इसमें दुर्गन्ध युक्त वातावरण रहता है, न ही प्रकाश की व्यवस्था है और न ही स्वच्छ तथा ताजा वायु की।

बालकों को भेड–बकरियों के समान कक्षा–कक्ष रूपी बाड़े में बैठा दिया जाता है जिसमें न तो आसन व्यवस्था ही है और न ही शैक्षिक सुविधाएँ। खेल सम्बन्धी सुविधाएँ तो दिवास्वप्न मात्र हैं।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण उपयुक्त भवनों का निर्माण नहीं करवा पाते। फलत: मन्दिरों, मस्जिदों, धर्मशालाओं, अनाथालयों, टूटे–फूटे, पुराने भवनों, वृक्षों के नीचे विद्यालय चलते हैं जिनमें आए दिन किसी न किसी कारण अवकाश करना पड़ता है और वर्षा ऋतु में भवनों के दुर्घटनाग्रस्त होने की समस्याएँ बराबर बनी रहती हैं।

भारत में अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति अति सोचनीय है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण विद्यालय छात्रों को शैक्षिक सुविधाएँ नहीं जुटा पाते शैक्षिक समस्याऐ निम्नलिखित हैं–

(अ) विद्यालय में पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की जाती। प्राथमिक शिक्षा में अध्यापक छात्र अनुपात 1:40 का है जो कि शैक्षिक दृष्टि से अनुपयुक्त है एक शिक्षक 40 बालकों को शिक्षण कार्य नहीं करा सकता।

(ब) प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षिक सहायक अधिगम सामग्री का नितान्त अभाव होता है। पाठ्य–पुस्तकें ही एक मात्र शिक्षा का आधार होती है।

(स) अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की व्यवस्था नहीं है फलत: भवन की सफाई से लेकर समस्त कार्य छोटे–छोटे बालकों को ही करने पड़ते हैं। अत: उनका ध्यान शिक्षा से हट जाता है।

(द) प्राथमिक विद्यालय में पुस्तकालय एवं वाचनालय तो हैं ही नहीं। परिणामत: विद्यार्थियों के साथ–साथ शिक्षक की भी कूपमण्डूक जैसी स्थिति हो जाती है।

अधिकांश प्राथमिक विद्यालय में स्थानीय व्यक्तियों को शिक्षक पद पर नियुक्ति की जाती है इन नियुक्तियों में पूर्णत: राजनीति काम करती है। परिणामत: शिक्षक विद्यालय की ओर ध्यान नहीं देता। बस अपना निजी कार्य खेती–बाड़ी, दुकानदारियॉ अन्य कार्य करता है। न तो समय पर विद्यालय आता है न पूर्ण समय विद्यालय में रूकता है। यहाँ तक कि छात्रों से निजी घरेलू कार्य करवाता है। फलत: अभिभावक बच्चों को स्कूल से निकाल लेते हैं।

सरकार की वर्तमान नीति के अनुसार प्रत्येक 500 जनसंख्या की आबादी के पीछे एक प्राथमिक विद्यालय होना चाहिए। किन्तु अभी देश में लगभग 3.50 लाख ग्रामीण ऐसे हैं जिनकी आबादी 500 से कम है। परिणामत: इनके बच्चों को अन्य स्थानों पर पढ़ने जाना पड़ता है । वन, नाले, नदी, दूरी तथा छोटे–छोटे बालक इन कारणों में से अन्य गाँव में जाकर बालक के लिए पढ़ना सम्भव नहीं है। परिणामत: अभिभावक छोटे बालकों को विशेषत: बालिकाओं को इतनी दूर भेजना उचित नहीं समझते और ये बालक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

4.5 शैक्षिक कारक (Educational Factor)

शिक्षा जगत में प्रचलित पाठ्यकम अति दोषपूर्ण है इस पाठ्यकम में स्थानीय आवश्यकताओं पर कोई बल नहीं दिया गया है। राजस्थान में राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (SIERT) इस कार्य को करती है। पाठ्यकम में पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया गया है। साथ ही सम्पूर्ण राजस्थान में एकसा ही पाठ्यक्रम

निर्धारित किया गया है। क्षेत्रीय भिन्नता, स्थानीय परिस्थितियाँ आदि का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। वर्तमान पाठ्यक्रम न तो जीवन से सम्बन्धित है और न व्यावहारिक ही है। पाठ्यक्रम में न तो सरलता है न आकर्षण ही। रचनात्मक क्रियाओं को इनमें कोई स्थान नहीं दिया गया है। यदि यह कहा जाए कि पाठ्यक्रम केवल साक्षर बनाने का कार्य करता है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

(i) अध्यापको का अभाव (Lack of Teachers)

प्राथमिक पाठशालाओं में शिक्षकों की नितांत कमी रहती है। एक अध्यापकीय पाठशालाएँ तो और भी अधिक समस्याग्रस्त होती हैं। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के परिप्रेक्ष्य में "ब्लेक बोर्ड ऑपरेशन" के तहत प्रत्येक विद्यालय में कम से कम दो शिक्षक कार्यरत हैं। अध्यापक छात्र का अनुपात 140 है। परिणामत: शिक्षक समस्त छात्रों को मात्र घेर कर बैठता है और उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ देता है।

योग्य, अनुभवी एवं शिक्षा के क्षेत्र में रूचि रखने वाले व्यक्ति शिक्षा के क्षेत्र में कम ही आ पाते है जो आ भी जाते हैं देर सवेर अन्य सेवाओं के क्षेत्र में चले जाते हैं। कारण कि शिक्षकों की सेवा स्थिति, वेतनमान अन्य सेवाओं से कम है अब तो इस क्षेत्र में वही व्यक्ति आते हैं जिन्हें अन्य क्षेत्रों में स्थान नहीं मिल पाता। अत: योग्य शिक्षकों को आकर्षित करने के लिए उनकी सेवा शर्तो के सुधार, आकर्षक वेतनमान, पहाड़ी रेगिस्तानी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में पृथक से भत्ता देना चाहिए ताकि योग्य, अनुभवी एवं अच्छे व्यक्ति शिक्षा जगत की ओर आकर्षित हो सकें।

(ii) अधिगम(सहायक) सामग्री का अभाव (Lack of Teaching Aids)

प्राथमिक विद्यालयों में सहायक अधिगम सामग्री नाम मात्र की उपलब्ध होती है और वह भी बाबा आदम के जमाने की। परिणामत: शिक्षक विद्यार्थी को मौखिक ज्ञान देता है। व्यावहारिकता के अभाव में छात्रों की रूचि, जिज्ञासा शान्त नहीं हो पाती और वे विद्यालय से जी चुराने लगते हैं। आधुनिक तकनीकी आधारित उपकरण यन्त्र व साधनों को प्रयुक्त किया जाए।

(iii) भारतीय शिक्षण विधाओं का अभाव (Lack of Indian Teaching Methods)

शिक्षा के क्षेत्र में भी जो शिक्षण पद्धतियाँ प्रचलित हैं वे ज्यादातर पाश्चात्य हैं। भारतीय परिस्थितियों में उनकी सफलता संदिग्ध है। शिक्षा–शास्त्रियों की भारतीय परिवेशानुसार शिक्षण पद्धतियों की खोज करनी चाहिए ताकि वे भारतीय विद्यालयों में सफल हो सकें। शैक्षिक नवाचारों पर आधारित नवीनतम प्रविधि अपनायी जाए।

(iv) दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली (Defective Education System)

परीक्षा प्रणाली भी दोषपूर्ण है। केवल सैद्धान्तिक पक्ष पर जोर दिया जाता है। व्यावहारिक पक्ष शून्य रहता है। मूल्यांकन की अविश्वसनीयता बनी रहती है। एक ही प्रश्न के मूल्यांकन में विविधता आ जाती है।

प्राथमिक विद्यालयों में निरीक्षण एवं मार्गदर्शन हेतु सरकार ने अधिकारियों की लम्बी फौज खड़ी कर रखी है। फिर भी अनेक विद्यालय ऐसे दुर्लभ स्थान पर हैं कि यही पर पॉच–पाँच वर्ष तक कोई अधिकारी नहीं जा पाता। मार्गदर्शन एवं निरीक्षण नाम मात्र का होता है।

उपर्युक्त शैक्षिक कारकों के अतिरिक्त अन्य अनेक कारण है जैसे बालक की रूचि, अभिरूचि का ध्यान नहीं रखना, शिक्षा का जीवन से सम्बन्धित न होना, व्यक्तिगत भिन्नता को नजर अन्दाज कर देना आदि।

4.6 भौगोलिक कारक (Geographical Factors)

भारत एक विशाल देश है जिसमें दुर्गम रेगिस्तान, अगम्य पवर्तमालाऐ तथा भीषण जंगल हैं। इस भौगोलिक विविधता के परिणामस्वरूप ही शिक्षा को अनिवार्य नहीं बनाया जा सका और इसके प्रसार में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर्वतीय क्षेत्र में आवागमन के कारण बालक एक स्थान से दूसरे स्थान पर शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा सकता है। विशाल मरूस्थल में गाँव और आबादी छितरी हुई है। प्रत्येक ढाणी में विद्यालय नहीं है। अत: मरूस्थलीय प्रदेश में विशेषत: ग्रीष्मकाल में जब अंधड़ चलते हैं, बालकों का शिक्षा ग्रहण करने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सम्भव नहीं है। असम, नगालेण्ड आदि ऐसे प्रदेश हैं जहाँ जंगलों, नालों आदि की बहुतायत है और जंगली पशु विचरण करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में बच्चें का विद्यालय जाना टेढ़ी खीर है।

4.7 सारांश (summary)

राजनैतिक कारक – हमारे देश की वर्तमान राजनीति का कोई मानदण्ड नहीं है और न कोई चरित्र, स्वार्थ पूर्ति ही सर्वोच्च मापदण्ड है। वहीं सबसे बड़ा नेता है जो सर्वाधिक चाल चल कर अपना उल्लू सीधा कर सकें। परिणामत: शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त है जो निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जायेगी –

- शिक्षक स्तानान्तरण
- विद्यालय स्थापना
- विद्यालय व्यवस्था

सामाजिक कारक – समाज में रहकर व्यक्ति एक–दूसरे के सम्पर्क में आता है। उसके साथ विचारों का आदान–प्रदान करता है। यह तभी सम्भव है जब कि शिक्षा के उद्देश्य सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल हों। ठीक इसके विपरीत यदि वे व्यक्तित्व के अनुसार भिन्न–भिन्न हुए तो व्यक्ति में टकराहट होगी और ऐसा समाज कभी प्रगति पथ पर अग्रसित नहीं हो सकता।

अधिकांश बालकों के अभिभावक स्वयं अशिक्षित हैं। फलत: वे शिक्षा के महत्व से अपरिचित हैं। वे अपने बालकों को शिक्षा दिलाने में रूचि नहीं रखते और साथ में भाग्यवादिता का सहारा लेते हैं। अशिक्षित अभिभावक बालकों की शिक्षा के लिए अभिशाप सिद्ध होते है और वे सम्पन्न होते हुए भी बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते।

आर्थिक कारक –शिक्षा के उद्देश्य निर्माण में आर्थिक परिस्थितियाँ विशेष योग देती हैं। भारत एक विकासोन्मुख राष्ट्र है। आर्थिक उन्नति एवं प्रत्येक नागरिक को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु हमारी सरकार प्रयत्नशील है और इसकी पूर्ति हेतु त्यावसायिक विद्यालयों का समस्त देश में जाल बिछा दिया गया है ताकि प्रत्येक भारतीय नागरिक स्वतन्त्र व्यवसाय कर सके। कहावत है "भूखे भजन न होहि गोपाला डालों अपने कण्ठी माला"। अत: आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा के उद्देश्य निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कोई भी समाज, देश, राष्ट्र तब तक आत्मनिर्भर नहीं हो सकता जब तक कि उसके प्रत्येक नागरिक को जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध नहीं हो। अत: शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

शैक्षिक कारक –वर्तमान पाठ्यकम न तो जीवन से सम्बन्धित है और न व्यावहारिक ही है। पाठ्यक्रम में न तो सरलता है न आकर्षण ही। रचनात्मक कियाओं को इनमें कोई स्थान नहीं दिया गया है। यदि यह कहा जाए कि पाठ्यक्रम केवल साक्षर बनाने का कार्य करता है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अत: अध्यापकों का अभाव अधिगम सहायक सामग्री का अभाव, भारतीय शिक्षक विधियों का अभाव तथा दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली पायी गई।

4.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1. शिक्षा को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन–कौन से हैं? शैक्षिक कारक की विवेचना कीजिए।

   What are the main factors affecting Education?Disuss the Educational Factor.
2. राजनैतिक व सामाजिक कारक शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? विस्तार से बताइए।

   How Political and Social Factor is affecting Education?Write in detail.

4.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. अग्रवाल एस. के. : शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त
2. बंसल आर. ए. तथा शर्मा रामनाथ : शिक्षा के सिद्धान्त
3. बटलर : फोर फिलोसॉफीज
4. भाटिया : फिलोसॉफी ऑफ एजूकेशन
5. चौबे अखिलेश एवं चौबे सरयू प्रसाद : शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार
6. ओड एलके. : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
7. पारीख मथुरेश्वर शर्मा रजनी : उदयीमान भारतीय समाज तथा शिक्षा
8. सक्सैना एन. आर. स्वरूप : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त
9. डा. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन

इकाई 5

समाज की संरचना शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

Structure of Society Education and Social Change

इकाई की रूपरेखा (Out Line of the Unit)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

5.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Society)

5.1.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषायें(Meaning and Definition of Society)

5.1.2 समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Society)

5.1.3 समाज की संरचना (Structure of Society)

5.1.3.1 अर्थ एवं अवयव (Meaning and Organs)

5.1.3.2 सामाजिक संरचना की विशेषताएँ (Characteristics of Social Structure)

5.2 जाति (Caste)

5.2.1 जाति की परिभाषा (Definition of Caste)

5.2.2 जाति की विशेषताएँ (Characteristics of Caste)

5.2.3 जाति व्यवस्था में परिवर्तन (Changes in Caste System)

5.3 वर्ग (Class)

5.3.1 वर्ग : अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)

5.3.2 वर्ग की विशेषताएँ (Characteristics of Class)

5.4 धर्म (Religion)

5.5 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन (Education and Social Change)

5.5.1 सामाजिक परिवर्तन : परिभाषा (Social Change : Definition)

5.5.2 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ (Characteristics of Social Change)

5.5.3 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन (Education and Social Change)

5.6 शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन (Social Change Through Education)

5.7 सारांश (Summary)

5.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

5.9 संदर्भ (Reference)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

1. प्रमुख उद्देश्य समाज को सामाजिक तरीके परिभाषित करना,
2. समाज की संरचना का क्या अर्थ है, जानना

3. संरचना के प्रमुख अंगों के बारे में जानना,
4. समाज की उपसंरचना या अंग को जानना और समझना,
5. सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करना, और
6. शिक्षा सामाजिक परिवर्तन किस प्रकार लाती है?

5.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Society)

''समाज' शब्द का अर्थ बड़ा विवादास्पद एवं उलझा हुआ है। दैनिक जीवन में हम समाज का प्रयोग व्यक्तियों के सामूहिक संगठन या समूह के लिए करते हैं और कहते हैं कि समाज समूहों से बना है। उदाहरण के लिए जैसे आर्य–समाज, मुस्लिम–समाज, हिन्दू–समाज, हरिजन–समाज आदि। ये समाज के सामान्य प्रयोग हैं जहाँ कुछ व्यक्तियों ने समाज का प्रयोग व्यक्तियो के समूहों के रूप में किया है कुछ ने संस्था के रूप में और कुछों ने समिति के रूप में। व्यक्तियों के प्रति भी सामान्य धारणा यह है कि जो मनुष्य समाज में मिलता–जुलता है तथा समाज की मान्यताओं, आकांक्षाओं एवं आर्दशों के अनुरूप आचरण करता है, वह '**सामाजिक व्यक्ति**' कहलाता है। इसके ठीक विपरीत जो व्यक्ति समाज में सद्व्यवहार एवं समाज कल्याण–सम्बन्धी कार्य नहीं करता या समाज में मिलता–जुलेता नहीं है, वह 'असामाजिक व्यक्ति' कहलाता है।

विभिन्न सामाजिक विज्ञान की परिप्रेक्ष्य की विभिन्नता के कारण 'समाज' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो में करते हैं। राजनीति विज्ञान समाज को राज्य सरकार, सत्ता, कानून इत्यादि के रूप में व्यक्तियों के समूह के रूप में परिभाषित करता है। **मानव–शास्त्र** समाज का अभिप्राय आदिम समुदायों के रूप में लगाता है एवं आर्थिक क्रियाओं में संलग्न व्यकियों के समूह को मानता है। समाजशास्त्रीय शब्दावली में 'समाज' शब्द का अभिप्राय अधिक विस्तृत एवं व्यापक है।

5.1.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषायें (Meaning and Definition of Society)

समाजशास्त्रीय साहित्य में 'समाज' शब्द का प्रयोग दो भिन्न–एक तो संकुचित अर्थ में एवं दूसरे विस्तृत अर्थ–में किया जाता है।

समाज का संकुचित अर्थ में प्रयोग

कुछ समाजशास्त्री ऐसे हैं जो समाज का प्रयोग संकुचित अर्थ में करते हैं। संकुचित अर्थ में समाज का आशय व्यक्तियों के एक समूह विशेष के सन्दर्भ में किया जाता है। इस प्रकार भारत, चीन, अमेरिका, ब्रिटेन, लंका आदि में रहने वाली जनसंख्या को उस देश का समाज कहा जा सकता हैं। ऐसे समाज निश्चित एवं मूर्ते होते हैं जिनको सीमित सामाजिक सम्पर्क वाला समूह भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि संकुचित अर्थ में 'समाज' शब्द का प्रयोग किसी विशिष्ट व्यक्तियों के समूह के रूप में किया जाता है। यह ऐसा समाज होता है जिसका संगठन कतिपय विशेष उद्देश्यों व प्रयोजनों से किया जाता है।

समाज संकुचित अर्थ में परिभाषित करने वालों में **मोरिस जिन्सबर्ग** एवं **फेयरचाइल्ड** के नाम लिए जा सकते हैं।

मोरिस जिन्सबर्ग ने समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो किन्हीं सम्बन्धों या व्यवहार के तरीकों द्वारा संगठित हैं और जो उन्हें उन अन्यों से पृथक् करते हैं जो इन सम्बन्धों से नहीं बंधे है या जो उनसे भिन्न व्यवहार करते हैं।

एचपी. फेयरचाइल्ड ने 'डिमानरी ऑफ सोश्योलॉजि में लिखा है कि "समाज मनुष्यों का एक समूह है जो अपने अनेक मुख्य हितों की पर्ति के लिए अनिवार्य रूप से स्वयं को बनाये रखने व स्वयं की निरन्तरता के लिए परस्पर सहयोग करते हैं।

इस प्रकार समाज की उपर्युक्त परिभाषाऐं संकुचित हैं, क्योंकि इनमें समाज का आशय एक–समाज से है, जबकि विस्तृत अर्थ में समाज का आशय किसी विशिष्ट समाज से नहीं होता, बलिक उसका आशय सामान्य समाज से होता है।

समाज का विस्तृत अर्थ में प्रयोग.

अनेक ऐसे समाजशास्त्री भी हैं जिन्होंने समाज का प्रयोग विस्तृत एवं व्यापक संदर्भ में किया है। विस्तृत अर्थ में समाज का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों की कुल व्यवस्था के संदर्भ में किया जाता है। जब किसी निश्चित देश और काल में सीमित समाज का नाम न लेकर हम 'मानव–समाज' या 'समाज' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो समाज से हमारा अभिप्राय उसके विस्तृत अर्थ से ही होता है।

मेकाइवर एवं पेज ने 'सोसायटी' नामक अपनी कृति में समाज का प्रयोग अत्यन्त विस्तृत अर्थो में किया है। आपके अनुसार समाज रीतियों (Usages) तथा कार्य–प्रणालियों (Procedures) की अधिकार (Authority) तथा पारस्परिक सहायता (Mutual Aid) की अनेक समूहों (Many Groupings) तथा विभागों की मानव–व्यवहार के नियन्त्रणों (Controls) तथा स्वतन्त्रताओं (LIberties) की एक व्यवस्था है। इस सतत परिवर्तनशील, जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और यह सदैव परिवर्तित होता रहता है।

टालकॉट पारसन्स ने भी समाज की विशद परिभाषा प्रस्तुत की है। आपके अनुसार 'समाज की मानवीय सम्बन्धों, तात्त्विक या प्रतीकात्मक पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो जहाँ तक सघन–साध्य (Means–ends) के सम्बन्ध के द्वारा क्रिया करने से उत्पन्न होते हैं चाहे वे यथार्थ हों अथवा प्रतीकात्मक (Smybolic)।

पारसन्स की उपुर्यका परिभाषा को निम्नलिखित बिन्दुओं में रखकर समझा जा सकता है।

1. समाज मानवीय सम्बन्धों की एक जटिल व्यवस्था है।
2. समाज का निर्माण केवल उन्हीं मानवीय सम्बन्धों से होता है जो किसी क्रिया के परिणाम–स्वरूप उत्पन्न हुए हों।
3. मनुष्यों के समस्त व्यवहार क्रिया (Action) नहीं होते, अपितु वे ही व्यवहार क्रिया होते हैं जो किसी साध्य की प्राप्ति के लिए एक साधन के रूप में किये गये हों।
4. सामाजिक क्रियायें चाहे वे यथार्थ हों या प्रतीकात्मक, सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करती है जिसके परिणाम–स्वरूप समाज का निर्माण होता है।

इस प्रकार विस्तृत अर्थ में समाज व्यक्तियों का एक ऐसा अमूर्त संगठित समूह है जो सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है जिसकी एक संरचना है और जो व्यक्तियों के व्यवहारों एवं

स्वतन्त्रताओं पर नियन्त्रण रखता है। और भी सरल शब्दों में समाजशास्त्र में समाज शब्द के स्पष्टीकरण के लिए तीन आवश्यक तत्व हैं।

5.1.2 समाज की विशेषताएँ (Characteristics of Society)

समाज की प्रकृति की स्पष्ट विवेचना के लिए यह आवश्यक है कि हम समाज की कुछ मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें। समाज की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हो सकती हैं' –

1. **समाज अमूर्त है** : समाज की सर्व–प्रमुख विशेषता उसकी अमूर्तता है। समाज कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे इन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सके। इसे न तो देखा जा सकता है और न ही छुआ जा सकता है। अमूर्त सामाजिक सम्बन्धों से निर्मित समाज की अमूर्त्त है। **इ.बी. रयटर** ने लिखा है कि 'जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं, अपितु जीवन रहने की एक प्रक्रिया है, उसी प्रकार समाज भी एक वस्तु नहीं, अपितु सम्बन्ध स्थापित करने की एक प्रक्रिया।

2. **पारस्परिक जागरूकता** : जागरूकता का आशय है किसी स्थिति के प्रति मानसिक चेतनता। समाज का अस्तित्व वहीं संभव है जहाँ सामाजिक प्राणी परस्पर जागरूक रहते हुए व्यवहार करते हों। पारस्परिक जागरूकता के अभाव में न तो सामाजिक सम्बन्ध बन सकते हैं और न ही समाज।

3. **समानता एवं विभिन्नता** : प्रत्येक समाज में समानता एवं विभिन्नता दोनों ही अनिवार्य रूप से पायी जाती हैं। तार्किक दृष्टि से समानता एवं विभिन्नता दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। समानता का आशय व्यक्तियों के उद्देश्यों, मनोवृतियों तथा विचारों में एकता का होता है। मैकाइवर एवं पेज लिखते हैं कि 'समाज का अस्तित्व उन्हीं लोगों में होता है, जो एक दूसरे से शरीर या मस्तिष्क में किसी अंश के समान है और जो इसे जानने के लिए पर्याप्त निकट एवं बुद्धिमान है। गिडिग्स के अनुसार "समाज का आधार सजातीयता की भावना है।"

विभिन्नताओं का आशय लोगों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं में है। मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि '"यदि लोग एक दूसरे के समान ही होते तो प्राय: चीटियों या मधुमक्खियो की भाँति ही उनके सामाजिक सम्बन्ध भी बहुत सीमित होते। उनमें पारस्परिक आदान–प्रदान की क्रिया अथवा पारस्परिक सहयोग नहीं के बराबर होता। अत: समाज समानता एवं विभिन्नता दोनों पर आधारित है।

4. **सहयोग एवं संघर्ष** : यद्यपि सहयोग एवं संघर्ष भी दोनों एक दूसरे के विपरीत सामाजिक प्रक्रियायें हैं, तथापि दोनों ही समाज की आवश्यक एवं महत्वपूर्ण विशेषतायें है। कोई भी समाज ऐसा नहीं है जो केवल सहयोग पर आधारित हो। मैकाइबर एवं पेज के अनुसार "जैसे भौतिक जगत् में आकर्ष एवं विकर्षण की शक्तियाँ हैं, वैसे ही सामाजिक जगत् में सहयोग और संघर्ष का एक संयोग होता है, जो मनुष्यों में और समूहों के सम्बन्ध में प्रकट होता है।" **चार्ल्स कुले** ने भी लिखा है कि "इस संयोग के बारे में जो जितना अधिक सोचता है, उसे उतना ही अधिक दिखायी देता है कि संघर्ष और सहयोग अलग करने योग्य वस्तुयें नहीं हैं, किन्तु एक ही प्रक्रिया की अवस्थायें है जिसमें दोनों के कुछ अंग सदैव ही सम्मिलित रहते हैं। इसप्रकार समाज में सहयोग व संघर्ष दोनों पाये जाते हैं।

5. **अन्योयाश्रितता :** समाज में सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक–दूसरे पर आश्रित रहते हैं। वस्तुत: अन्योयाश्रितता की आवश्यकता व्यक्ति को अपने जन्म के साथ ही हो

जाती है और यह उसके सम्पूर्ण जीवन–पर्यन्त चलती है। व्यक्ति अपने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि कार्यो के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं।

6. **एक परिवर्तनशील जटिल व्यवस्था** : समाज को सामान्यत: सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल सामाजिक सम्बन्ध अत्यन्त जटिल एवं परिवर्तनशील होते हैं। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक समाजों एवं वर्तमान समाजों के अन्तर को देखा जा सकता है यह अन्तर परिवर्तनों का परिणाम है। जो सामान्यत: और जटिल महसूस होते हैं।

7. **समाज केवल मनुष्यों में ही नहीं है** : मैकाइवर एवं पेज की यह उक्ति वस्तुत: सत्य है जहाँ कहीं जीवन हैं, वही समाज है। "4 इससे स्पष्ट होता है कि समाज केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, अपितु बन्दरों, चींटियों, कीड़े–मकोड़ों, मधुमक्खियों आदि में भी समाज के लक्षण एवं सामाजिक संगठन देखा जा सकता है। शिक्षा के विद्यार्थी होने के नाते यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल 'मानव–समाज'से ही हैं।

5.2 समाज की संरचना (Structure of Society)

5.2.1 अर्थ एवं अवयव (Meaning and Organs)

सामान्यतय: संरचना शब्द का अर्थ 'बनावट' या ढांचे से लिखा से लिखा जाता है। एक प्रकार से यह एक प्रतिमान होता है। जब किसी भवन को बनाया जाता है, तो उस भवन का ढांचा या स्वरूप एक प्रकार की संरचना कहीं जाती है। यथार्थ में प्रत्येक भौतिक एवं अभौतिक वस्तु की कोई न कोई संरचना अवश्य होती है। इस प्रकार संरचना का सामान्य आशय उस वस्तु के बाहरी स्वरूप या बनावट से होता है।

हमारा यह शरीर हाथों, पैरों, आखों, कानों, नाम, मुँह आदि विभिन्न अंगों का एक ढेर मात्र नहीं है, बल्कि इन सबका एक व्यवस्थित रूप से 'शरीर' कहलाता है। शरीर की इन समस्त संघटक इकाइयों को एक क्रम में रखने के परिणाम–स्वरूप शरीर का जो रूप या स्वरूप प्रकट होता है, उसी को हम शरीर या सावयवी संरचना कहते हैं। इस प्रकार संरचना को बनाने वाले विभिन्न अंगों में एक 'प्रकार्यात्मक सम्बन्ध' पाया जाता है अर्थात् एक अंग का प्रकार्य दूसरे अंग से पृथक् न होकर उससे सम्बन्धित होता है। इसी सम्बन्ध के कारण 'सरंचना का अस्तित्व संभव होता है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि संरचना और प्रकार्य को एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। यही बात समाज पर भी लागू होती है। समाज की भी अपनी एक संरचना होती है जिसे 'सामाजिक संरचना' कहा जाता है, और जिसका निर्माण अनेक सामाजिक इकाइयों द्वारा होता है।

सामाजिक संरचना की अवधारणा का प्रयोग समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र दोनों में होता है। इन दोनों विज्ञानों में इसका अलग–अलग प्रयोग होता है। यहाँ हम आरम्भ से सामाजिक संरचना का जो अर्थ 'समाजशास्त्र' में लिया जाता है उसकी विवेचना करेंगे।

मोरिस जिन्सबर्ग ने 'रिजन एण्ड अनरिज इन सोसायटी में सामाजिक संरचना के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् समूहों, समितियों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इन सबके संकुल जिनसे कि समाज कानिर्माण होता है, से सम्बन्धित है। " **पारसन्स** सामाजिक संरचना को एक क्रमबद्धता के रूप में

देखते हैं। पारसन्स ने सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाइयों (संस्थाओं, एजेन्सियों, प्रतिमानों) की क्रमबद्धता के रूप में सामाजिक संरचना को समझने का प्रयास किया है। ये इकाईयाँ आपस में मिलकर क्रमबद्ध रूप से सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं, एक–दूसरे से पृथक् रहकर नहीं।

5.1.3.2 सामाजिक संरचना की विशेषताएँ

1. सामाजिक संरचना अनेक अंगों या इकाइयों से मिलकर बनती है। वास्तव में विभिन्न अंगों या इकाइयों को व्यवस्थिक रूप से क्रमबद्ध होना ही आवश्यक नहीं वरन् उनमें अन्त: सम्बन्ध का होना भी आवश्यक है।
2. सामाजिक संरचना का सम्बन्ध समाज में बाह्य स्वरूप से होता है।
3. सामाजिक संरचना एक प्रकार से शरीर रंचना की तरह है और इसका प्रयोग भी इसी अर्थ में किया गया है
4. सामजिक संरचना का प्रयोग व्यापक अर्थ में सामाजिर्क संगठन सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक स्वरूप अर्थ में हुआ है, तथा सामाजिक समूह, संस्थायें, समितियाँ आदि इसकी इकाइयाँ है।
5. सामाजिक 'संरचना अपेक्षाकृत 'स्थिर और 'स्थायी होती है।

5.2 जाति (Caste)

इस दृष्टि से जाति मनुष्यों में ही नहीं, पौधों और जड़ पदार्थो में भी होती है। एक अन्य धारणा के अनुसार यूरोपवासियों में सबसे पहले पुर्तगालियों ने 'कास्ट' शब्द का प्रयोग किया जो पुर्तगाली शब्द 'कास्टा से बना है जिसका अर्थ है 'वंश' या 'नस्ल'। भारत में जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था का उत्पाद है। जन्म के आधार पर पहचान का निर्धारण परम्परागत होते ही वर्ण से जातियों का निर्माण प्रारम्म हो गया। परम्परागत व्यवसायों ने जाति व्यवस्था के विकास में सहयोग दिया है। तत्पश्चात् कई अन्य आधारों का योगदान में उपजाति एवं उप–उपजातियों के उद्भव का कारण बनी।

5.2.1 जाति की परिभाषा (Definition of Caste)

एस.वी. केतकर ने "हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डिया" में जाति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "जाति एक सामाजिक समूह है जिसमें एक विशेष जाति की सदस्यता केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित होती है जिन्होंने उसी जाति में जन्म लिया हो, तथा जिसके सदस्यों पर एक दृढ़ सामाजिक नियम द्वारा अपने समूह के बाहर विवाह करने पर निषेघ लगा दिया जाता है।" केतकर ने कुछ स्थानों पर जाति के एक "सामान्य नाम" और "संस्तरण" की भी चर्चा की है।

मजूमदार और मदन जाति को एक बन्द वर्ग कहते हैं। बल्ट के अनुसार "जाति एक अन्तर्विवाही समूह या समूहों का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम होता है, सदस्यता आनुवांशिक होती है, सामाजिक सहवास के क्षेत्र में अपने सदस्यों पर' कुछ प्रतिबन्ध लगाता है, इसके सदस्य या तो एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय करते हैं अथवा किसी सामान्य आधार पर अपनी उत्पत्ति का दावा करते हैं और इसप्रकार एक समरूप समुदाय के रूप में मान्य होते हैं।

उपर्युक्त परम्परागत परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जाति एक ऐसा समाजिक समूहै जिसकी सदस्यता जन्म से निर्धारित हो जाती है और दैनिक जीवन एवं

विशेष अपवरों पर खान–पान, व्यवसाय, विवाह एवं सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक निषेधों की व्यवस्था जुड़ जाति है और सदस्यों को उन्हें स्वीकार करना होता है, जाति को भारतीय समाज व्यवस्था की एक संरचना के रूप में, स्वयं में एक सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था के रूप में व संस्तरण के आधार के रूप में देखा जा सकता है।

5.2.2 जाति की विशेषताएँ (Characteristics of Caste)

जाति की विशेषताएँ संरचनात्मक और सांस्कृतिक संदर्भ में देखी जा सकती है। प्रो. जी.एस धूर्ये ने आठ विशेषताओं का वर्णन किया है

1. **समाज का खण्डात्मक विभाजन** : जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर रखा है। यानि एक जाति के सदस्यों की सामुदायिक भावना सम्पूर्ण समुदाय के प्रति न होकर अपनी ही जाति तक सीमित रहती है।
2. **संस्तरण** : जाति व्यवस्था के अन्तर्गत ऊँच–नीच का एक संस्तरण देखा जा सकता है। इस पद–सोपानिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर एवं शुद्रों का निम्नतम होता है। जन्म पर आधारित होने के कारण इस संस्तरण में स्थिरता एवं दृढ़ता पायी जाती है।
3. **जन्मजात सदस्यता** : जाति की सदस्यता जन्म के साथ ही निर्धारित हो जाती है और मृत्युपर्यन्त इसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं होता।
4. **जाति का राजनीतिक चरित्र भी** : जाति एक राजनीतिक इकाई भी है। जाति पंचायत, कार्य और जाति संगठन उसके राजनीतिक चरित्र का निर्माण करते हैं। जाति के द्वारा विधायिक न्यायिक और कार्यकारिणी सम्बन्धी कार्य भी सम्पन्न किए जाते हैं। उच्च जातियों की अपेक्षा निम्न जातियों में जाति पंचायतों का संगठन अधिक मजबूत रहता है।
5. **भोजन और सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध** : जाति व्यवस्था में परस्पर जातियों के बीच भोजन व व्यवहार से सम्बन्धित अनेक निषेध पाए जाते हैं। ये नियम निर्धारित करते हैं कि उनके सदस्य किस जाति के यहाँ कच्चा, पक्का या फलाहारी भोजन कर सकते हैं अथवा नहीं। सामान्यत: नीची जातियों द्वारा निर्मित भोजन उच्च जातियों द्वारा नहीं किया जाता।
6. **सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएँ एवं विशेषाधिकार** : जाति व्यवसाय में उच्च जातियों को कई सामाजिक एवं धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त है जबकि निम्न जातियों को इनसे वंचित रखा गया है यानि निर्योग्यताएं है।
7. **परम्परागत व्यवसाय** : प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है। कई जातियों के नाम से उनके व्यवसाय का बोध होता है। प्रत्येक जाति के सदस्य निर्धारित व्यवसाय पर जोर देते हैं और अपना व्यवसाय बदलने से रोकते हैं लेकिन कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जिन्हें सभी जातियों के व्यक्ति करते हैं, विशेषकर कृषि, व्यापार, सेना में नौकरी आदि।
8. **विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध** : जाति अन्तर्विवाही समूह होते हैं। प्रत्येक जाति के सदस्य अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करते हैं। जाति या उपजाति से बाहर विवाह करने वाले को जाति से बहिस्कृत कर दिया जाता है।

5.2.3 जाति व्यवस्था में परिवर्तन (Changes in Caste System)

जाति व्यवस्था के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप में व्यापक परिवर्तन, शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण एवं अब ग्लोबलाईजेशन के कारण देखा जा सकता है। जाति संस्तरण के आधार के रूप में अपना महत्व खोती जा रही है। कई विद्वानों का मानना है कि जातियों में वर्ग व्यवस्था उत्पन्न हो रही है अत: जाति समूहों में सामाजिक गतिशीलता बढ़ रही है। लेकिन परम्परागत जातिगत संस्तरण अब भी विद्यमाने है। यह सोच अब पुराना हो चुका है। निम्न जातियाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार कर रही हैं और नगरों में बढ़ती अपरिचितता का लाभ उठाकर निम्न जाति के स्वरूप स्वयं को उच्च जाति का घोषित कर रहे हैं।

कई जातिगत विशेषताएँ ब्राह्मणों की उच्च प्रस्थिति, पेशे का चुनाव, भोजन एवं खान–पान सम्बन्धी प्रतिबन्ध, विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध आदि–तेजी से कमजोर होती जा रही है। इनकी महत्वता लगभग समाप्त हो चुकी है। नवीन कानूनों ने सामाजिक–सांस्कृतिक सम्बन्धों की परम्परागत स्थिति में परिवर्तन किया है। धर्म निरपेक्षीकरण एवं प्रजातंत्रीय मूल्यों ने जातिगत भेद में कमी की है और नवीन विश्वस्तर के व्यवसायों ने पैसे और पद की महत्वता को बढ़ाते हुए परम्परागत मूल्यों में तेजी से बदलाव लाने में अपना सहयोग बढ़ाया है। कुछ विद्वानों ने जाति में वर्ग के उद्भव की बात की है और कुछ इसे क्षणिक परिवर्तन का हिस्सा मानते हैं। लेकिन यह सत्य है कि जातिगत जडताएँ अब तेजी से समाप्त होती जा रही हैं और नवीन ज्ञान की धाराओं के प्रभाव से जातिगत मूल्यों का अस्तित्व और उनका चरित्र अब राजनीतिक उपयोग तक अधिक सीमित होता जा रहा है। सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताएं धीरे–धीरे लुप्त हो रही हैं। फिलहाल उनके नए स्वरूप की चर्चा करना दुश्कर कार्य है।

स्वमूल्यांकन प्रश्न–1(SelfEvaluation Question)

1. मैकाइवर एवं पेज द्वारा प्रस्तुत समाज की परिभाषा दीजिए|
2. समाज की तीन प्रमुख विशेषताएं दीजिएं|
3. 'जाति' की परिभाषा दीजिए|

5.3 वर्ग (Class)

सामाजिक संरचना में सामाजिक संस्तरण का एक प्रमुख आधार सामाजिक वर्ग भी है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं – औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा प्रौद्योगिकी विकास, आधुनिकीकरण आदि के प्रभाव के परिणामस्वरूप सामाजिक वर्ग व्यवस्था के संदर्भ में भारतीय समाज की व्याख्या की जाने लगी है। आर्थिक विकास ने जातिगत संस्तरण को जहां कमजोर करना प्रारम्भ किया है, वहीं वर्गगत विशेषताओं को बढ़ाने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। **बोटोमोर** का कथन महत्वपूर्ण है - "वर्ग तथ्यत: समूह होते हैं। वे अपेक्षाकृत उन्मुक्त होते हैं, बन्द नहीं। उनका आधार निर्विवाद रूप से आर्थिक है, लेकिन वे आर्थिक समूहों से अधिक हैं। वे ओद्योगिक समाजों के लाक्षणिक समूह हैं।

वर्ग व्यवस्था आधुनिक औद्योगिक एवं खुले समाज की विशिष्ट विशेषता है। जिसका आधार अर्जित प्रस्थिति है। अर्जित प्रस्थिति व्यक्तिगत योग्यता और क्षमता के आधार पर प्राप्त उपलब्धि पर निर्भर करती है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवनकाल में एक वर्ग से दूसरे वर्ग में अपनी उपलब्दियों के आधार पर नीचे से उपर जा सकता है। इसके विपरीत एक उच्च स्तर का व्यक्ति या अमीर व्यक्ति किसी काल विशेष निम्न स्तर तक आ सकता है, यानि उसका वर्ग बदल जाता है।

वर्ग व्यवस्था के आधार पर हम समाज को मोटे तौर पर तीन वर्गो में बांट सकते हैं – उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। विभिन्न समाजों में स्तरण का आधार समान नहीं होता। विशेषकर विकसित एवं विकासशील देशों में। विकासशील देशों में निम्न वर्ग का आधार बहुत बड़ा होता है। जबकि विकसित देशों में मध्यम वर्ग का आकार शेष दोनों वर्गो से बड़ा होता है। भारत में मध्यम वर्ग का आकार तेजी से नहीं बढ़ रहा। वरन् इसकी महत्वता में भी वृद्धि हो रही है।

5.3.1 वर्ग : अर्थ एवं परिभाषा (Class : Meaning and Definition)

वर्ग का आधार आर्थिक हीं नहीं अपितु सामाजिक–सांस्कृतिक भी होता है। ऑगबर्न के अनुसार "एक सामाजिक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का योग है, जिनकी उस समाज में अनिवार्य रूप से समाजन सामाजिक स्थिति होती है। **मैकाइबर व पेज** के शब्दों में "एक सामाजिक वर्ग समुदाय का वह भाग है जो सामाजिक स्थिति के आधार पर दूसरों से पृथक किया जा सके। "विद्वानों की ये परिभाषाएँ स्पष्ट करती हैं कि समाज सामाजिक प्रस्थिति वाले समूह ही समाज में वर्गो का निर्माण करते हैं। क्लर्क, अध्यापक, इंजीनियर, डॉक्टर, व्यापारी, किसान आदि की सामाजिक प्रस्थितियां समाज में भिन्न–भिन्न होने से अलग–अलग प्रकार के वर्ग बन गए हैं।

कुछ परिभषाएं वर्ग के आर्थिक आधार को स्वीकार करती हैं। **मार्क्स** का कहना है कि जीविका उपार्जन के विभिन्न साधनों के कारण मनुष्य पृथक–पृथक वर्गो में विभाजित हो जाते हैं। उनके मतानुसार एक सामाजिक वर्ग को उसके उत्पादन के साधनों और सम्पत्ति के वितरण के साथ होने वाले सम्बन्धों के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है।

मैक्स वेबर के अनुसार, "एक समूह को तब वर्ग कह सकते हैं जबकि उस समूह के लोगों को जीवन के कुछ अवसर समान रूप से प्राप्त हों यहां तक कि वह समूह वस्तुओं पर अधिकार या आमदनी की सुविधाओं से सम्बन्धित आर्थिक हितों द्वारा पूर्णतया निर्धारित तथा वस्तुओं या श्रमिक बाजारों की अवस्थाओं के अनुरूप हों।

कुछ विद्वान वर्ग को सामाजिक–सांस्कृतिक समूह के रूप में देखते हैं। **जिन्सबर्ग** का कहना है कि "एक सामाजिक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो व्यवसाय, धन, शिक्षा, जीवन यापन की विधियों, विचारों, भावनाओं, मनोवृत्तियों और व्यवहारों में एक दूसरे के समान होते हैं या वे एक–दूसरे से समानता का अनुभव करते हुए अपने को एक समूह का सदस्य समझते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक वर्ग के सदस्यों की सांस्कृतिक विशेषताएं समान होती हैं।

5.3.2 वर्ग की विशेषताएँ (Characteristics of Class)

वर्ग की धारणा को ओर स्पष्ट करने के लिए वर्ग की विशेषताओं का जानना बेहतर रहेगा। महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्न प्रकार है–

1. **पद–सोपान व्यवस्था** : समाज में वर्गो की एक श्रेणी होती है जो उच्च से निम्न की ओर या निम्न से उच्च की ओर होती है। उच्च वर्ग के सदस्यों की प्रतिष्ठा एवं शक्ति अन्य वर्गो की तुलना में सबसे ज्यादा होती है। इनकी संख्या भी कम होती है। विकासशील समाज में निम्न वर्ग के सदस्यों की संख्या सर्वाधिक होती है, जबकि विकसित समाजों में मध्यम वर्ग का आकार निम्न व उच्च वर्ग की तुलना में सबसे बड़ा होता है।
2. **खुली व्यवस्था** :वर्ग व्यवस्था जाति की तरह कठोर और जन्म पर आधारित नहीं होती। वर्ग की सदस्यता में परिवर्तन संभव है। व्यक्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता का प्रयोग कर अपने से उच्च वर्ग की सदस्यता अर्जित कर सकता है, जाति की तरह व्यक्ति जीवन पर्यन्त उसी वर्ग का सदस्य रहेगा, यह आवश्यक नहीं है और ना ही जन्म से वर्ग का निर्धारण ही होता है ।
3. **समान प्रस्थिति समूह** : एक वर्ग के लोगों की प्रस्थिति एक समान होती है। प्रस्थिति निर्धारण के कई आधार हैं। सम्पति, शिक्षा, व्यवसाय, आय, राजनीति आदि कई आधार हो सकते हैं। फिर भी कोई एक ही आधार सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण नहीं करता। दो या अधिक आधार मिलकर भी सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण करने में अपना योगदान करते हैं। एक वर्ग के लोग समान प्रस्थिति के आधार पर उच्चता या निम्नता की भावना रखते हैं तथा उनमें 'हम' की भावना विकसित होती है।
4. **सीमित सामाजिक सम्बन्ध** : एक वर्ग के सदस्यों के बीच सामाजिक सम्बन्ध अपने ही वर्ग के लोगों तक सीमित रहते हैं। अन्य वर्गो (उच्च या निम्न) से एक निश्चित सामाजिक दूरी बनाए रखते हैं। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समानता के कारण एक वर्ग के सदस्यों के सम्बन्ध अपने ही वर्ग में अधिक पाए जाते हैं। इसमें शिक्षा, व्यवसाय, आय, मकान का प्रकार, मोहल्ले की प्रतिष्ठा, रहन–सहन, पहनावा, बोलने का तरीका, आदि महत्वपूर्ण हैं। उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग के सदस्यों से इन आधारों पर स्पष्ट भिन्नता देखी व पहचानी जा सकती है।
5. **परिवर्तनशीलता** : वर्ग व्यवस्था में परिवर्तनशीलता का गुण विद्यमान रहता है। इसका कारण शिक्षा, व्यवसाय, आय, शक्ति, आदि अर्जित विशेषताओं से युक्त होती है। और इनमें परिवर्तन भी आसान है। वर्ग परिवर्तन सम्भव है, लेकिन इसमें समय लग सकता है।
6. **जीवन अवसर** : मैक्स वेबर का कहना है कि एक वर्ग के लोगों को जीवन के कुछ विशिट अवसर और सुविधाएं समान रूप से प्राप्त होते हैं। मजदूरी के अवसर गरीब वर्ग को नए उद्योग–धंधें खोलने के एवं उच्च जीवन स्तर बनाए रखने के अवसर सम्पन्न लोगों को समान रूप से प्राप्त होते हैं।

5.4 धर्म (Religion)

धर्म प्रतीकों का ऐसा संकलन है जिससे लोगों के अनुभव और भावनाएं मानसिकता का हिस्सा बन जाते हैं और संस्कारों और उत्सवों से जुड़ जाते हैं। अलग–अलग धर्मो में अलग–अलग स्थितियां देखी जाती हैं। कहीं धार्मिक पुस्तक तो कहीं मूर्तिव्रत आकृति महत्वपूर्ण होती है। कहीं आध्यात्मिक और लौकिक स्वरूप महत्वपूर्ण होता है। इसीलिए अलग–अलग धर्मो के प्रतीकों एवं संस्कारों के स्वरूपों में भी अन्तर देखा जा सकता है। संस्कारों में प्रार्थना, श्लोक आदि का

उच्चारण, भजन या गायन, विशेष प्रकार का भोजन, व्रत या उपवास आदि विद्यमान होते हैं। ये सब व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों स्तरों पर आयोज्य होते हैं।

धर्म किसी भी समाज की संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। हजारों वर्षो से मानव जीवन पर धर्म का कठोर प्रभाव रहा है। सभी ज्ञात समाजों में धर्म का अस्तत्व किसी न किसी स्वरूप में विद्यमान देखा जा सकता है। पुरातात्विक अवशेष प्रारम्भिक समाजों में धर्म के प्रतीकों एवं उत्पकों की कहानी कहते हैं। सम्पूर्ण मानव इतिहास में धर्म ने मानवीय अनुभवों एवं सम्बन्धों के स्वरूपों में केन्द्रीय भूमिका निबाही है। साथ ही जिस भौतिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण में वे समाज रहते रहे थे उस पर्यावरण से अन्तःक्रिया में धार्मिक व्याख्याएँ देखी जा सकती हैं।

धर्म की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यधिक कठिन है। इसमें व्यक्ति और समुदाय की भावनात्मकता अन्तर्निहित होती है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास और संगठन इतने अधिक हैं कि विद्वानों को धर्म की सामान्य स्वीकृत परिभाषा विकसित करने में अत्यधिक कठिनाई आती है। धर्म एक सामाजिक संस्था है। इसका ताना–बाना आधिदैविक तथा उत्प्राकृतिक है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से धर्म को मुख्यत: तात्विक और प्रकार्यात्मक दृष्टि से परिभाषित किया जा सकता है। तात्विक परिभाषाएं धर्म की व्याख्या "क्या" है? के आधार पर विकसित है, जबकि प्रकार्यात्मक परिभाषाएं समाज में धर्म की भूमिका (धर्म क्या करता है?) को स्पष्ट करती है।

19वीं शताब्दी के मानवशास्त्रियों में टायलर की धर्म की व्याख्या तात्विक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। टायलर के अनुसार धर्म देवी–देवताओं तथा अन्य अधिमानवीय प्राणियों जैसे पूर्वज, आत्माओं के प्रति विश्वास तथा उनसे सम्बन्धित कर्मकाण्डों की एक व्यवस्था है। समाजशास्त्र में धर्म की प्रकार्यात्मक व्याख्या अन्य सामाजिक संस्थाओं की तरह ही परिभाषित की गई है। धर्म सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में अपनी विशिष्ट भूमिका निबाहता है। दर्खीम ने टायलर की धर्म की व्याख्या को अस्वीकार करते हुए प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से इसे परिभाषित किया है।

दर्खीम के अनुसार धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों तथा कर्मकाण्डों की एक संगठित व्यवस्था है। धर्म विशेष के अनुयायियों को एक एकल सामाजिक–नैतिक समुदाय में बांधता है जो इनका अनुसरण करते हैं। दूसरे शब्दों में "किसी आलौकिक प्राणी, शक्ति अथवा सत्ता पर केन्द्रित विश्वासों, मूल्यों व आस्था पवित्रता की धारणा पर आधारित होते हैं, तथा इनसे सम्बन्धित कर्मकाण्डों के पुंज को धर्म कहते हैं। यह नैतिक निर्णुयों को लेने की प्रक्रिया में उत्पन्न कठिन असमंजस की स्थिति में व्यक्ति की सहायता करता है। सामान्यत: धर्म मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अबुक पक्षों जैसे जीवन, मृत्यु, बीमारी, वृद्धावस्था और उसके अस्तित्व के रहस्यों को जानने और उनके साथ व्यवहार करने का तरीका है।

दर्खीम के अनुसार धर्म कर्मकाण्डीय क्रियाओं का परिणाम है। वस्तुत: धर्म का स्वरूप सामाजिक है, वैयक्तिक नहीं। उसने तर्क दिया है कि "सभी समाजों में 'पवित्र व अपवित्र वस्तुओं में भेद किया जाता है और पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित विश्वासों व क्रियाओं की एक संयुक्त व्यवस्था को धर्म कहते हैं। पवित्र वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जो पृथक रखी जाती हैं और निषिद्ध मानी जाती है। इनका दुरूपयोग निषिद्ध होता है। विश्वास और क्रियाएं जो एक अकेले नैतिक समुदाय में संगठित होती है, जिसे धर्म कहते हैं, सभी लोग उसे अपनाते हैं।

मार्क्स के अनुसार धर्म मानव को यथार्थ जगत से बचाने या दूर करने के बजाय कायर बना डालता है। मार्क्स की दृष्टि में धर्म अफीम की गोली है, जिसके नशे में गरीब जनता को सुलाकर उन्हें निर्भयता से लूटा जाता है। उनके अनुसार धर्म जनता या समाज के विकास में बाधक है।

मैक्स वेबर के धर्म के बारे में विचार न तो मानवशास्त्रीय सैद्धान्तिक यूक्ति दोषों से मुक्ता थे और ना ही उन्होंने धर्म की विवेचना में पूजा और विश्वासों की वैचारिक व्यवस्था को कोई प्रश्रय दिया। वेबर का मुख्य उद्देश्य विभिन्न समाजों की संस्थागत व्यवस्थाओं पर धार्मिक नीतियों के प्रभाव को स्पष्ट करके यह ज्ञात करना था कि विभिन्न समाजों की आर्थिक तथा सामाजिक विभिन्नताओं को धार्मिक आधार पर किस तरह स्पष्ट किया जा सकता है। किस प्रकार और कौन से धार्मिक मूल्य पूंजीवादी व्यवस्था को विकसित करने में सहायक होते हैं। प्रोटेस्टेंट एथिक में वे पूंजीवाद की आत्मा पाते हैं।

5.5 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन (Education and Social Change)

शिक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। समाज में शिक्षा का वर्चस्व आदिम समाज से अब तक अनुभव के आधार पर विकसित हुआ है और समाज का विकास इसप्रकार उत्पन्न ज्ञान के आधार पर बढ़ता रहा है। शिक्षा का औपचारिक स्वरूप अलग–अलग समाजों में अलग–अलग तरह से फलता–फूलता रहा। मूल में शहरों के प्रसार व औद्योगीकरण ने शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को स्थापित किया है। लेकिन आज इसका जो सार्वभौतिक स्वरूप उभरा है उसने समाज में ज्ञान–विज्ञान और प्रौद्योगिकी को दैनिक जीवन का अंग बना दिया है और उसे व्यावसायिकता और जीवन–यापन के विभिन्न स्तरों से स्तर पर नहीं जोड़ा वरन् राष्ट्र और समाज के विकसित स्वरूप का निर्धारक बना दिया है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का स्रोत और यंत्र बन चुका है।

5.5.1 सामाजिक परिवर्तन : परिभाषा (Social Change : Definitions)

आप यह जानते ही है कि सामाजिक परिवर्तन की गति दिन प्रति दिन तीव्र होती जा रही है। विकसित एवं विकासशील समाजों के ग्रामीण व नागरिक क्षेत्रों में यानि सभी जगह सामाजिक परिवर्तन बहुत अधिक विविधता और तीव्रता से हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका बहुत गंभीर व महत्वपूर्ण है। इससे पूर्व की शिक्षा की भूमिका जाने व समझे, यह जानना महत्वपूर्ण है कि सामाजिक परिवर्तन क्या है? समाज में होने वाला प्रत्येक प्रकार का परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन नहीं कहलाता। आइये, हम देखें कि समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन को किस प्रकार परिभाषित किया है।

जोन्स का कहना है कि "सामाजिक परिवर्तन एक संप्रत्यय है जिसका प्रयोग सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अंतःक्रिया या सामाजिक संगठन के किसी भी अंतर या संशोधन का वर्णन करने के लिये किया जाता है।

मेकाइवर और पेज के अनुसार "सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं।

किंग्सले डेविस के अनुसार "एक समाज के सामाजिक संगठन की संरचना और प्रकायाँ में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

मोरिस जिन्सवर्ग "सामाजिक परिवर्तन से मैं समझता हूँ सामाजिक संरचना में एक परिवर्तन। " मोरिस जिन्सवर्ग की परिभाषा सर्वोत्तम है।

आधुनिक समाजशास्त्रीय भाषा में समाज शब्द के बदले सामाजिक व्यवस्था पद का प्रयोग किया जाता है, तथा सामाजिक व्यवस्था के तीन भाग या अंग विश्लेषण हेतु बताये गये है।

(i) **'सामाजिक संरचना'** – सामाजिक संरचना जिसका अर्थ है सामाजिक संस्थाओं की ठोस प्रतिमानात्मक व्यवस्था। इसी पर मूलत: सामाजिक व्यवस्था टिकी होती है। जैसे भारतीय सामाजिक संरचना जाति, धर्म, वर्ग आदि महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं से मिलकर बनी है।

(ii) **संस्कृति** – संस्कृति जो कि वास्तव में मूल्यों की एक व्यवस्था है। यही हमारी जीवन शैली या जीवन का ढंग है।

(iii) **व्यक्तित्व व्यवस्था** – समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, प्रवृतियों आकांक्षाओं, सुझावों आदि अनेक जटिल मनोवैज्ञानिक व सांस्कृतिक कारकों से निर्मित होते हैं।

इस प्रकार एक समाज या सामाजिक व्यवस्था में होने वाले किसी भी महत्वपूर्ण परिवर्तन को "सामाजिक परिवर्तन" कह दिया जाता है और मोटे रूप में यह ठीक ही मान लिया जाता है। लेकिन वास्तव में यदि बारीकी से विश्लेषण किया जाये तो यही कहना चाहिये कि जब सामाजिक संरचना में परिवर्तन आये तो वही सच्चा हुआ, जब संस्कृति में परिवर्तन आये तो वह हुआ और जब व्यक्तित्व व्यवस्था में परिवर्तन आये (जो बहुत मुश्किलों से यदाकदा ही आता है) तो वह व्यक्तित्व परिवर्तन हुआ।

5.5.2 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ (Characteristics of Social Change)

विल्बर्ट मूर व अन्य समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

1. प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन में गम्भीरता, दीर्घकालीन अथवा स्थायित्व की प्रवृति देखने में आती है– क्षणिक या दो चार दिनों या कुछ लोगों के जीवन या संबंधों में होने वाले अस्थायी परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन नहीं कहते।
2. सामाजिक परिवर्तन जटिल होते हैं।
3. सामाजिक परिवर्तन अचानक नहीं होते, उनकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है, वे धीरे–धीरे होते हैं। अधिक से अधिक कोई परिवर्तन की संभावना बतला सकता है लेकिन निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता है कि कब, कहां और कैसा सामाजिक परिवर्तन होकर ही रहेगा। परिवर्तन कहीं भी हो सकता है और उसका प्रभाव कहीं भी हो सकता है।
4. सामाजिक परिवर्तन से व्यक्ति न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रभावित होते हैं बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक संरचना और व्यवस्था की कार्य–पद्धति में भी परिवर्तन आ जाता है।
5. किसी भी समाज के हिस्सों में किसी एक सामाजिक परिवर्तन का असर एक–सा और एक साथ नहीं होता।

6. आधुनिक समाजों में सामाजिक परितर्वन की गति बहुत तीव्र होती है। जबकि सरल समाजों (गांवों, जन जातियों आदि में) में सामाजिक परिवर्तन धीरे–धीरे आता है।
7. परिवर्तन योजनाबद्ध ढंग से हो सकता है और अयोजनाबद्ध ढंग से भी हो सकता है। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के जरिये देश में योजनाबद्ध सामाजिक परिवर्तन लाया जा रहा है। कई परिवर्तन स्वत: बिना सोचे विचारें भी अनियोजित ढंग से हो रहे हैं जो अपने प्रभाव से अच्छे या बुरे हो सकते हैं।
8. सामाजिक परिवर्तन समाज के भीतर से भी उत्पन्न किया जा सकता है, और समाज के बाहर से भी। उदाहरणार्थ, आर्य समाज द्वारा लाया गया सामाजिक–परिवर्तन आंतरिक रूप से प्रेरित कहा जाता है, जबकि नियोजित परिवर्तन बाह्य शक्तियों के परिणाम स्वरूप होता हैं|
9. सामाजिक परिवर्तन एक या अधिक कारकों का परिणाम हो सकते हैं।
10. आजकल सामाजिक परिवर्तन व्यक्तिगत अनुभव और समाजों के विविध पक्षों को विस्तृत रूप सें प्रभावित करते हैं।
11. चूंकि मानव अपने पर्यावरण पर पूर्ण अधिकार पाने तथा आदर्श मूल्यों की प्राप्ति करने में अब तक पूर्णतया सफल नहीं हुआ है, अत: सामाजिक परिवर्तन के ये दो प्रमुख स्रोत है।
12. वयस्क मताधिकार, सत्याग्रह, मनोवैज्ञानिक क्लिनिक, सामाजिक कानून आदि समाज में विविध प्रकार के सामाजिक परिवर्तन लाते हैं।
13. कई सामाजिक परिवर्तन तो निसंदेह नये अनूठे या अद्वितीय होते हैं और उन्हें "नवाचार" कहा जाता है, लेकिन प्राय: बहुत सामाजिक परिवर्तन (जैसे कपड़ों के फैशन) होते हैं क्योंकि वे समय–समय पर आते हैं और लुप्त होते रहते हैं।
14. यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन स्वागत करने योग्य अतिथि हों क्योंकि कई सामाजिक परिवर्तन समाज को पहले से अधिक खराब, विघटित, विफल, दुखी भी बना सकते हैं।
15. सामाजिक परिवर्तन की कई प्रक्रियाएँ हो सकती है। भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तन की कुछ प्रक्रियाएँ हैं–

    (i) पश्चिमीकरण, (ii) संस्कृतिकरण, (iii) धर्मनिरपेक्षीकरण, (iv) सामाजिक गतिशीलता या गत्यात्मता, (v) प्रजातंत्रीयकरण (vi) आधुनिकीकरण, (vii) नगरीकरण, (viii) औद्योगीकरण, (ix) भारतीकरण
16. सामाजिक परिवर्तन के प्रभावों का विश्लेषण जब कोई सामाजिक परिवर्तन होता है तो उसका निम्नांकित पक्षों पर प्रभाव पड़ता है–
    - (i) लागों के आपसी सम्बन्धों पर प्रभाव;
    - (ii) लोगों के विश्वासों, सोचने–समझने के प्रतिमानों में अंतर;
    - (iii) लोगों की आकांक्षाओं में परिवर्तन;
    - (iv) सामाजिक संस्थाओं (जैसे विवाह, परिवार, शिक्षा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कानून आदि) की रूप रचना, कार्य दिशा, कार्य क्षमता, प्रभावोत्पादकता आदि पर प्रभाव।
    - (v) लोगों के सामाजिक एकीकरण/संगठन पर प्रभाव

(vi) समाज की सामाजिक प्रगति (Social progress) को बढ़ावा मिलना या धक्का लगना।

(vii) लोगों की आदतों, चरित्र, नैतिकता, मनोबल, आदि पर प्रभाव।

(viii) सामाजिक विघटन से बढ़ावा मिलना या उसमें कमी आन।

(ix) लोगों के कार्य करने, विचार व व्यवहार करने के तरीकों पर प्रभाव।

(x) लोगों के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन।

17. यह एक अजीब बात है कि जिन सामाजिक परिवर्तनों का आरंभ में लोगों द्वारा बहुत विरोध किया गया, वे बाद में चलकर बहुत उपयोगी साबित हुए।
18. सामाजिक परिवर्तन के कई रूप हो सकते हैं यथा – सामान्य सामाजिक परिवर्तन, क्रान्ति, आन्दोलन, विघटन, संघर्ष आदि।

5.5.3 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन (Education and Social Change)

सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा के परस्पर सम्बन्धों को हम तीन रूपों में विश्लेषित कर सकते हैं –

(क) किसी देश में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए अनिवार्य शर्त या आवश्यकता के रूप में शिक्षा।

(ख) एक देश में सामाजिक परिवर्तन लाने के साधन या अभिकर्ता के रूप में शिक्षा।

(ग) एक देश में सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव के रूप में शिक्षा।

(क) सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए अनिवार्य शर्त या आवश्यकता

शिक्षा के समुचित आधार या प्रयास के बिना एक समाज में सामाजिक परिवर्तन लाना कठिन हो जाता है। कई विकासोन्मुख देशों में यह देखने में आया है कि वहाँ लगाये गये कीमती व उच्चस्तरीय यंत्र, कल–कारखाने और अन्य उत्पादन केन्द्र वहां प्राय: अपना पूरा लाभ नहीं दे सकते हैं, क्योंकि उनके लिए उपलब्ध होने वाले कार्यकर्ताओं या श्रमिकों में या तो अशिक्षा ही व्याप्त होती है अथवा अल्प शिक्षा। वे यंत्रों तथा उच्च औपचारिक व्यवस्थाओं को भली भाँति चलाने के लिए आवश्यक सावधानियाँ, नियमों, सूझ–बूझ आदि को नहीं बरत पाते हैं। अत: उत्पादन की दर अथवा कार्यकुशलता के स्तर अत्यन्त निम्न बने रहते हैं तथा वांछित समाजिक परिवर्तन नहीं होता है। यह भी देख सकते हैं कि सामाजिक सुधार के कार्यक्रम भी तभी सफल हो पाते हैं, जब जनता में शिक्षा का कोई–न–कोई स्तर विद्यमान हो। भारत में शारदा मैरेज एक्ट, छुआ–छूत सम्बन्धी अधिनियम सफलतापूर्वक अपना कार्य नहीं कर पाये हैं। क्योंकि अधिकतर ग्रामीण भारतीय जनता अशिक्षित है और वह इन प्रयासों के महत्व को नहीं समझ पायी है। इसी प्रकार स्वच्छ जीवन, उत्तम स्वास्थ्य, तर्कपूर्ण चिंतन आदि के विकास में शिक्षा का अभाव अत्यन्त बाधक रहा है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षित पंचों व सरपंचों ने अपनी अशिक्षा के फलस्वरूप समाज में अभी तक अनिवार्य साक्षरता और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रदान

करने की व्यवस्था न हो पाने तथा शिक्षक–प्रशिक्षण के स्तर निम्न होने के कारण वांछित सामाजिक परिवर्तन नहीं हो पा रहा है।

(ख) **सामाजिक परिवर्तन लाने के साधन या अभिकर्ता के रूप में शिक्षा** :

सामाजिक परिवर्तन के लिए इच्छुक एक समाज कई प्रकार के कारकों संस्थाओं, संयत्रों अथवा अभिकर्ताओं को काम में लाता है। उनमें से एक महत्वपूर्ण यंत्र शिक्षा है। यह विश्वास किया जाता है कि शिक्षा द्वारा योग्य विशेषीकृत कार्यकर्ता तैयार किये जा सकेंगे– जो उच्च स्तरीय शिक्षा संस्थाओं, औद्योगिक–व्यापारियों प्रतिष्ठानों तथा अधिकारीतंत्र में कार्य कर सकेंगे, लोगों में नये सामाजिक मूल्य विकसित किये जा सकेंगे तथा उनको परंपरागत मूल्यों की जकड़ से बहुत अधिक छुटकारा दिलवाना संभव होगा, लोगों के व्यक्तित्वों में परानुभूति गतिशील प्रबुद्वता तथा अध्यवसाय की आधुनिक विशेषताएँ उत्पन्न की जा सकेंगी तथा पिछड़ेपन संकुचितता तथा अज्ञान को नष्ट किया जा सकेगा। शिक्षा के द्वारा लोगों के सामान्य ज्ञान, जीवनस्तर, स्वच्छता, स्वास्थ्य, नैतिकता तथा नव–परिवर्तन के प्रति प्रेरणा अथवा जागरूकता के स्तरों को विकसित किया जा सकेगा तथा सामाजिक विभेदीकरण या स्तरण तथा शोषण को कम किया जा सकेगा।

एम.एन. श्रीनिवास तथा अन्य कई सामाजिक प्रेक्षकों ने इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण विचार दिये हैं–

1. शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का प्रभावशाली संयंत्र तभी बन सकती है, जबकि वह स्वयं स्वस्थ अथवा दोषमुक्त हो। दुर्भाग्यवश, आधुनिक भारतीय शिक्षा की व्यवस्था के भीतर ही इतने अधिक रोग–द्वेष, सामाजिक अन्याय, विषमताएँ, शोषण तथा अनाचार की प्रवृतियाँ फैली हुई हैं कि अब उससे यह आशा करना कि वह समाज में सुधार और परिवर्तन लायेगी केवल एक प्रवंचना ही है। विश्वविद्यालय में प्रशिक्षण पा रहे भविष्य के डॉक्टरों, इंजीनियरों, नौकरशाहों, मैनेजरों और अन्य पदाधिकारियों में से कितनों के हृदय में यइ इच्छा नहीं है कि नौकरी लगते ही समाज में लूट–खसोट कर अपना घर भरने का प्रयास नहीं करेंगे?

2. शिक्षा सामाजिक व्यवस्था से स्वयं ही प्रभावित होती है। अत: वह किस प्रकार सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित व परिवर्तित कर सकती है?

आज का भारतीय सामाजिक संदर्भ ही प्रतिमानहीनता तथा विरोधाभासों से ग्रस्त हैं अत: वह शिक्षा संस्थाओं पर भी बुरे सामाजिक प्रभाव डाल रहा है। हमारे पाठ्यक्रम, शिक्षकों की नियुक्तियाँ, शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन, शिक्षा संस्थाओं में उपलब्ध साधन–सुविधाएँ, ये सभी तो समाज पर ही निर्भर है। जब समाज में ही परिवर्तन के स्थान पर परम्परागत व्यवस्था अथवा सामाजिक स्थिरता फैली हुई है तो फिर यह कैसे आशा की जा सकती है कि शिक्षा संस्थाएँ ऐसी मनोवृत्तियों से प्रभावित नहीं हो पायेंगी और समाज को सुधार पायेंगी?

इस आलोचना का उत्तर दिया जा सकता है। यह सही है कि समाज की वर्तमान अथवा परम्परागत व्यवस्थाओं, मूल्यों व परम्पराओं का शिक्षा संस्थाओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह कहना पूर्णतया सत्य नहीं है कि शिक्षा संस्थाएँ ऐसी स्थिति में समाज सुधार अथवा सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में कुछ भी नहीं कर सकती। वास्तव में यह वैधानिक उत्तरदायित्व है कि वे सामाजिक समस्याओं पर निष्पक्षतापूर्वक सोच–विचार कर यह तय करे कि किस प्रकार समाज में प्रचलित अप्रकार्यात्मक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया जा सकता

है। यदि शिक्षा संस्थाएं ऐसा नहीं कर पाती हैं, तो वे अपने प्रति की जा रही समाज की महत्वपूर्ण आकांक्षा को धूमिल कर रही हैं।

भारतीय शिक्षा संस्थाएं स्वयं में सुधार अथवा परिवर्तन नहीं ला पा रही हैं। वे समाज में परिवर्तन भी नहीं ला पा रही हैं। इस महत्वपूर्ण पक्ष पर विचार करने के लिए हमें उन सभी बातों पर ध्यान देना होगा, जिनका संबंध परिवर्तन की प्रेरणा, परिवर्तन के अभिकर्ताओं की पृष्ठभूमियों, मूल्यों स्वार्थो, आकांक्षाओं, सामाजिक नियंत्रकों आदि से होता हैं।

हमारी शिक्षा संस्थाओं के भीतर और बाहर दोनों ही ओर ऐसे व्यक्तियों की भरमार होती है, जो किसी भी प्रकार का परिवर्तन पसन्द नहीं करते। शोषित व दलित व्यक्ति भी अपनी वर्तमान परिस्थितियों से ही एक प्रकार की संतुष्टि अनुभव करते हैं। वे परिवर्तन से हिचकिचाते हैं। उच्च प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों में स्थित व्यक्ति परिवर्तन को इसलिए नहीं चाहते कि ऐसा होने से उनके निजी स्वार्थो की पूर्ति नहीं होगी। आज विद्यार्थी शिक्षा संस्थाओं के प्रशासन को चलाने में अपना हक मांग रहे हैं लेकिन हमारे बूढ़े प्रधानाचार्य, प्रध्यापक व शिक्षा प्रशासनिक अधिकारी इसीलिए उनकी इस मांग को ठुकरा रहे हैं कि ऐसा हो जाने पर उन्हें कौन पूछेगा और वे किस प्रकार शिक्षा संस्थाओं के धन और साधन–सुविधाओं, नौकर–चाकरों, मोटरगाड़ी फर्नीचर आदि का व्यक्तिगत लाभ उठा सकेंगे? आज भारतीय विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ पूर्णतया बदनाम हो चुकी है। लेकिन इस ओर से उनके विरूद्ध उठने वाली आवाजों के बावजूद उनमें सुधार व परिवर्तन नहीं आ रहा है।

प्राध्यापकों और प्रकाशकों के गठबंधनों के फलस्वरूप कई पाठ्यक्रमों और पाठ्य पुस्तकों व प्रस्तावित पुस्तकों में कोई परिवर्तन वर्षो तक नहीं लाया जाता। जो लोग निजी शिक्षा संस्थाएँ चलाते हैं वे अपनी मनमानी करते हैं तथा नौकरशाही, विद्यार्थियों के दबे हुए माता–पिताओं तथा स्थानीय राजनीतिज्ञों की सहायता से तथा अपनी जोड–तोड की प्रवृत्ति या तिकडमबाजी के बल पर शिक्षा प्रदान करने तथा अंधाधुंध धनार्जन करने में लगे हुए हैं। भला वे किस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में सुधार होने दे सकते हैं? जब तक शिक्षा व्यवस्था में सुधार नहीं होगा तब तक किस प्रकार शिक्षा समाज में परिवर्तन ला सकती है?

हमारे उच्च प्रशासनिक अधिकारी, नेता तथा परम्परागत संस्थाओं के प्रभावी सदस्य अपने अन्तर्मन में नहीं चाहते कि वास्तव में कोई ऐसा महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन देश में हो– जिसमें उनकी कुर्सी हिल जाय या उनके स्वार्थो की पूर्ति में लेशमात्र भी कमी आ जाय। यही कारण है कि शैक्षिक अवसरों पर समता, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, प्रजातंत्र, सामान्य शाला पद्धति आदि के नारे तो लगाये जाते हैं, लेकिन वास्तव में जो कुछ होता है, वह उनके ठीक विरूद्ध ही है। ये परम्परागत सामाजिक नियंत्रक शिक्षा व्यवस्था को परंपरागत ही बने रहने को बाध्य करते हैं। बार–बार हमारे उच्च राजनैतिक नेता शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की लम्बी–चौड़ी बातें करते हैं। तिस पर भी यदि भारतीय शिक्षा पद्धति के भीतर और न उसके द्वारा समाज में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं लाया जाता तो इसका सबसे बड़ा रहस्य यही है कि हमारे प्रभावी व्यक्ति व समूह वास्तव में ऐसा नहीं चाहते। निष्ठावान्, प्रबुद्ध, शक्तिशाली व स्वतंत्र परिवर्तन अभिकर्ताओं के बिना तथा अनावश्यक हस्तक्षेप न डालने वाले सामाजिक नियंत्रकों के बिना किस प्रकार ऐसे परिवर्तन लाये जा सकते हैं? सभी राजनैतिक दल अपनी–अपनी ढफली पर अपना–अपना राग अलाप रहे हैं। सामाजिक परितर्वन लाने के लिए हमारे देश में भव्य संस्थाओं में बड़ी–बड़ी नौकरशाही की व्यवस्थाओं, योग्यताओं व आराम करने की प्रवृति पर बल दिया जाता है, लेकिन

वास्तव में क्या कार्य होता है और कैसे होता है, इसकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। बड़ी–बड़ी शिक्षण और शोध संस्थाओं को खोला गया है। लेकिन फिर भी, वांछनीय प्रकार का न तो शिक्षा–सुधार ही हुआ और न सामाजिक परिवर्तन। उनमें जैसा सामाजीकरण प्रचलित है, वह व्यक्तियों में गत्यात्मक व सार्वभौमिकता के गुणों का विकास नहीं होने देता तथा परम्परावादी व्यवस्था पर ही अत्यधिक बल देता है। शिक्षा संस्थाओं के वातावरण में ही अनेक प्रकार की सांस्कृतिक, सामाजिक विलम्बनाएँ विद्यमान हैं, जिनके कारण शिक्षा सामाजिक विघटन से ग्रस्त हो रही है तथा सामाजिक परिवर्तन लाने में असमर्थ बनती जा रही है।

निष्कर्ष यही निकलता है कि यद्यपि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन या अभिकर्ता बन सकती है तथापि भारतीय परिस्थितियों में यह अनेक जटिल कारणों के फलस्वरूप ऐसा बनने में सफल नहीं हो पा रही है।

(ग) **सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव के रूप में शिक्षा–**

सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा के परस्पर संबंध को विश्लेषित करने का तीसरा पाठ्यक्रम यह हो सकता है कि शिक्षा को घटित हो चुके सामाजिक परिवर्तन के परिणाम के रूप में देखने का प्रयास किया जाये। भारतीय समाज में यह देखने में आता है कि गांवों में डाकखाने, बैंक, सहकारी बैंक, दुकानें तथा शहरों में बैंक, सुपरमार्केट,आयकर विभाग आदि अनेकानेक औपचारिक व जटिल कार्यालय खुल गये हैं जिनसे अपना काम निकालने के लिए लोगों को कई प्रकार के प्रपत्रों को भरना होता है, कई प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है तथा अन्यायन्य प्रकार की औपचारिकताओं का अनुपालन करना होता है। अशिक्षित व्यक्ति को ऐसा करने में बहुत–सी असुविधाओं का अनुभव होता है। अत: अब उनमें यह भावना उत्पन्न होने लगी है कि हम नहीं पढ़े तो न सही, लेकिन अपने बच्चों को अवश्य ही पढ़ाना है। यही कारण है कि गांवों के निरक्षर किसान और निम्न जातियाँ तक भी अपने बच्चों को पढ़ने के लिए भेजने लगे हैं। कई प्रौढ़ स्वयं भी अब शिक्षा प्राप्त करने में रूचि लेने लगे हैं। इसी प्रकार जिस स्थान पर कोई बड़ा कल–कारखाना स्थापित हो जाता है, वहाँ और उसके आस–पास के लोगों में पढ़ने तथा प्रशिक्षण प्राप्त कर उस कल–कारखाने या संस्था में काम के अवसर पाने की इच्छा जागृत हो जाती है। बड़े–बड़े नगरों के इर्द–गिर्द या छोर के कस्वों और गावों में हम यह देखते हैं कि अशिक्षित परिवारों में भी अपने बच्चों को शिक्षित कराने की इच्छा पनपने लगी है। दिल्ली में टेलीविजन के कार्यक्रमों के आसपास के गांवों के अशिक्षित कृषकों और ग्रामीणों में उपलब्धि संप्राप्ति तथा उनमें शिक्षा प्राप्ति की इच्छा बढ़ने लगी है।

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा के परस्पर संबंध के ये तीनों रूप आपस में संबंधित है, तथापि हमने स्पष्ट विश्लेषण के लिए इन्हें पृथक–पृथक रखकर समझाने का प्रयास किया है। इस प्रकार हमने देखा कि शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के बीच गहन संबंध है। इसीलिए आधुनिक युग में प्रत्येक देश शिक्षा के महत्व को समझ रहा है और इस पर बहुत धन व्यय करता है।

स्वमूल्यांकन प्रश्न–2(Self Evaluation Question)

1. धर्म की समाजशास्त्रीय व्याख्या कीजिए|
2. सामाजिक परिवर्तन की कोई एक परिभाषा दीजिए|
3. शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के बीच सम्बन्धो के तीनों आधार बताइये|

5.6 शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन (Social Change Through Education)

सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित प्रमुख बिन्दुओं को भली भांति समझ लेना चाहिए–

1. सामाजिक परिवर्तन लाने के कई संयंत्र या साधन होते हैं जैसे कानून, पुलिस, मिलिटरी, आर्थिक–व्यवस्था, शिक्षा। शिक्षा उनमें से केवल एक संयंत्र है।"अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता है" केवल शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती है। अत: सभी संयंत्रों को मिलकर कार्य करना चाहिये। ऐसा आज भारत में नहीं हो रहा है।
2. सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण लाने के लिए पहली अनिवार्य शर्त यह है कि देश के सभी बुद्धिजीवी व परिवर्तन लाने वालों को आधुनिकीकरण के हमारे देश के मॉडल का स्पष्ट ज्ञान हो। अब तक तो ऐसा हुआ भी नहीं है। दूसरी शर्त है, उनमें उपयुक्त प्रकार का परिवर्तन लाने की सच्ची भावना, लगन या निष्ठा हो। निष्ठावान् राजनीतिज्ञों, प्रशासकों शिक्षकों व परिवर्तन के अभिकर्ताओं का घोर अभाव है।
3. संयंत्र या साधन के रूप में शिक्षा ही जब स्वयं खोखली, ढोगी, भ्रष्ट, परम्परागत प्रभावों से संचालित तथा संकुचित हो (जैसा कि आज हम उसे पाते हैं) तो वह कैसे भारतीय समाज को परिवर्तित कर सकती है। पहले शिक्षा के क्षेत्र में ही परिवर्तन व सुधार करना होगा, उसके मॉडल को बदलना होगा। नारेबाजी के उसके वर्तमान मॉडल के स्थान पर हमें पावलो फ्रेरे के आत्मा को झकझोरने वाले मॉडल को लाना होगा।
4. शिक्षा में जब तक निम्नांकित तत्वों को अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जायेगा, भारत में उपयुक्त प्रकार का सामाजिक परिवर्तन नहीं आ सकेगा–
    1. **शिक्षा के उद्देश्य** – शिक्षा के उद्देश्यों को भारत के समाज और संस्कृति के भूत,वर्तमान और भविष्य के इच्छित स्वरूप की मांगों के अनुसार बदला व सशक्त किया जाये।
    2. **शिक्षा का मॉडल** – शिक्षा का मॉडल बदला जाये, वर्तमान मॉडल कोरे नारों, आदर्शों की हाई मात्र को प्रोत्साहित करना है। सामाजिक समस्याओं की बिल्कुल सही जानकारी प्रत्येक को मिले, लोगों की आत्मा इस प्रकार की जानकारी से झकझोरी जाय, तथा वे स्वयं अपनी दशा को बदलने व सुधारने के लिए अपनी लड़ाई स्वयं लड़े। गांधीजी व पावलो फ्रेरे के विचार इस संदर्भ में बहुत लाभ दे सकते हैं ।
    3. **शिक्षण पद्धतियाँ** – सामूहिकता की भावना विकसित करने वाली शिक्षण विधियों को अपनाया जाये।
    4. **प्रशासन** – शिक्षण संस्थाओं का प्रशासन प्रजातंत्रीय, विकेन्द्रित तथा प्रबुद्ध हो। तानाशाही, गुटबन्दी, राजनैतिक दखल तथा शोषण की प्रवृतियों को दूर किया जाये।
    5. **शिक्षक का कार्य** – शिक्षक स्वयं को पढ़ाने का काम करने वाला प्रवक्ता ही न समझे, उसे स्वयं को सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्ता समझना होगा। उसे समाज–शिक्षा, समाज सुधार तथा संस्कृति विकास व प्रसार में योग देना होगा।
    6. **पाठ्यक्रम** – पाठशालाओं और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भारतीय समाज की समस्याओं को बहुत अधिक स्थान दिया जाये। पाठ्यक्रम आधुनिक हों, विस्तृत हों,

सार्वभौमिक हों, तथा उनमें उत्कृष्ट सिद्धान्तों व भारतीय जीवन की वास्तविकताओं का सुन्दर मिलन हो। सामाजिक परिवर्तन व सुधार पर विशेष बल दिया जाय।

7. **शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग** - वैज्ञानिक और शैक्षिक के इस युग में हमारी शिक्षण संस्थाओं को बाबा आदम के जमाने की शिक्षण विधियों व उपकरणों से शिक्षा देना शोभा नहीं देता। वे अपार समय व साधनों को नष्ट कर रही हैं। उन्हें शैक्षिक तकनीकी के नये साधनों टेलीफोन, रेडियो, प्रोग्राम लर्निंग आदि का प्रयोग करना चाहिए। शिक्षा जगत के नवाचारों से उन्हें लाभान्वित होना चाहिये।
8. **सीखने के पर्यावरणों का निर्माण** – स्कूल, कॉलेज के शिक्षकों के पढ़ाते रहने मात्र से न तो शिक्षा फैलेगी और न वांछित सामाजिक परिवर्तन आयेगा। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न संस्थाएं आपस में मिलें तथा स्थान–स्थान पर सीखने को प्रेरित करने वाले पर्यावरण या सीखने के जाल बनायें। उनमें पहुँच कर सीखने वाले को स्वत: ही सीखने के लिए प्रेरणा मिले।
9. **जीवन पर्यन्त शिक्षा** – ऐसी शैक्षिक व्यवस्थाएं व सुविधाएं बनाई जायें कि हर आयु के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन की आवश्यकताओं और अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीवन–पर्यन्त शिक्षा मिलती रहे। पाठ्योत्तर पाठ्यक्रम, अंशकालीन शिक्षा संस्थाओं, प्रौढ़ शिक्षा आदि की इस दिशा में बहुत अधिक भूमिका होनी चाहिए।

5.7 सारांश (Summary)

समाज शब्द का प्रयोग मानव समाज के लिए किया जाता है। समाजशास्त्र समाज, समाज के अंगों, व्यवस्था, सरंचना, सामाजिक सम्बन्धों, आदि का सम्पूर्ण अध्ययन करना है। समाज के अंगों में सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाले सभी तत्व आते हैं। इनमें जाति, वर्ग, धर्म, शिक्षा आदि सभी महत्वपूर्ण है। मानव समाज की संरचना, व्यवस्था और सम्बन्धों में होने वाला कोई भी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है। संरचना के सभी तत्व समाज और व्यक्ति को प्रभावित करते हैं और समाज एव परिस्थिति के अनुसार स्वयं भी परिवर्तित होते हैं। इस अध्याय में सम्बन्धित सभी अवधारणाओं को परिभाषित किया गया है एवं विशेषताएं बताई गई हैं, ताकि प्रयुक्त सभी अवधारणाओं को छात्र समझ सकें।

5.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Quations)

1. समाज की संरचना से आप क्या समझते हैं? जाति, धर्म, एवं वर्ग को समझाएं।
   What do you understand by Social Structure?Explain Caste,Religion and Class.
2. शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध को स्पष्ट करें।
   Explain the relationship of Education and Social Change.

5.9 संदर्भ (References)

1. Maxiver and Page,**Society,**Macmillan India,Delhi,1985.
2. Ginsberg Morris,**Sociology**,1944.

3. Fairchild,H.p.,**Dictionary of Sociology,**The Free Press,New York,1951.
4. Parsons,Talcott,The **Social System,**The Free Press,New York,1951.
5. Majumdar,D.N.and Madam,T.N.**An Introduction to Social Anthropology**,Asia Publishing House,Bombay,1957.
6. Ghurye,G.S.**Caste and Class in India,**Popular Book Depot,Bombay,1950.
7. Max Weber,**The Protestant Ethic and Spirit of Famiralistum**,Charles skikmers and sons,New York,1958.
8. Max Weber,**Social and Economic Organisation,**Charles skikmers and Sons,New York,1958.
9. Karl Mars,Communist Manifesto,Ref.in Mishel Duncum's.**A New Dictionary of Sociology**,Rewattege and Kegan Raw,London,1979.
10. Dau's kingsley,**Human Society**,Macmillan,New York,1949.
11. Moore,Willbert,**Social Change**,Prentice Hall,Analysed,1974.
12. Srinivas,M.N.**Caste in Modern India and Other Eassys,**Asia Publishing House,Mumbai,1962.

इकाई 6

विद्यालय का सामाजिक संदर्भ : विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध;

Social Context of School : School and Community Relation;

इकाई की रूपरेखा (Out Line of the Unit)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 विद्यालय का सामाजिक संदर्भ (Social Context of School)

- 6.2.1 सामाजिक संदर्भ (Social Context)
- 6.2.2 विद्यालय का सामाजिक संदर्भ (Social Context of School)

6.3 विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध (School and Community Relation)

- 6.3.1 समुदाय (Community)
- 6.3.2 समुदाय की प्रमुख विशेषताएँ (Characteristics of Community)
- 6.3.3 विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध (School and Community Relation)

6.4 विद्यालय और प्रजातंत्रीय समाज (School and Democratic School)

- 6.4.1 विद्यालय एक प्रजातंत्रीय व्यवस्था (School and Democratic System)
- 6.4.2 प्रजातंत्रीय समाज व्यवस्था (Democratic Social System)
- 6.4.3 विद्यालय और प्रजातंत्रीय समाज (School and Democratic Society)

6.5 सारांश (Summary)

6.6 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

6.7 संदर्भ पुस्तकें (References)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इतना ज्ञान प्राप्त जो जाएगा कि

1. सामाजिक संदर्भ से क्या तात्पर्य है?
2. विद्यालय का सामाजिक संदर्भ क्या होता है?
3. विद्यालय और समुदाय का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है?
4. प्रजातंत्र और प्रजातंत्रीय समाज से क्या अर्थ है?
5. प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था में विद्यालय का क्या स्वरूप होता है?

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा के सामाजिक संदर्भ को जानना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय समाज में शिक्षा संस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। जिस

सामाजिक व्यवस्था में ये संस्थाएँ हैं उनको समझे बिना शिक्षा को समझा भी नहीं जा सकता। जाति, धर्म, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि सभी शिक्षा को प्रभावित करते हैं और शिक्षा से प्रभावित होते हैं। शिक्षा के शाब्दिक अर्थ में दो बातें नीहित हैं: प्रथम, यह सीखने–सीखाने की प्रक्रिया है, और दूसरा इस प्रक्रिया से मनुष्य व समाज का परिवर्तन के साथ निरन्तर विकास होता है।

एडम्स ने शिक्षा को द्विमुखी कहा है। जिसके एक मुख पर शिक्षक है तो दूसरे पर विद्यार्थी। यह दो ध्रुवीय भी है। इसमें एक व्यक्तित्व (शिक्षक) दूसरे व्यक्तित्व (विद्यार्थी) को प्रभावित करता है, यह प्रक्रिया सचेतन ही नहीं अपितु उद्देश्य पर आधारित होती है। शिक्षा समाज की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर संगठित की जाती है। परिणामस्वरूप एडम्स की द्विमुखी अवधारणा के साथ तीसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष समाज है। शिक्षा का सारा सामाजिक संदर्भ इसी पर केन्द्रित है। यही कारण है कि शिक्षा को समाजशास्त्री सामाजिक संस्था कहते है। विशेषकर इसलिए क्योंकि बालक की शिक्षा सामाजिक वातावरण में होती है। पाठ्यक्रम का निर्धारण समाज व सामाजिक परिस्थितियां करती हैं और इसमें प्रौद्योगिकी एव विज्ञान के विकसित स्वरूप का प्रभाव स्थान व कालखण्ड के अनुसार देखा जा सकता है। यह अध्याय विद्यालय, समुदाय और प्रजातंत्रीय सामाजिक व्यवस्था के बीच अन्तःक्रिया एवं सम्बन्धों पर आधारित है।

6.2 विद्यालय का सामाजिक संदर्भ (Social Context of School)

6.2.1 सामाजिक संदर्भ (Social Context)

जब सामाजिक संदर्भ की बात करते हैं तो हम व्यक्ति और सामाजिक समूहों को समाज के केन्द्र में रखकर देखते हैं। व्यक्ति समूह (परिवार, नातेदार, जाति, वर्ग, अन्य समितियां व संगठन जिसका व्यक्ति सदस्य होता है) का और समूह समाज का अविभाज्य अंग होता है। विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाएं, संस्थाएं और नियत्रंण की व्यवस्थाएं समाज के वातावरण में होती हैं और व्यक्ति व समूह उसमें सम्पूर्ण जीवन यापन करते हैं। व्यक्ति, समूह व समाज की आकांक्षाएं, अपेक्षाएं, मूल्य एवं मानक समय में परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। स्वाभाविक है कि समय व परिस्थितियां सामाजिक संदर्भों को परिवर्तित करती हैं। ऐसे में शिक्षा एवं विद्यालयों का स्वरूप एवं भूमिकाएं भी बदल जाती हैं। अत: सामाजिक संदर्भ वे परिस्थितियां है जिनमें विद्यालय (विद्यार्थी, शिक्षक एवं राज्य) अपनी भूमिकाएं निभाते हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं के परिवर्तित होने से सामाजिक संदर्भ भी बदल जाते हैं।

6.2.2 विद्यालय का सामाजिक संदर्भ (Social Context of School)

सामाजिक संदर्भ जानने के लिए सामाजिक व्यवस्था को जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। सामाजिक व्यवस्था वे परिस्थितियां हैं जिनमें विद्यालयों का संचालन, अध्ययन–अध्यापन एवं समाज के मूल्यों को सीखाया जाता है। यानि विद्यालय अपने शिक्षकों के माध्यम से विद्यार्थियों को क्या सीखा रहे हैं, महत्वपूर्ण है। सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव विद्यालयों पर अनिवार्यत: पड़ता है। ऐतिहासिक संदर्भ में भारतीय समाज व्यवस्था में विद्यालय की स्थिति और परिवर्तन देखना महत्त्वपूर्ण होंगा :

1. प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था और विद्यालय प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था वर्णाश्रम पर आधारित थी। प्रकार्यात्मक दृष्टि से भारतीय समाज चार वर्गों में विभाजित था। ये चार वर्ग चार वर्णों के नाम से जाने गए। इन चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र) के कार्यों का विभाजन गुणों तथा कार्यो के अनुसार किया गया। उसी के अनुरूप सामाजिक एवं शिक्षा व्यवस्था विद्यमान थी।

दूसरी ओर आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव जीवन को आयु के आधार पर चार अवस्थाओं में बांटा गया। ये हैं: 1. ब्रह्यचर्य, 2. गृहस्थ 3. वानप्रस्थ और 4. सन्यास आश्रम। इन चार आश्रमों में से प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम शिक्षा ग्रहण करने एवं समाज को समझने की अवस्था थी। जीवन के प्रथम पच्चीस वर्ष प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था में शिक्षा अर्जन हेतु रखे गए थे। सम्पूर्ण जीवन का आधार प्रथम आश्रम ही था। इस आश्रम का उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, आदि यानि सर्वांगीण विकास कर उसे सांसारिक जीवन (गृहस्थाश्रम) में प्रवेश के लिए तैयार करना था। इस तैयारी का स्थल विद्यालय था। इस प्रकार वैदिक भारतीय समाज में परम्परागत विद्यालय (गुरूकुल) व्यवस्था का महत्त्व अत्यधिक था।

2. वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्था और विद्यालय. परिवर्तन के क्रम में गुणों एवं कार्यो का स्थान और सामाजिक स्तरीकरण में वर्ण का स्थान जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था ने लिया तो परम्परागत विद्यालयों का महत्त्व कम होता चला गया और परिवार व जाति में परम्परागत व्यवसाय महत्त्वपूर्ण होने लगे। फलस्वरूप शिक्षा के केन्द्र विद्यालय से हटकर परिवार' बनने लगे। अनुभव पर आधारित संयुक्त परिवार परम्परागत व्यवसाय की शिक्षा और प्रशिक्षण के केन्द्र बनते चले गए। ज्ञान अर्जन हेतु विद्यालयों का पहले वाला स्वरूप और उसकी महत्त्वता उच्च वर्ग तक सीमित रह गई और भारत में विश्वस्तरीय विद्या के केन्द्र धीरे–धीरे अपनी प्रतिष्ठा खोने लगे।

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेज शासकों ने पश्चिमी संस्कृति पर आधारित औपचारिक शिक्षा के विद्यालयों की व्यवस्था प्रारम्भ की। समय एवं परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुरूप नये विद्यालयों का सामाजिक उद्देश्य तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों पर आधारित था। स्वतंत्रता के पश्चात् समानता, भ्रातृत्व, न्याय, स्वतंत्रता, आदि पर आधारित लोकतांत्रिक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना ने विद्यालयों के स्वरूपों को धीरे–धीरे बदलना प्रारम्भ किया। शिक्षा समाज के सभी वर्गो एवं जाति के सदस्यों के लिए खोल दी गई। भारतीय प्रजातांत्रिक समाज व्यवस्था वर्ण, जाति, धर्म एवं लिंग प्रधानता पर आधारित समाज व्यवस्था के पक्ष में नहीं है। सभी व्यक्ति समान हैं, उनमें विभेद नहीं किया जाना चाहिए। हांलाकि भारतीय सामाजिक व्यवस्था संक्रमण काल से गुजर रही है अत: विद्यालयों द्वारा शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिन प्रतिदिन महत्चपूर्ण होते जा रहे हैं। परिवर्तन की आधुनिकतम प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व में विद्यालयों के योगदान की महत्त्वता को स्वीकार किया जा चुका है। अब तो वैश्विक शिक्षा व्यवस्था की बात की जा रही है। अत: निकट भविष्य में ही शिक्षा व्यवस्था में पुन: नए समाज के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था को विकसित करना होगा।

6.3 विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध (School and Community Relationship)

विद्यालय तथा समुदाय दोनों ही शिक्षा के अभिकरण हैं। विद्यालय औपचारिक अभिकरण हैं तो समुदाय अनौपचारिक। बालक सर्वप्रथम माता फिर पिता उसके बाद परिवार के अन्य सदस्यों के सम्पर्क में आता है। इसके बाद जब वह घर की चार दीवारी लांघता है तो पास–पड़ोस एवं समुदाय के सम्पर्क में आता है और सम्पर्क की व्यापकता के क्रम में वह विद्यालय तथा अन्य संगठनों से सम्पर्कित हो, विकास के पथ पर आगे बढ़ता जाता है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में विशेषत: सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अनुसंधानों से यह संकेत मिलता है कि जन्म के बाद बालक जो भी कुछ इस संसार में सीखता है, उसका अधिकांश भाग वह अपने सामुदायिक सम्पर्क के कारण सीखता है।अत: बालक की शिक्षा में समुदाय की अहम् भूमिका है।

6.3.1 समुदाय (Community)

समुदाय शब्द का अनेक अर्थों में जाति, धर्म, वर्ग, व्यवसाय, स्थान आदि गलत रूप से प्रयोग किया जाता है। यथा बाह्मण समुदाय, मुस्लिम समुदाय, ईसाई समुदाय, धनिक समुदाय, शिक्षक समुदाय, नगरीय समुदाय, आदि का प्रयोग समाजशास्त्रीय दृष्टि से सही नहीं है। कुछ लोग मौखिक एवं लिखित दोनों ही रूपों में समुदाय को समाज का पर्यायवाची रूप में प्रयोग कर देते हैं जो कि सही नहीं है। वस्तुत: समाज एक अमूर्त प्रत्यय है। सामाजिक सम्बन्धों के जाल को समाज के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जबकि समुदाय इसका मूर्त रूप है। पारसंस के अनुसार 'समाज उन मानव–सम्बन्धों के समग्र मिश्रण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो मूलभूत अथवा सांकेतिक साधन एवं साध्य के रूप में की गई क्रियाओं से उत्पन्न हुये हों।

समुदाय क्या है? – समुदाय की परिभाषा अनेक समाजशास्त्रियों ने दी है। ब्रोनेल ने अपनी पुस्तक 'कॉलेज एण्ड कम्युनिटी' में समुदाय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "यह प्रत्यक्ष प्राथमिक समूह है जिसमें जीवन के प्रमुख क्रिया–कलाप समूह के अन्दर ही सहयोग के साथ किये जाते हैं। यह एक छोटा समूह है जहाँ लोग एक–दूसरे को सम्पूर्ण व्यक्ति के रूप में जानते हैं न कि विशिष्ट अंग के रूप में तथा जिसमें अपनत्व की भावना विद्यमान होती है। जिन्सबर्ग के अनुसार एक निश्चित भूभाग में रहने वाली उस समस्त जनसंख्या को समुदाय कहा जा सकता है जो उनके जीवन को नियन्त्रित करने वाले नियमों की सामान्य व्यवस्था में बंधी होती हैं।

वस्तुत: समुदाय एक मूर्त सामाजिक संगठन है जो कि निश्चित भूभाग में स्थित व्यक्तियों का एक समूह है,जिनकी सामान्य जीवन–शैली, भाषा, समान उद्देश्य एवं व्यवसाय होते हैं। सभी लोग सामुदायिक–कल्याण की भावना से प्रेरित होते हैं।

1. व्यक्तियों का समूह. किसी भी समुदाय के लिए व्यक्तियों का समूह प्रथम आवश्यकता हैं|

2. निश्चित भौगोलिक क्षेत्र : प्रत्येक समुदाय के लिए एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र का होना भी आवश्यक है। एक क्षेत्र विशेष में साथ–साथ रहने और जीवन की सामान्य गतिविधियों में भाग लेने से अपनत्व की भावना पनपती है।

3. सामुदायिक भावना : समुदाय के निर्माण के लिए व्यक्तियों के समूह और निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के अलावा सामुदायिक भावना का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसमें तीन बातों का होना जरूरी है।

(अ) हम की भावना की अभिव्यक्ति,

(ब) दायित्व निर्वाह की भावना, और

(स) निर्भरता की भावना

6.3.2 समुदाय की प्रमुख विशेषताएँ (Major Characteristics of Community)

1. स्वत: विकास : समुदाय का निर्माण लोगों के द्वारा जान–बूझ कर या नियोजित प्रयत्नों से सम्भव नहीं है। इसका विकास स्वत: होता है। जब कुछ लोग स्थान विशेष में रहने लगते हैं तो धीर–धीरे उनमें 'हम की भावना' विकसित होने लगती है और सभी सदस्यों को अपना समझने लगते हैं। यह भावना समुदाय का विकास करती है।

2. अनिवार्य सदस्यता : क्षेत्र विशेष में रहने वाला व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के अन्य व्यक्तियों से अन्तःक्रिया करता है। एक क्षेत्र विशेष में लम्बे समय तक लोगों के साथ रहने से अपने समुदाय के प्रति अपनत्व का भाव पैदा होने लगता है।

3. स्थायीपन : प्रत्येक समुदाय एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में स्थायी रूप में रहता है। हाँ, भूकम्प, तूफान, ज्वालामुखी, बाढ़ या अकाल के कारण नष्ट होना अलग बात है अन्यथा क्षेत्र के नाम से ही वहां के समुदाय के अस्तित्व को स्वीकारा जाता है।

4. मूर्तता : समुदाय एक मूर्त समूह है। निश्चित भू–भाग पर बसे मनुष्य के समूह के रूप में इस समुदाय की बात करते हैं। समुदाय से सम्बन्धित नियमों को तो नहीं देखा जा सकता लेकिन मनुष्यों के रूप में इसे अनुभव अवश्य किया जा सकता है।

5. विशिष्ट नाम : प्रत्येक समुदाय का अपना विशिष्ट नाम अवश्य होता है। इसके नाम के साथ विशिष्ट इतिहास जुड़ा होता है जो उसे एक व्यक्तित्व प्रदान करता है।

6. व्यापक उद्देश्य : समुदाय का विकास कुछ विशिष्ट उद्देश्यों तक ही सीमित नहीं होता। यह सभी व्यक्तियों एवं समूहों के सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्य करता है।

7. सामान्य जीवन : प्रत्येक समुदाय के अपने सामान्य, रीति–रिवाज, परम्पराएं, विश्वास, उत्सव, त्यौहार तथा संस्कार आदि होते हैं जो समुदाय के सदस्यों के जीवन में एकरूपता उत्पन्न करने में योग देते हैं। व्यक्ति इसी में अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। इस प्रकार समुदाय में सदस्यों का सम्पूर्ण जीवन सामान्य रूप से व्यतीत होता है।

8. सामान्य नियम–व्यवस्था सदस्यों के व्यवहारों को निर्देशित एवं नियंत्रित करने के लिए नियमों की व्यवस्था है। इन्हीं के कारण समुदाय विशेष के लोगों के व्यवहारों में बहुत कुछ समानताएं देखी जा सकती हैं।

9. आत्मनिर्भरता : समुदाय को आत्मनिर्भर समूह माना जाता है। व्यक्तियों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की सम्पूर्ण समुदाय में ही हो जाती है। यह विशेषता आदिम जनजातीय एवं ग्रामीण समुदायों में पायी जाती है। वर्तमान में यह विशेषता तेजी से समाप्त होती जा रही है।

कुछ लोग समान व्यवसाय, समान धर्म, आत्म–निर्भरता को भी समुदाय के आवश्यक लक्षणों में मानते हैं किन्तु आज की परिस्थितियों में सभी देशों में स्थित समुदायों में लक्षण नहीं पाये जाते हैं। अतः इन्हें आवश्यक लक्षणों में नहीं रखा जा रहा है। समुदाय के स्वरूप की उपर्युक्त विवेचना के बाद यह देखना है कि इस समुदाय की शैक्षिक–भूमिका क्या है अर्थात समुदाय का शिक्षा–क्षेत्र में योगदान क्या है?

6.3.3 विद्यालय और समुदाय सम्बन्ध (School and Community Relationship)

ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन का समुदाय कहा है। किग्सले डेविस इसे ऐसा छोटा क्षेत्रीय समूह मानते हैं जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं। न केवल इन दो विद्वानों के अनुसार बल्कि व्यापक मान्यता के अनुसार समुदाय के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के समस्त पहलू सम्मिलित होते हैं। शिक्षा भी समुदाय के कार्यक्षेत्र में आती है।

शिक्षा तथा समुदाय – शिक्षा मानवीय कुशलता में वृद्धि करती है। साथ ही उत्पादन में वृद्धि करते हुये भौतिक संसाधनों का विकास करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक ओर तो शिक्षा मानवीय संसाधनों की उन्नति करती है तो दूसरी ओर भौतिक संसाधनों का विकास करती है। लेकिन दूसरी ओर समुदाय के सहयोग के बिना शिक्षा अपनी भूमिका ठीक से नहीं निभा सकती। चाहे औपचारिक शिक्षा हो या अनौपचारिक।

सुमदाय की शैक्षिक भूमिका – समुदाय की शैक्षिक भूमिकाओं के अनेक रूप हैं :

1. समाजीकरण की भूमिका – समुदाय प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अगली पीढ़ी का समाजीकरण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बालक के सामाजीकरण की प्रक्रिया में दो तत्व क्रियान्वित होते हैं। प्रथम, समन्वय तथा दूसरा विभेदीकरण। समन्वय एवं तादात्मय का काम माता करती है और वह भी एक निश्चित अवस्था तक। इसके बाद परिवार में विभेदीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है। इन दोनों क्रियाओं से ही समाजीकरण पूरा नहीं होता। सही सामाजीकरण तो समुदाय में आकर होता है जहाँ परस्पर अन्तःक्रिया द्वारा वह सामाजिक–जीवन के तत्वों को आत्मसाप करता चला जाता है। वस्तुतः वह जिन आदर्शो और मूल्यों को अपनाता है उन्हें वह अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप ही सीखता है।

2. सांस्कृतिक भूमिका : समुदाय बालक की वेशभूषा, रहन–सहन, भाषा, आदि के विकास में प्रत्यक्षतः योगदान करता है। इन बाहरी बातों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान बालक की अभिवृतियों, रूचियों, आकांक्षाओं को दिशा देना है। जीवन–लक्ष्य निर्धारित करना है। इसी से उसका सामाजिक व्यवहार निर्धारित होता है, सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप तय होता है। इस प्रकार बालक के असली और आधारभूत शैक्षिक विकास में समुदाय का योगदान रहता है।

3. औपचारिक शिक्षा में समुदाय की भूमिका अनौपचारिक शिक्षा–क्षेत्र में सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका के अतिरिक्त औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में भी समुदाय का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष योगदान रहता है। औपचारिक शिक्षा–क्षेत्र में समुदाय का प्रत्यक्ष योगदान तो उन समुदायों में रहता है, जहाँ विद्यालय का स्वरूप सामुदायिक है। अप्रत्यक्ष योगदान की दृष्टि से समुदाय शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, विद्यालयी वातावरण, अध्यापक–छात्र सम्बन्ध, छात्र–अनुशासन, आदि को प्रभावित करता है।

उदाहरण के लिये, अंग्रेजी शासन की स्थापना से पूर्व भारतीय विद्यालय समुदाय की आवश्यकताओं एवं दृष्टिकोण के अनुरूप थे। परिणामत: औपचारिक शिक्षा के माध्यम विद्यालय की समस्त वित्तीय व्यवस्थायें समुदाय करता था। शिक्षक समुदाय का सर्वाधिक आदरणीय व्यक्ति था। विद्यालय पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त सामुदायिक क्रिया–कलापों का केन्द्र था। विद्यालय समुदाय के सांस्कृतिक नैतिक एवं अन्य प्रकार के विकास के लिये प्रयास करता था। अंग्रेजी शासन–काल में विद्यालय के सामुदायीकरण के स्थान पर सरकारीकरण हुआ। शिक्षा सरकार की आवश्यकताओं एवं दृष्टिकोण की पूर्ति का साधन तो बन गई, किन्तु वह समुदाय से बिल्कुल अलग–थलग पड़ गई। विद्यालय समुदाय से कट गये।

इस प्रकार शिक्षा के अनौपचारिक एवं औपचारिक दोनों रूपों में समुदाय की महती भूमिका है। कुछ विद्वानों ने बालक के विभिन्न पक्षीय विकास में समुदाय की भूमिका को आँकते हुए शिक्षा के क्षेत्र में उसके महत्त्वपूर्ण योगदान का उल्लेख किया है। आशिक रूप में यह तथ्य पूर्ण भी है कि शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण के रूप में समुदाय बालक के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. सामाजिक संदर्भ से आप क्या समझते हैं?
2. समुदाय से क्या अर्थ हैं?
3. समुदाय की शैक्षणिक भूमिका के तीन बिन्दु दीजिए|

6.4 विद्यालय और प्रजातंत्रीय समाज (School and Democratic Society)

विश्व के अन्य कई समाजों में विशेषत: अमेरिका जैसे उन्नत समाजों में अब औपचारिक शिक्षा के विद्यालयों को ज्ञान एवं सूचना–प्रसारण की दृष्टि से अनावश्यक समझा जा रहा है क्योंकि वहाँ विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की उन्नति के कारण जनसंचार के साधनों द्वारा अद्यतन तथ्य, सूचनायें आदि मिल जाती हैं तथा समुदाय में ही विभिन्न प्रकार के कौशलों के प्रशिक्षण का अवसर मिल जाता है। अत: वही तो 'डीस्कूलिंग सोसायटी' के नाम से एक आन्दोलन चला है। सारांश यह है कि इस प्रकार के उन्नत समाजों में तो विद्यालय की उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है किन्तु भारतीय समाज में स्थिति इसके ठीक विपरीत है। इसका कारण यह है कि भारतीय समाज एक निर्धन समाज है, यहाँ के अधिसंख्य लोग निरक्षर है। अत: शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण परिवार एवं समुदाय आदि वर्तमान में अपने शैक्षिक दायित्व के निर्वाह में सक्षम नहीं हैं। इससे भी ऊपर भारत एक परम्परागत एवं बन्द समाज से आधुनिक एवं खुले समाज में अपने को रूपांतरित करने का प्रयास कर रहा है। 'ऐसी स्थिति में परिवार आदि अन्य शैक्षिक अभिकरण इस संक्रमण काल में अपनी भूमिकाये निभाने में अक्षम हैं, सारे समाज की आँखे विद्यालय की ओर लगी हुई है। वस्तुत: भारत की वर्तमान परिस्थितियों में विद्यालय ही एकमात्र सशक्त साधन हो सकते हैं जो लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज के प्रतिमानों के अनुसार बालकों एवं किशोरों का

समाजीकरण कर सकें। अत: भारतीय समाज–व्यवस्था में विद्यालय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

6.4.1 प्रजातंत्रीय समाज व्यवस्था (Democratic Social System)

प्रजातंत्रीय समाज–व्यवस्था का अर्थ 'जनता की शक्ति' होती है अर्थात् वह शासन जहाँ असली शक्ति जनता के हाथों में निहित होती है। वर्तमान भारतीय समाज व्यवस्था का केन्द्र भारतीय जनता की समृद्धि में केन्द्रित है। इसकी विशेषताओं में निम्न बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं :

1. व्यक्ति की गरिमा का आदर – व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा का आदर प्रधान लक्ष्य होता है। जिसके अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अन्तिम लक्ष्य होता है।

2. व्यक्तियों में समानता – संविधान के अन्तर्गत मूल अधिकारों के अन्तर्गत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में सभी व्यक्ति बिना किसी वर्ग, जाति, लिंग, वंश, धर्म, स्थान आदि के भेद के समान हैं और उन्हें समान अधिकार प्रदान किये गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 में समानता के अधिकारों की व्यवस्था की गई है।

3. व्यक्ति स्वातंत्र्य : प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रतायें प्रदान की जाती हैं| लेकिन ये स्वतंत्रतायें दूसरों की स्वतंत्रता को ध्यान में रखकर उपयोग की जानी चाहिए।

4. सामाजिक न्याय पर आधारित भारतीय समाज व्यवस्था सामाजिक न्याय पर आधारित समाज–व्यवस्था वह समाज–व्यवस्था होती है जहां वर्ण, जाति, वंश, लिंग, स्थान आदि का भेद नहीं होता। वर्तमान भारतीय समाज–व्यवस्था में उपुर्यक्त भेदों से रहित समाज व्यवस्था है। इसका उल्लेख व्यक्तियों में 'समानता के सिद्धान्त' के अन्तर्गत किया जा चुका है जिससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय समाज सामाजिक न्याय पर आधारित समाज है। परम्परागत समाज के दलित, कमजोर एवं पिछड़े वर्गों को सामाजिक न्याय दिलाये जाने की संवैधानिक व्यवस्था की गई है। साथ ही इन्हें सामाजिक न्याय एवं हितों का रक्षण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

वर्तमान भारतीय समाज की दूसरी विशेषता 'सामाजिक न्याय' की भावना है। प्राचीन भारतीय समाज में वर्ग–भेद होने के कारण समाज में असमानता आ गई थी। ऊँच–नीच की भावना फैल गई थी। समाज में एक वर्ग दलित एवं शोषित वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित हो गया था। उन्हें सामाजिक न्याय मिलना असम्भव हो गया था। समाज का उच्च वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त था। अन्य वर्ग उपेक्षित रह गये। इस दृष्टि से 'सामाजिक न्याय' की व्यवस्था की गई।

5. धर्म–निरपेक्ष समाज धर्म–निरपेक्षता का शाब्दिक अर्थ तो धर्म से निरपेक्ष रहने से है। अत: धर्म–निरपेक्ष समाज में धर्म का कोई स्थान नहीं होता जैसा कि साम्यवादी समाजों में उल्लेख है। किन्तु भारत जैसे धर्म–प्राण देश में यह अर्थ नहीं लिया जा सकता। स्पष्टत: भारतीय समाज में इसका जो अर्थ ग्रहण किया गया है, वह है – सर्व धर्म सदभाव, अर्थात् राज्य की दृष्टि से सभी धर्म समान होंगे, किसी भी धर्म विशेष को राज्य प्रश्रय नहीं देगा। परम्परा से भारतीय समाज एक बहुधर्मी समाज है। संवैधानिक आधार पर सभी धर्मों के लोग समानता से रहते हुए अपनी–अपनी आस्था के अनुसार उपासना कर सकें। इसकी व्यवस्था की गई है। यह एक बहुत संवेदनशील विषय था और इस प्रकार की व्यवस्था से राजनैतिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र के विकास में बहुत व्यवधान उपस्थित हो सकता था, इसलिये एक धर्मनिरपेक्ष समाज की व्यवस्था का निश्चय किया गया और उसकी क्रियान्विति पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

6.4.2 विद्यालय एक प्रजातंत्रीय व्यवस्था (School as a Democratic System)

विद्यालय एक संरचित सामाजिक समूह के रूप में कार्य करता है। विद्वान विद्यालय को एक प्रकार का समाज ही कहते हैं जिसकी अपनी सामाजिक व्यवस्था है। कुछ ने इसे समुदाय की संज्ञा देना उपयुक्त समझा है क्योंकि इसके सदस्यों के उद्देश्य समान होते हैं। स्पेंस रिपोर्ट के अनुसार आज के प्रतिनिधि विद्यालय को केवल विद्यार्जन का स्थान नहीं माना जा सकता। वह एक सामाजिक इकाई अथवा एक विशिष्ट प्रकार का समाज है जिसके सभी छोटे–बड़े सदस्य, अध्यापक, छात्र साथ–साथ रहते हैं। वे ऐसे संविधान के अधीन कार्य करते हैं, जिसके लिये कई प्रकार से सबकी सहमति और सबका सहयोग रहता है । विद्यालय स्वयं में एक लोकतांत्रिक उपसामाजिक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है। अत: विद्यालय के सदस्यों (शिक्षक, कार्यकर्त्ता एवं विद्यार्थी) का व्यवहार भी लोकतांत्रिक होगा। यह परिस्थिति लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था के निर्माण में सहायक होती है।

यदि हम लोकतांत्रित समाज व्यवस्था के लिये व्यावहारिक नागरिकता की शिक्षा देना चाहते हैं तो उसके लिये विद्यालय एक उपयुक्त स्थल है। जिस प्रकार के समाज में छात्र आगे चलकर रहेंगे, उसके अनुकूल विद्यालय सक्रिय सदस्य तैयार कर सकता है। विद्यालय को यह सब क्रमिक रूप में करना चाहिये। विद्यालय में राजनीतिक लोकतन्त्र के नमूने की तर्ज पर पूर्ण स्वायत्तता व्यावहारिक नहीं होगी।

अधिकतर समाजशास्त्रियों ने विद्यालय को एक औपचारिक सामाजिक संस्था माना है। इन्होंने इसे अधिकारी तंत्र का ही एक रूप माना है। अधिकारी तन्त्र में विभिन्न अधिकारों एवं कर्तव्यों के बंधे हुए कई पद या स्थान होते हैं जिनमें ऊँच–नीच का एक सामाजिक संस्तरण या विभेदीकरण होता है। गुल्डनर के अनुसार अधिकारी तन्त्र दो प्रकार का हो सकता है –

1. प्रतिनिधि अधिकारी तन्त्र,
2. दण्ड केन्द्रित अधिकारी तन्त्र,

लोकतांत्रिक सामाजिक संगठन में प्रतिनिधि अधिकारी तन्त्र ही उपयुक्त रहता है। अत: भारतीय विद्यालयों के लिये इस प्रकार का तन्त्र ही उपयुक्त होगा। इसमें अध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच कार्य एवं अधिकार विभाजन किया जा सकता है।

अध्यापक की भूमिकाएँ : विद्यालय में सामान्यत: शैक्षिक नीति का निर्धारण का कार्य अध्यापक एवं प्रधानाध्यापक मिलकर करते हैं। कुछ नियमों के निर्धारण में छात्रों के साथ विचार–विनिमय भी करते हैं। पाठ्यक्रम तथा शिक्षण–विधियाँ इनका ही अधिकार क्षेत्र होगा। यथा आवश्यकता विद्यार्थियों से विचार–विनिमय तथा परामर्श करते हैं और यह उपयोगी होगा।

विद्यार्थियों की भूमिकाएँ : नियमों एवं विद्यालय–संगठन के क्षेत्र में विद्यार्थियों का परामर्श आवश्यक है। यह विद्यार्थी–प्रतिनिधि समूह के माध्यम से किया जा सकता है। विद्यालय परिषद् इसका उपयुक्त माध्यम है।

विद्यालय परिषद – इनमें सभी कक्षाओं का प्रतिनिधित्व होता है। प्रतिनिधि विद्यार्थियों का चयन कक्षाओं के सभी विद्यार्थी मिलकर करते हैं। विद्यालय परिषद में अध्यापक वर्ग के प्रतिनिधि भी प्रधानाध्यापक या प्राचार्य द्वारा नियुक्त होते हैं। परिषद का अधिकार क्षेत्र निर्धारित होता है। विद्यालय परिषद निर्मित संविधान की सीमा में रहकर कार्य करती है। इस परिषद की

गतिविधियों से विद्यार्थी विचार–विनियम, विमर्श, सहिष्णुता, सहयोग, आदि लोकतांत्रिक वृत्तियों को सीखते हैं। आत्मानुशासन का विकास भी होता है। इस परिषद् के अन्तर्गत विभिन्न कार्यो के लिए विद्यार्थियों की समितियां बनाई जाती हैं और वे सम्बन्धित गतिविधियों का संचालन अध्यापकों के निर्देशन में करते हैं। पुस्तकालय, खेलकूद, सांस्कृतिक गतिविधि आदि से सम्बन्धित समितियां बनाई जाती हैं। इनका संचालन विद्यार्थी अध्यापकों की देख–रेख में करते हैं। इसप्रकार विद्यार्थी विद्यालयों में लोकतांत्रिक समाज व्यवस्था का अभ्यसात करते हैं।

सम्मिलित उत्तरदायित्व की भावना का विकास – लोकतांत्रिक आधार पर संगठित विद्यालय का एक लाभ यह भी है कि इसमें सभी सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। समूह में किसी निश्चित भूमिका के अदा करने से बालक में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। वह यह महसूस करता है कि समूह में उसका महत्त्व है। वह समूह उसका है, समूह का हित उसका हित है। इसके अलावा छोटे – छोटे कार्यों को पूरा कर वह बड़े एवं कठिन कार्यों का निर्वाह करना सीखता है। प्रारम्भ में छात्रों को कक्षा सजाना, चित्रों का स्थान बदलना, नाश्ता–वितरण, कक्षा–सफाई, देख–रेख जैसे कार्य सौपें जाते हैं। धीरे – धीरे वह गोष्ठियों, खेलकूद, मनोरंजन–कार्यक्रम आदि के संचालन और संयोजन तक के काम करने लगता है।

विद्यालयी सम्बन्धों के आधार लोकतान्त्रिक मूल्य होंगे तो विद्यालय का सामाजिक वातावरण भी लोकतान्त्रिक होगा। अत: अध्यापक–विद्यार्थी, प्रधानाध्यापक–अध्यापक तथा अन्य विद्यालयी सदस्यों के सम्बन्ध स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, न्याय आदि के लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित होने लगते हैं। यदि विद्यालय का कार्य सामाजिक जीवन की तैयारी है तो विद्यालय में मानवीय सम्बन्धों का महत्त्व बढ़ जाता है।

सारांश यह है कि भारत की प्राचीन समाज–व्यवस्था में विद्यालय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और आज भी वर्तमान समाज–व्यवस्था में उसको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिये बिना, वर्तमान समाज–व्यवस्था का चलना मुश्किल होगा क्योंकि वर्तमान समाज के जिस स्वरूप की संकल्पना हमने की है, उसके लिये नागरिक तैयार करने का कार्य वर्तमान परिस्थितियों में विद्यालय ही करता है। अत: नवीन भारतीय समाज–व्यवस्था में विद्यालय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

6.4.3 विद्यालय और प्रजातंत्रीय समाज (School and Democratic Society)

जब लोकतान्त्रिक समाज–व्यवस्था हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है तो शिक्षा का उद्देश्य भी इस व्यवस्था की पुष्टि एवं विकास होगा और इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार होंगे–

1. लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास – प्रत्येक समाज किन्हीं–न–किन्ही मूल्यों के अनुसार आचरण करता है। मूल्यों की आधारशिला हट जाने पर सामाजिक भवन धराशायी हो जाता है। अत: लोकतन्त्र के विकास के लिये शिक्षा का दायित्व होगा कि वह बालकों एवं व्यक्तियों में लोकतान्त्रिक मूल्यों का विकास करें और इन मूल्यों का प्रशिक्षण दे। ये मूल्य हैं : व्यक्ति की वैयक्तिकता या व्यक्तित्व की गरिमा का आदर; त्याग; नेतृत्व; आत्म–नियन्त्रण; सहनशीलता; पारस्परिक सदभाव; व्यक्तिगत एवं सामाजिक उन्नति में समन्वय।

2. लोकतन्त्र के जीवन–शैली के रूप में अपनाना – लोकतन्त्र को केवल शासन–प्रणाली के रूप में न अपनाकर जीवन जीने की शैली के रूप में अपनाने का प्रयास शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये। भारतीय सन्दर्भ में यह इसलिए आत्यावश्यक है क्योंकि यहां धर्म एवं भाषाएँ भिन्न–भिन्न हैं। यहाँ विभिन्न प्रजातियों, जातियों एवं वर्गों के लोग निवास करते हैं। ऐसी स्थिति में ही लोकतन्त्र का सही परीक्षण होता है। लोकतन्त्र को जीवन–शैली के रूप में अपनाने पर ही उपर्युक्त विविधता में एकता लायी जा सकेगी। यह बहुत कठिन काम है किन्तु यदि शिक्षा इस स्थिति का सामना न कर सकी तो वह शिक्षा लोकतन्त्र के लिये कोई अर्थ नहीं रखेगी।

3. सामाजिक न्याय एवं भारतीय शिक्षा के उद्देश्य सामाजिक न्याय का आधार आर्थिक है। यदि सभी नागरिकों को आर्थिक विकास के अवसर मिलें तो ही सभी को समुचित सामाजिक न्याय मिल सकता है।

1. आर्थिक उद्देश्य : भारतीय शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास करना है। इसके लिए आवश्यक हैं कि हम मानवीय संसाधनों का विकास करें; भौतिक संसाधनों का विकास करें; श्रम के प्रति निष्ठा पैदा करें; और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करें।

2. सामाजिक न्याय की भावना के विकास का उद्देश्य – भारतीय समाज में अनेक वर्ग, अनेक स्तर, अनेक सोपान बन गये हैं जिससे समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा सामाजिक न्याय से वंचित रह जाता है। नीचे से ऊपर सामाजिक गतिशीलता की कमी है। विभिन्न वर्गों के बीच काफी अन्तर है। इस दृष्टि से आवश्यक है कि –

(i) सामाजिक न्याय की भावना की दृष्टि से वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में समान शैक्षिक अवसरों की व्याख्या करनी होगी इसके लिए निम्न कदम उठाए गए है:

(अ) निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था;

(ब) समान स्कूल प्रणाली;

(स) प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।

(ii) लोकतान्त्रिक समाज–व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकीकरण को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से निम्न कार्य करने होंगे :

(अ) राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देना;

(ब) सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान देना; इसके अन्तर्गत प्राथमिक स्तर पर मातृ भाषा में, उच्च स्तर पर क्षेत्रीय और हिन्दी भाषा में तथा दूसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क एवं अन्तःक्रिया के लिए जरूरी है।

3. सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रमों द्वारा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना : इसके अन्तर्गत चरित्र निर्माण, अनुशासन, शारीरिक श्रम के प्रति निष्ठा और सामाजिक सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता है।

4. स्कूल एवं कॉलेजों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाना : यह आवश्यक है कि हमारे विद्यालय एवं महाविद्यालय को सामुदायिक क्रिया कलापों का केन्द्र बनाया जाए। इससे लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास जीवन के प्रारम्भ में ही होगा।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. प्रजातंत्र से क्या अर्थ है |
2. विद्यालय एक प्रजातंत्रीय व्यवस्था है | कैसे ?
3. प्रजातंत्रीय समाज व्यवस्था के तीन महत्वपूर्ण बिन्दु दीजिये |

6.5 सारांश (Summary)

व्यवहार व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण अवधारणा सामाजिक संदर्भ है। जब विद्यालय की एक शिक्षा के केन्द्र के रूप में चर्चा करते हैं तो उसका सामाजिक संदर्भ समुदाय और सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था वर्तमान में प्रजातांत्रिक है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था जनशक्ति पर आधारित होती है। परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था से एकदम अलग स्वतंत्रता के बाद जिस प्रजातांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हुई है, उस सामाजिक व्यवस्था में कई जडताएं, अन्धविश्वास और जातिगत दूरियां तेजी से समाप्त हुई हैं। भारतीय संविधान ने व्यक्ति की गरिमा, व्यक्ति स्वातंत्र और समानता पूर्ण व्यवहार पर जोर दिया है। सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता और लोकतान्त्रिक मूल्यों के विकास ने नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की है। यानि भारतीय समाज का सामाजिक सन्दर्भ तेजी से बदला और विकसित हुआ है।

दूसरी ओर शिक्षा महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है और अपने आप में सामाजिक उप व्यवस्था है। भारत में तीव्र परिवर्तन से न सिर्फ शिक्षा व्यवस्था या विद्यालय के स्वरूप में ही अन्तर आया है वरन् समुदाय की संरचना और विद्यालय व समुदाय की परस्पर भूमिका में भी बदलाव आया है। विद्यालय की भूमिकाओं में परिवर्तन शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन से आ रहा है तो दूसरी और सामाजिक व्यवस्था और समुदाय की बदलती आवश्यकता से शिक्षा एवं विद्यालयों के स्वरूपों में परिवर्तन है।

6.6 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluatory Question)

1. विद्यालय के सामाजिक सन्दर्भ के बारे मे आप क्या जानते हैं?विद्यालय व समुदाय के संबन्ध को स्पष्ट करे|
   What do you know about the social context of school?Explain the relationship of school and community.
2. विद्यालय को एक प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के रूप में स्पष्ट करें|
   Explain the school as a democratic system.

6.7 संदर्भ (References)

1. Ogburn and Nimkoff,**A Hand Book of Sociology**.
2. Joan Ferentte, **Sociology : A Global Perspective**, Thomson WoodSworth, USA, 2003.
3. Pareek and Sharma,**Udiyaman Bhartiya Samaj Aur Shiksha**,Shiksha Prakashan, Jaipur, 2004, (Hindi)

इकाई 7
शिक्षा मानव संसाधन और विकास
Education Human Resource and Development

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 शिक्षा और आर्थिक विकास (Education and Economic Development)

- 7.2.1 शिक्षा उपभोग एवं विनियोग के रूप में (Education as a Consumption and Investment)
- 7.2.2 आर्थिक विकास भारतीय परिप्रेक्ष्य में (Economic Development in Indian Context)
- 7.2.3 मानव संसाधन एवं विकास (Human Resource and Development)

7.3 आर्थिक विकास क्या है? (What is Economic Development)

7.4 आर्थिक विकास के कारण (Causes of Economic Development)

- 7.4.1 आर्थिक कारक (Economic Factor)
- 7.4.2 आर्थिक विकास के अनार्थिक कारण (Uneconomic Causes of Economic Development)

7.5 मानव संसाधन विकास (Human Resource Development)

- 7.5.1 मानव संसाधन विकास क्यों? (Why Human Resource Development)

7.7 सारांश (Summary)

7.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Referemces)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इतना ज्ञान प्राप्त हो जाएगा कि

1. आर्थिक विकास क्या है?
2. शिक्षा और आर्थिक विकास किस प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित हैं?
3. शिक्षा किस प्रकार मानव संसाधन के विकास में सहयोगी होती हैं?

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यत: आर्थिक विकास का मतलब राष्ट्रीय आय में वृद्धि से लिया जाता हैं। यानि एक निश्चित समय में प्रति व्यक्ति वास्तविक वस्तुओं और सेवाओं के ऐसे उत्पादन को आर्थिक विकास कहते हैं जिसकी माप सामान्य रूप से 'सकल राष्ट्रीय उत्पादन' में की जा सकती है। जब

किसी देश की सकल राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि, जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि से अधिक होती है तब यह स्थिति आर्थिक विकास की परिचायक है। आज संसार के सभी देश विकास की प्रक्रिया से जुड़ चुके हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जो देश गरीब और अविकसित थे और स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके हैं, अब निर्धनता, अशिक्षा और बीमारियों से लड़ने के लिए तेजी से कदम उठा चुके है। क्योंकि उन्होंने यह जान लिया है कि राजनैतिक स्वतंत्रता आर्थिक और सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान के बिना बेमतलब है। इसके लिए शिक्षा के आधुनिक कार्यक्रम एवं प्रोद्योगिकी के बिना आर्थिक विकास संभव ही नहीं है। परम्परागत सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य विकास की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करते हैं।

7.2 शिक्षा और आर्थिक विकास(Education and Economic Development)

आज संसार के सभी देश विकास की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया में जुटे हुये दिखाई दे रहे हैं। जो देश एक लम्बे समय से गरीब व अविकसित थे और जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ही राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की है, वे अब निर्धनता, अशिक्षा व बीमारियों से लड़ने के लिये क्रान्तिकारी कदम उठा रहे हैं। इन देशों ने अब यह अच्छी तरह से जान लिया है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता बिना आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान के व्यर्थ है। इसके लिये विकासशील देश शिक्षा के क्रेश प्रोग्राम चला रहे हैं। परन्तु वर्षो पुराने परम्परागत मूल्य विकास की प्रक्रिया में बाधा डालते हैं। विकास की प्रक्रिया में कई तत्व हैं जो इस प्रकार हैं –

7.2.1 शिक्षा उपभोग एवं विनियोग के रूप में (Education as a Consumption and Investment)

शिक्षा की भूमिका विनियोग के रूप में है या उपभोग की है, इसको जानने के लिए उपभोग और विनियोग को जानना पड़ेगा। जब अर्थव्यवस्था में कुछ साधनों का आवंटन भविष्य में उत्पादन वृद्धि के लिये किया जाना है तो उसे हम विनियोग कहते है। आज से कुछ वर्ष पूर्व शिक्षा को केवल शिक्षा के लिये ग्रहण किया जाता था। शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तित्व का विकास करना था। परन्तु वर्तमान में शिक्षाविदों ने शिक्षा को अन्य कोणों से देखना शुरू किया है। उनके अनुसार शिक्षा पर किया गया व्यय एक विनियोग है और जितना अधिक हम शिक्षा के क्षेत्र में विनियोग करेंगे हम उतने ही अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे। अर्थशास्त्री तो शिक्षा को आर्थिक विकास की कड़ी मानते थे परन्तु शैक्षिक विचारभूमि में यह प्रत्यय नया है। शिक्षाविदों के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन कई कारणों से हुआ है।

पिछले दो दशकों में अमेरिका, सोवियत रूस, इंग्लैण्ड जैसे विकसित देशों में हुये अध्ययनों ने शिक्षा और विनियोग के सम्बन्ध को बताया है। यूनेस्को ने शिक्षा को एक अच्छा निवेश बताया है और बताया है कि यह उतना ही अच्छा निवेश है जितना कि लोहा, कोयला व अन्य कच्चे माल पर किया गया निवेश, जो कि उद्योगों के लिये आवश्यक है। तीसरे जनसाधारण में शिक्षा की मांग बढ़ी है। यह मांग केवल विकसित देशों में ही नहीं विकासशील देशों में भी बढ़ी है। विकसित देशों में अनिवार्य शिक्षा का स्तर ऊँचा है और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ यह अभी और ऊँचा होना है।

बढ़ती हुयी शिक्षा की मांग के कारण संसाधनों को शिक्षा के क्षेत्र में आवंटित किया जा रहा है। शैक्षिक व्यय की वृद्धि सरकार के बजट पर प्रभाव डाल रही है। इसके लिये विभिन्न देशों की सरकारें यह भी जानना चाहती हैं कि व्यय के बदले में उत्पादक प्रतिफल कितना प्राप्त हो रहा है। कुछ लोग शिक्षा को विनियोग नहीं मानते हैं उसका कारण है शिक्षा में दीर्घकालीन विनियोग होना| हम सभी जानते हैं कि शिक्षा पर जो आज हम व्यय कर रहे हैं उसका प्रतिफल हमें तुरन्त नही मिलता। इसका प्रतिफल 10 या 15 वर्ष के पश्चात् मिलता है। क्योंकि जो व्यक्ति आज शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं वे अपने ऊपर खर्च किये जा रहे हैं। इस दृष्टि से शिक्षा उपभोग है। आज से 15 वर्ष बाद वे समाज के लिये उत्पादन प्रक्रिया में शामिल हो सकेंगे। इस दृष्टि से यह विनियोग है क्योंकि प्रतिफल अवश्य प्राप्त होता है। साथ ही यह प्रतिफल व्यय की तुलना में अधिक होता है।

शिक्षा पर व्यय का प्रतिफल उस पर किये गये व्यय से अधिक है या नहीं, इस को मापने के लिये कोई भी विधि पूर्णतया विश्वसनीय नहीं हैं। क्योंकि उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसमें कई तत्वों का योगदान होता है जैसे वातावरण, प्रोत्साहन, अनुशासन, सरकारी नीतियां, जलवायु प्रबन्ध, तकनीक, प्रबन्ध व ट्रेनिंग, आदि। उत्पादन वृद्धि में शिक्षा के योगदान को अलग से मापना पूरी तरह संभव नहीं है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्पादन–वृद्धि में शिक्षा व प्रशिक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका है।

शिक्षा एक विनियोग है और मानव संसाधन विकास में सहायक होती है। शिक्षा के कारण ही श्रम शक्ति अधिक आय प्राप्त करने में सफल होती है। इस तथ्य की पुष्टि के लिये कई अध्ययन हुये है। वी.के.आर.वी रॉव में दिल्ली से किये अध्ययन में पाया कि मैट्रिक, हायर सैकण्डरी, स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त किये हुये व्यक्तियों की आय व शिक्षा के स्तर में उच्च सहसंबंध है। दूसरे शब्दों में जितना ज्यादा शिक्षा का स्तर ऊँचा होगा, उतनी ही लोगों की आय भी अधिक होगी|

वी.के.आर.वी रॉव के अध्ययन के विपरीत हमें ऐसे लोग भी देखने को मिलते हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है परन्तु उनकी आय उनके शैक्षिक स्तर के अनुरूप नहीं है। हमारे देश में हजारों नवयुवक–नवयुवतियाँ स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात 300 या 400 रूपये में विभिन्न विद्यालयों में अध्यापन व्यवसाय में कार्यरत है। इनका कारण हमारे देश में संसाधनों को सामान्य शिक्षा पर व्यय किया जाना है। हमारे देश में तकनीकी व व्यावसायिक आकड़े बताते हैं कि शिक्षित व्यक्ति बेरोजगारी या अर्द्वरोजगार की स्थिति में जी रहे हैं। यदि शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार रहते हैं तो उन पर किया गया व्यय अनुत्पादक होगा। वर्तमान भारत में 6.5 प्रतिशत व्यक्ति तकनीकी रूप से कुशल, 0.1 प्रतिशत प्रशासनिक अधिकारी, 13.4 प्रतिशत कुशल श्रमिक व 50.2 प्रतिशत अकुशल श्रमिक हैं जबकि विकसित देशों में 15 प्रतिशत टेकनिशियन, 2 प्रतिशत प्रशासनिक अधिकारी, 25 प्रतिशत कुशल श्रमिक, 50 प्रतिशत अकुशल व अर्द्वकुशल श्रमिक व 8 प्रतिशत टेक्नोक्रेट्स होते हैं।

शिक्षा पर किया गया सम्पूर्ण व्यय उच्च प्रतिफल प्रदान नहीं करता उस नाते शिक्षा विनियोग नहीं है। ऐसा करने से शिक्षा की महत्ता व उपयोगिता कम नहीं हो जाती है। शिक्षा पर किया गया सम्पूर्ण व्यय उच्च प्रतिफल प्रदान करे, यह न तो संभव है और न ही वांछनीय है। शिक्षा से प्राप्त प्रतिफल केवल आर्थिक ही नहीं होते। प्रतिफल सामाजिक व सांस्कृतिक भी होते

हैं। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति एक सम्पूर्ण व उच्च स्तर की जिन्दगी जीने के काबिल बनता है। इस नाते शिक्षा उपभोग्य पदार्थ है।

सम्पूर्ण शिक्षा को आर्थिक विकास से जोड़ने का अर्थ होगा शिक्षा के दायरे को संकुचित करना। जिन्दगी केवल खाना, पीना या कमाना ही नहीं है। भारत में ऐसे समाजसुधारकों, चिन्तकों व ज्ञानी पुरूषों के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने शिक्षा के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के कारण शिक्षा को बढ़ावा दिया है। दयानन्द सरस्वती राजा राममोहन राय ने स्त्री शिक्षा पर बल इसलिये नहीं दिया कि स्त्रियाँ आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सहायक होगी। स्त्री शिक्षा पर बल उन्होंने एक अच्छे व सुन्दर समाज के निर्माण के लिये दिया। शिक्षा के द्वारा अनार्थिक प्रतिफलों को प्राप्त किया जाता है जो आगे जा कर आर्थिक विकास की प्रक्रिया को त्वरित करता है। इस प्रकार शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से भी आर्थिक विकास को लाती है। उदाहरण के लिये भाषाओं का ज्ञान सीधे रूप में आर्थिक विकास में योगदान नहीं देता है। सामान्य व्यक्ति के लिये भाषा का ज्ञान रीति रिवाजों को जानने और धर्म व संस्कृति को जानने में मदद करता है। यह संचार प्रक्रिया को सुगम बनाता है परन्तु इंजीनियर के लिये विदेशी भाषा का ज्ञान विदेशी तकनीक को जानने में सहायक होता है। इस प्रकार शिक्षा प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन वृद्धि में कई बार सहयोग नहीं देती परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य सहायक होती है।

अन्त में निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा उपभोग व विनियोग दोनों ही है।

शिक्षा और आर्थिक विकास के सम्बन्ध को सबसे पहले एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक "'वेल्थ ऑफ नेशन्स" में बताया था। जैसा कि आप जानते हैं उत्पादन के लिये हमें दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता होती है। एक है स्थिर पूंजी और दूसरी है कार्यशील पूंजी। एडम स्मिथ ने श्रम को स्थिर पूंजी माना है व स्कॉटलैण्ड के विकास को देखकर कहा था कि वहाँ के लोगों की बुद्धिमता व अच्छी आदतों का श्रेय शिक्षा को ही है। शिक्षा ने वहाँ एक अच्छी सरकार और एक अच्छी जनता को जन्म दिया। इसके साथ ही आर्थिक क्रियाओं व तरक्की का श्रेय भी शिक्षा को है। रिकॉर्डो और मार्शल जैसे अर्थशास्त्रियों ने भी शिक्षा के पक्ष में कहा है कि यह मनुष्य में अच्छी आदतें विकसित करती है। शिक्षा के कारण सीमित परिवार का जन्म होता है जो जनसाधारण के आर्थिक कल्याण में सहायक होता है। इस प्रकार शिक्षा आर्थिक विकास के लिये अप्रत्यक्ष रूप से योगदान देती है।

7.2.2 आर्थिक विकास भारतीय परिप्रेक्ष्य में (Economic Development in Indian Context)

भारत में आर्थिक विकास की स्थिति का जायजा लेने के लिये सबसे पहले हम अपने देश की प्रतिव्यक्ति आय पर नजर डालें। हमारे देश में प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। 1984–85 की गणना के अनुसार यह 2344 रूपये प्रति वर्ष है। विकसित देशों और अविकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय को देखें तो पता चलता है कि अविकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय से 50 से 75 गुना कम है। भारत की प्रति व्यक्ति आय 200 डालर है जबकि जापान की 10088 डालर, कनाडा की 11400, अमेरिका की 12820 व प.जर्मनी की 13450 डालर है।

कार्यशील जनसंख्या से किसी देश की श्रम शक्ति तथा उसकी व्यवसायिक संरचना से वहां के आर्थिक विकास के स्तर का ज्ञान किया जा सकता है। जिस देश में अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर होती है वह देश विकास के प्रथम चरण पर माना जाता है। ऐसे देश अर्द्ध विकसित देश कहलाते हैं। जिस देश में उद्योगों जैसे वस्त्र, चीनी, तेल, कागज, खनिज, आदि का विक्रय उक्त उपयोग भी अपने उन्नत स्तर पर होता है उसे विकास के द्वितीय चरण में माना जाता है। ऐसे देश विकासशील देश कहलाते हैं। जिन देशों में भारी उद्योगों 7 पूंजीगत उद्योगों का अर्थव्यवस्था में योगदान अधिक होता है उन्हें विकसित देशों की कोटि में रखा जाता है। भारत में कृषि 71 प्रतिशत, निर्माण उद्योगों में 13 प्रतिशत तथा अन्य कार्यो में 16 प्रतिशत लोग लगे हुए हैं जबकि अमेरिका जैसे विकसित देश में 2 प्रतिशत व्यक्ति कृषि, 32 प्रतिशत उद्योगों तथा 66 प्रतिशत व्यक्ति सेवाओं में लगे हुए हैं। अत: देश के विकास के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि देश को विकसित करने के लिये कृषि पर आश्रित जनसंख्या को अन्य कुटीर एवं भारी उद्योगों में लगाया जाये। भारी उद्योगों में श्रम शक्ति को लगाने के लिये औपचारिक एवं तकनीकी शिक्षा देने की जरूरत है। भारत की जनसंख्या का इतिहास इस तथ्य को घोषित करता है कि यहाँ की आबादी तीव्र गति से प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। इस समय भारत की जनसंख्या एक अरब से ऊपर हो चुकी है और जन्म दर 2.5 प्रतिशत प्रति वर्ष से कुछ कम ही है। जबकि विकसित देशों में यह दर 1 प्रतिशत है। जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या और अधिक विकट होती जा रही है। 2007 के "भारतं" के अनुसार हमारे देश में लगभग 5821 हजार लोग रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत हैं। बेरोजगारों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है जबकि प्रतिदिन यह देखने में आया है कि रोजगार देने के लिये सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ चालू की गई हैं।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भौतिक पूंजी में वृद्धि के प्रयास किये गये परन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या श्रम शक्ति में वृद्धि करती है, जिसके कारण प्रति व्यक्ति पूंजी का मात्रा में अधिक परिवर्तन नहीं हो पाता है। दूसरी और मानवीय पूंजी का स्तर भी हमारे देश में सन्तोषजनक नहीं है। मानवीय पूंजी का विकास स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा व प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। शिक्षा की स्थिति को देखने पर पता चलता है कि 64 प्रतिशत व्यक्ति अभी भी हमारे देश में निरक्षर हैं जबकि अमेरिका, कनाडा, इंग्लैड जैसे विकसित देशो में 5 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं। आज हमारे देश में आवश्यकता इस बात की है कि मानवीय पूंजी को इस प्रकार से तैयार किया जाये कि वह भौतिक पूंजी का ठीक प्रकार से लम्बे समय तक उपयोग कर सके। वर्तमान में भौतिक पूंजी तकनीकी रूप से बहुत जटिल हो गई है। एक लम्बे समय तक मशीनों व यन्त्रों को ठीक प्रकार के उपयोग करने के लिये व्यक्तियों में कौशलों का विकास करना जरूरी है। अत: औद्योगिक संस्कृति को लाने के लिये मानवीय शक्ति का निर्माण करना होगा।

7.2.3 मानव संसाधन एवं विकास (Human Resource and Development)

भारत में वर्षो पुरानी परम्पराओं से प्रेषित दृष्टिकोण तीव्र विकास की प्रक्रिया में बाधा डाल रहें हैं। दृष्टिकोण पूंजी व श्रम की गतिशीलता, साहसिक योग्यता व विशिष्टीकरण को संकुचित कर देते हैं। विकसित अर्थव्यवस्था के लिये जरूरी है कि लोगों के व्यवहार व मूल्यों में परिवर्तन लाया जाये। यह सब शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

यदि योजनाओं में प्राथमिकताओं को देखें तो पता चलता है कि शिक्षा व ट्रेनिंग को निम्न प्राथमिकता दी गई है। योजनाओं में शिक्षा पर निरन्तर व्यय में वृद्धि की गई परन्तु इसे सर्वोच्च प्राथमिकता नहीं दी गई है। प्रथम योजना में जहां शिक्षा पर 164 करोड़ रू. खर्च किया गया था। वहीं सातवीं योजना में 6383 करोड़ रूपये खर्च करने की योजना है। विकसित देशों में कुल बजट का 6 से 8 प्रतिशत खर्च किया जाता है। जबकि भारत में 3 प्रतिशत के लगभग ही खर्च किया गया हैं|

हमारे देश में शिक्षा पर जितनी भी मात्रा व्यय की जा रही है उसका प्रतिफल उसके अनुरूप नहीं मिल पा रहा है क्योंकि शिक्षा के विभिन्न स्तरों और शिक्षा के प्रकारों पर किये जाने वाले व्यय का वितरण सही रूप में नहीं हो पा रहा है। प्राथमिक शिक्षा को वातावरण से न जोड़ने के कारण इस पर किया गया व्यय व्यर्थ जा रहा है। प्राथमिक शिक्षा और वातावरण को न जोड़ पाने से ग्रामीण व्यक्तियों के सोचने के ढंग व अभिवृत्तियो में कोई परिवर्तन नहीं आया है। साथ ही विद्यालय छोड़ने वालों की संख्या बढ़ रही है। उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी बेरोजगार हैं जिसके कारण उनका उत्पादन में योगदान नहीं मिला है। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में किया गया निवेश अप्रयुक्त रहा है और यह साधनों की बरबादी का उदाहरण है। जहां मानवीय पूंजी को विकास के अवसर नही मिले हैं वहां बुद्धि–पलायन देखने को मिला है। इसके लिये हमारे देश में आवश्यकता है तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा पर खर्च करने और उसको प्राथमिकता देने की न कि सामान्य शिक्षा पर अधिक व्यय करने की। साधनों के कुशल उपयोग के लिये मानवीय शक्ति के नियोजन की आवश्यकता है। मानवीय शक्ति की माँग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करना ही मानवीय शक्ति का नियोजन है। मानव नियोजन करने वाले साधनों को व्यर्थ जाने से बचाया जा सकता है। इससे विभिन्न कौशलों को विकसित करने की लागत व लाभ का पता लगा कर साधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव हो सकेगा। बढ़ती हुई शिक्षित बेरोजगारी को देखते हुये मानवीय शक्ति का अनुमान करके सीमित साधनों व प्रजातान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष राज्य के सामाजिक आर्थिक दर्शन के अनुसार साधनों का अंकन किया जाना चाहिये। साथ ही यह विचार किया जाना चाहिये हम कितनी शिक्षा मानवीय शक्ति को दें, किस प्रकार की शिक्षा दें व कितने व्यक्तियों को दें।

7.3 आर्थिक विकास क्या है? (What is Economic Development)

विकास अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास से सम्बन्धित दो मुख्य धारणाएं पाई जाती हैं : पहली धारणा जिसे "परम्परागत धारणा" कहा जा सकता है, आर्थिक विकास को आर्थिक रूप में परिभाषित करती है। परम्परागत विचारधारा में आर्थिक विकास एक ऐसी स्थिति है जिसमें सकल राष्ट्रीय (या घरेलू उत्पाद 5 से 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ता रहे और उत्पादन एवं रोजगार संरचना में इस प्रकार परिवर्तन हो कि उसमें कृषि का हिस्सा कम होता जाए और विनिर्माण क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र का हिस्सा बढ़ता जाए। इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत ऐसे कदम उठाने की बात की जाती है जिससे कृषि के स्थान पर औद्योगीकरण की गति को तेज किया जा सके। गरीबी निवारण, आर्थिक असमानताओं में कमी और रोजगार के अवसरों में वृद्धि जैसे उद्देश्यों की मात्र चर्चा भर की जाती है और यह मान्यता ले ली जाती है कि सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद में वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि होने से बाकी उद्देश्यों को अपने आप धीरे–धीरे प्राप्त

कर लिया जाएगा। अर्थात सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लाभ रिस–रिसकर अन्य क्षेत्रों को प्रभावित करेंगे। इसे संवृद्धि का रिसाव प्रभाव कहा जाता है।

बीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दशक में कोई लाभ नहीं हुआ तो बहुत से अर्थशास्त्रियों ने 'परम्परागत' विकास की विचारधारा को छोड़ दिया। आठवें दशक में आर्थिक विकास की संकल्पना को पुन: परिभाषित किया गया और आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य गरीबी, असमानता और बेरोजगारी का निवारण रखा गया। इस दूसरी धारणा को पुनर्वितरण के साथ संवृद्धि का नारा दिया गया।

इस संदर्भ में चार्ल्स पी. किन्डलबर्गर और ब्रूस हैरिक का यह कथन महत्वपूर्ण है आर्थिक विकास की परिभाषा प्राय: लोगों के भौतिक कल्याण में बढ़ोतरी होती है। जनसाधारण को अशिक्षा, बीमारी और छोटी उम्र में मृत्यु के साथ–साथ गरीबी से छुटकारा मिलता है। लोगों का मुख्य व्यवसाय न रहकर औद्योगीकरण होता है जिससे उत्पादन के स्वरूप में और उत्पादन के लिए इस्तेमाल होने वाले कारकों के स्वरूप में परिवर्तन होता है। कार्यकारी जनसंख्या का अनुपात बढ़ता है और आर्थिक तथा दूसरे किस्म के निर्णयों में लोगों की भागीदारी बढ़ती है तो अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलता है और हम कहते है कि देश विदेश में आर्थिक विकास हुआ है।

क्या गरीबी के स्तर में कमी हो रही है? क्या बेरोजगारी का स्तर कम हो रहा है? क्या अर्थ व्यवस्था में असमानताएँ कम हो रही है' यदि इन तीनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है तो निश्चय ही अर्थव्यस्था में आर्थिक विकास हुआ है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. विनियोग किसे कहते हैं?
2. शिक्षा को अच्छा निवेश किसने कहा हैं?
3. गरीबी,बेरोजगारी और असमानताएं अगर कम होती हैं तो यह किसका संकेत हैं?

7.4 आर्थिक विकास के कारण (Factors of Economic Development)

आर्थिक विकास एक जटिल प्रक्रिया है। आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व आर्थिक और अनार्थिक दोनों ही है। जहां तक आर्थिक तत्वों का संबंध है इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है– पूंजी स्टॉक तथा संचयन ही दर, विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी–उत्पाद अनुपात, जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर, कृषि क्षेत्र में आधिक्य तथा भुगतान शेष की स्थिति। अनार्थिक कारकों में महत्वपूर्ण है – राजनीतिक स्वतंत्रता (या, दूसरे शब्दों में औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति), न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन, तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि भ्रष्टाचार से मुक्ति, सामाजिक व्यवस्था और विकास के प्रति लोगों की 'तीव्र इच्छा' एवं दृढ़ संकल्प। इन सबके अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और प्राय: विकास की सीमाएं निर्धारित करती है।

इस शताब्दी के चौथे दशक तक बहुत से अर्थशास्त्री विभिन्न देशों के विकास अथवा अल्प–विकास का विवेचन उनमें प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्षिक उपलब्धि के द्वारा करते थे। जेकब वाइनर, विलियम जे. बॉमाल तथा आर्थर ल्युइस ने आर्थिक विकास के निर्धारकों में

प्राकृतिक संसाधनों को बहुत महत्वपूर्ण माना है। जेकब वाइनर के शब्दों में, "आर्थिक विकास बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर करता है कि भौतिक पर्यावरण अथवा मेरी शब्दावली में प्राकृतिक संसाधनों की श्रेणी या गुणवत्ता उत्पादन की दृष्टि से क्या है। प्रतिकूल भौतिक पर्यावरण विकास में एक प्रमुख बाधा बन सकता है। इसमें सन्देह नहीं है कि कई देशों के विकास और समृद्धि में उनके प्राकृतिक संसाधनों के भण्डार ने अत्यधिक योगदान दिया है। उपजाऊ भूमि और सिंचाई के लिए उचित व्यवस्था कृषि विकास के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करते हैं। अल्प–विकसित देशों के कायाकल्प में कोयले और पेट्रोलियम के भण्डार, जल विद्युत निर्माण करने की सुविधाएं, लोहा, टिन, तांबा, बॉक्साइट आदि विविध खनिज पदार्थों की उपलब्धि, वन तथा पशु सम्पत्ति, इत्यादि अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। आर्थर ल्युइस का मत ठीक ही है कि किसी भी देश के विकास का स्तर तथा स्वरूप उस देश के संसाधनों द्वारा सीमित होता है। परन्तु यहाँ इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि मात्र प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि विकास के लिए काफी नहीं है। लैटिन अमेरीका, अफ्रीका और एशिया के बहुत से देश ऐसे हैं जिनमें पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन तो है परन्तु जिनका विकास का स्तर अत्यन्त निराशाजनक है। अक्सर कहा जाता है कि अफगानिस्तान और तिबत के अल्प–विकास का कारण वहाँ प्राकृतिक संसाधनों का न होना है। परन्तु इस बात पर ज्यादा जोर इसलिए नहीं दिया जा सकता क्योंकि बहुत से देश ऐसे भी है जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अभाव है परन्तु जिन्होंने उत्साहवर्द्वक आर्थिक विकास प्राप्त किया है। उदाहरण के लिए, स्विटजरलैंड के पास कोई प्राकृतिक संसाधन नहीं है और न ही भौतिक पर्यावरण अनुकूल है फिर भी उस राष्ट्र ने काफी उन्नति की है और वहां की प्रति व्यक्ति आय तथा सम्पति अमेरिका, बिटेन तथा जर्मनी जैसे देशों की तुलना में कम नहीं है।

7.4.1 आर्थिक कारक (Economic Factor)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में आर्थिक कारकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। पूंजी स्टॉक और पूंजी संचयन की दर अक्सर इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी समय–विशेष पर उस देश में संवृद्धि हो पाएगी अथवा नहीं (या फिर संवृद्धि की दर क्या होगी)। अन्य कारकों में जनसंख्या का आकार तथा उसमें वृद्धि, शहरी जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों का आधिक्य, भुगतान शेष की स्थिति, आर्थिक प्रणाली का स्वरूप इत्यादि महत्वपूर्ण है परन्तु इन सब कारकों का महत्व उतना अधिक नहीं है जितना कि पूंजी निर्माण का।

1. पूंजी निर्माण की ऊंची दर अर्थव्यवस्था समाजवादी हो अथवा पूंजीवादी, आर्थिक विकास की गति तेज रखने के लिए पूंजी निर्माण की दर ऊँची रखी जानी चाहिए। जापान में आर्थिक विकास का एक मुख्य कारण यह था कि उसमें पूंजी निर्माण की दर बहुत अधिक रखी गई। 1970 के दशक के अन्तिम वर्षो में जापान में बचत का स्तर सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 37 प्रतिशत तक पहुंचा दिया गया। 2001 में भी जापान में पूंजी निर्माण का स्तर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 26 प्रतिशत था। कई विकसित देशों जैसे जर्मनी, ऑस्ट्रिया, नीदरलैंड, डेनमार्क तथा नार्वे में आज भी पूंजी निर्माण की दर 22 प्रतिशत या उससे अधिक है। चीन, हांगकांग, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, थाइलैण्ड तथा मलेशिया जैसे अल्प–विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर 23 प्रतिशत या उससे अधिक है। इन सभी देशों में उच्च संवृद्धि दर प्राप्त करने के पीछे उनकी यह ऊँची पूंजी निर्माण दर है। इस सबके विपरीत भारत में 1960 के दशक में पूंजी निर्माण की दर 20 प्रतिशत के आसपास रही है और केवल हाल ही में यह 24 प्रतिशत तक पहुंची है।

2. मानव संसाधन : आर्थिक विकास में जनसंख्या एक महत्वपूर्ण कारक है। मानव से ही उत्पादन कार्य के लिए श्रम की उपलब्धि होती है। यदि किसी देश में श्रम शक्ति कुशल होने के साथ–साथ कार्य करने की क्षमता भी है तो उसकी उत्पादन सामर्थ्य निश्चय ही अधिक होगी। दुर्बल, अशिक्षित, अकुशल और रूढ़ियों में फंसे हुए व्यक्तियों की उत्पादकता कम होती है और आर्थिक विकास में उनका योगदान भी अधिक नहीं होता। परन्तु इस सन्दर्भ में इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यदि मानव शक्ति का युक्तिपूर्ण उपयोग नहीं किया जाता, सभी व्यक्तियों को उत्पादक कार्यो में नहीं लगाया जाता या फिर मानव संसाधनों का प्रबंधन अकुशल और अनुपयुक्त तरीके से किया जाता है तो वही लोग जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते थे, अर्थव्यवस्था पर बोझ बन जाते हैं। यही कारण है कि अर्थशास्त्री जनाधिक्य को आर्थिक विकास में बाधा मानते हैं।

3. कृषि का विक्रय अधिशेष – देश के आर्थिक विकास के लिए निस्सन्देह कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि महत्वपूर्ण है परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कृषि के विष्क्रीय अधिशेष में वृद्धि। विक्रय अधिशेष (या बिक्री योग्य अधिशेष) कृषि उत्पादन का वह हिस्सा है जो ग्रामीण जनसंख्या की निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद बच जाता है। इस विक्रय अधिशेष पर ही शहरी क्षेत्रों के लोगों का गुजर बसर होता है। शहरी जनसंख्या की आवश्यकताओं की तुलना में खाद्यान्नों का बिक्री योग्य अधिशेष कम था इसलिए सरकार को इनका भारी मात्रा में आयात करना पड़ा। इससे खाद्यान्नों की समस्या का तो समाधान हो गया परन्तु विदेशी मुद्रा के रूप में बहुत अधिक खर्च करना पड़ा। इस मुद्रा का प्रयोग ऐसे अन्य उद्देश्यों के लिए किया जा सकता था जिनसे आर्थिक विकास की दर को और ज्यादा बढ़ाना संभव हो सकता था। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि कोई देश औद्योगीकरण की गति को तेज करना चाहता है तो उसे इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कृषि क्षेत्र पिछड़ न जाए।

4. विदेशी व्यापार की शर्ते : बहुत लम्बे समय तक कई अर्थशास्त्रियों ने व्यापार के क्लासिकल सिद्धांत का सहारा लेकर यह तर्क दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन सब देशों के लिए लाभदायक है जो व्यापार में हिस्सा लेते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जाता रहा है कि अल्पविकसित देशों को कृषि पदार्थो तथा कच्चे माल का उत्पादन व निर्यात करना चाहिए क्योंकि इसी में उनका तुलनात्मक लागत लाभ है। इसके विपरीत विकसित देशों को निर्मित वस्तुओं का उत्पादन व निर्यात करना चाहिये क्योंकि इनका तुलनात्मक लागत लाभ इसी में है।

विदेशी व्यापार से उन देशों को ही अधिक लाभ हुआ है जिन्होंने तेजी के साथ औद्योगीकरण से निर्मित माल को ही विदेशी बाजारों में बेचा है। इसलिए अल्प–विकसित देशों के सामने भी यह लक्ष्य होना चाहिए कि तेजी से औद्योगीकरण करें, औद्योगिक वस्तुओं और पूंजीगत वस्तुओं के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनें तथा अपने निर्यातों में कृषि पदार्थो और कच्चे माल का हिस्सा घटाकर औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात बढाएं।

5. आर्थिक प्रणाली – आर्थिक विकास की दृष्टि से अर्थप्रणाली बहुत महत्वपूर्ण है। एक समय ऐसा था जब सरकारी हस्तक्षेप रहित पूंजीवादी अर्थप्रणाली को अपना कर तेजी से आर्थिक विकास करना संभव था जैसाकि इंग्लैड ने किया परन्तु आज की बदली हुई परिस्थितियों में इंग्लैड की भांति विकास कर पाना असंभव है क्योंकि अल्प–विकसित देशों के पास औपनिवेशिक शोषण की वैसी संभावनाएं नहीं हैं जैसी कि इंग्लैड के पास थी। आज के अल्प–विकसित देशों को अपना विकास पथ स्वयं चुनना होगा। इन देशों के सामने अब दो रास्ते हैं। प्रथम, पूंजीवादी प्रणाली में

आर्थिक आयोजन जैसा कि भारत में किया गया है। इसमें विकास की दर धीमी रहती है। लेकिन दक्षिण कोरिया तथा कुछ दूसरे देशों ने पूंजीवादी ढांचे में ही सरकारी सहयोग से तेजी के साथ विकास किया है। दूसरा रास्ता समाजवादी आर्थिक आयोजन का है। चीन ने इस रास्ते को अपनाया है और इसके द्वारा तेज आर्थिक विकास प्राप्त करने में सफलता पाई है।

7.4.2 आर्थिक विकास के अनार्थिक कारक (Non–Economic Factors of Economic Development)

1. राजनैतिक स्वतन्त्रता : विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि संसार में विकास और अल्प–विकास की प्रक्रियाएं एक साथ चली है। भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, मलेशिया, कीनिया आदि देशों का अल्प–विकास इंग्लैड के वकास का परिणाम है। आन्द्रे गुंदर फ्रेंक ने विस्तार के साथ स्पष्ट किया है कि ब्राजील और चिली का अल्प–विकास अमेरिका प्रभाव का परिणाम है। दादाभाई नौरोजी ने अपनी विख्यात पुस्तक में स्पष्ट किया है कि भारत में अंग्रेजी शासन काल में जो संपति और पूंजी का निर्यात हुआ, उससे देश में निर्धनता बढ़ी है और आर्थिक विकास में बाधा पड़ी है। विपिन चन्द्र के अनुसार ब्रिटिश शासनकाल में भारत में औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उन वर्षो में अधिक हो सकता है जब विश्वयुद्ध के कारण भारत और इंग्लैड के बीच संबंधों में शिथिलता थी। संक्षेप में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत किसी देश का आर्थिक विकास हुआ हो। अत: आर्थिक विकास के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता का विशेष महत्व है।

2. न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन : विकास की प्रक्रिया उसी समय तेज हो सकती है जब देश के विकास कार्यक्रमों में सभी व्यक्तियों की भागीदारी हो और यह तभी संभव होगा जबकि सामाजिक संगठन न्यायपूर्ण हो। जिस समाज की राष्ट्रीय वृद्धि देश के सबसे अधिक सम्पन्न वर्गो के पास पहुँच जाती है वहां जनसाधारण से आर्थिक विकास में योगदान की आशा करना व्यर्थ है। भारत में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों से औद्योगिक क्षेत्र में एकाधिकारी तत्वों के हाथ में आय और संपत्ति का केन्द्रीकरण बढ़ा है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में हरित क्रांति के परिणामस्वरूप धनी किसानों की आय अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ी हैं। इन दोनों प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप आर्थिक असमानाए बढ़ी है जिससे भारत में सामाजिक ढांचा न्यायपूर्ण नहीं है। यही कारण है कि आज साधारण भारतीय को विकास योजनाओं में कोई रूचि नहीं है।

3. तकनीकी ज्ञान एवं सामान्य शिक्षा : सभी लोग इस बात को स्वीकार करते है कि तकनीकी ज्ञान का विकास दर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जैसे–जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति होती है वैसे–वैसे उत्पादकों को अधिक उत्पादकता वाली तकनीकों का ज्ञान होता है जिससे उत्पादन का स्तर तेजी से बढ़ता है। शमपीटर ने तो उद्यमियों द्वारा किए जाने वाले नव–प्रवर्तनों को पूंजीवादी विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। रॉबर्ट एम. सोलोव ने अपने एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अमेरिका में राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि में सर्वाधिक योगदान तकनीकी परिवर्तनों का है। टी.डबल्यू.शुल्व और अमर्त्य कुमार सेन के अनुसार मानव पूंजी में निवेश (अर्थात शिक्षा पर व्यय) से आर्थिक विकास में तेजी आती है। परन्तु शिक्षा पर निवेश से आर्थिक विकास में कितना योगदान मिलता है इसकी परिमाणात्मक जांच आसान नहीं है।

4. भ्रष्ट्राचार से मुक्ति : अल्प–विकसित देशों में व्याप्त भ्रष्टाचार का इन देशों के आर्थिक विकास पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जब तक सरकारी तन्त्र भ्रष्ट्र है उस समय तक लोकतांत्रिक प्रणाली में सम्पन्न पूंजीपति व्यापारी तथा अन्य लोग विभिन्न प्रकार से अपने व्यक्तिगत हित में राष्ट्रीय साधनों का दुरूपयोग करेंगे। भ्रष्ट समाज में योजनाओं पर होने वाले व्यय का एक भाग तो सरकारी अफसर और दूसरे कर्मचारी हड़प कर जाते हैं। सरकार गलत लोगों को लाइसेन्स देती है।

5. विकास के लिए आकांक्षा – विकास प्रक्रिया को एक मशीनी प्रक्रिया नहीं समझा जाना चाहिए। किसी भी देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति उस देश के लोगों की विकास के लिए आकांक्षा पर निर्भर होती है। यदि चेतना का स्तर नीचा है तो जनसाधारण में आकांक्षा होनी चाहिए।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास की दृष्टि से जहां विकसित देशों की भांति ही अल्पविकसित देशों में दृढ़ भौतिक आधार का निर्माण करना आवश्यक है, वहां विकास के राजनैतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक निर्धारकों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। मानवीय तत्वों की उपेक्षा कर विकास के किसी भी कार्यक्रम को सफल नहीं बनाया जा सकता है। आर्थिक और अनार्थिक दोनों ही कारक शिक्षा, प्रशिक्षण एवं तकनीकी ज्ञान से जुड़े हैं। अत: आर्थिक विकास के लिए समाज के प्रत्येक सदस्य की जागरूकता के लिए आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा एव ज्ञान की प्रति आवश्यक है, साथ ही प्रौद्योगिकी के उपयोग की मानसिकता भी इतनी ही महत्वपूर्ण है।

7.5 मानव संसाधन विकास (Human Resource Development)

1990 में सर्वप्रथम प्रकाशित रिपोर्ट ने मानव विकास को लोगों के सामने विकल्प के विस्तार की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है लम्बा और स्वस्थ जीवन यापन, शिक्षा प्राप्ति, और अच्छा जीवन स्तर पाना। अन्य विकल्प है राजनीतिक स्वतंत्रता, अन्य मानवाधिकारों की गांरटी और आत्म–सम्मान के विविध तत्व। ये सभी जरूरी विकल्प है जिनके अभाव में दूसरों अवसरों में बाधा पड़ती है। अत: मानव विकास लोगों के विकल्पों में विस्तार के साथ–साथ प्राप्त होने वाले कल्याण के स्तर को ऊँचा करने की प्रक्रिया है। पॉल स्ट्रीटन ने ठीक ही लिखा है कि मानव विकास की संकल्पना मानव को कई दशकों के अंतराल के बाद पुन: केन्द्रीय मंच पर प्रस्थापित करती है। इन बीते दशकों में तकनीकी संकल्पनाओं की भूल–भुलैया में यह बुनियादी दृष्टि अस्पष्ट बनी रही थी।

महबूब उल हक के अनुसार "आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास की विचारधारा में परिभाषात्मक अंतर यह है कि जहां आर्थिक संवृद्धि में केवल एक विकल्प अर्थात् 'आय' पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है वहाँ मानव विकास में सभी मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है। ये विकल्प चाहे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक हो। यह कभी कभी कहा जाता है कि आय में वृद्धि से अन्य सभी विकल्पों का विस्तार होता है। ऐसा हो तो सकता है, लेकिन विभिन्न कारणों से ऐसा प्राय: होता नहीं है। प्रथम, आय का वितरण असमान हो सकता है। अत: जिन लोगों की आय तक पहुँच बहुत कम है अथवा बिल्कुल नहीं है उनके विकल्प बहुत सीमित होगें। इस स्थिति में आर्थिक संवृद्धि का रिसाव नहीं होता। द्वितीय, जो अधिक महत्वपूर्ण

है, यह कि समाज और शासकों द्वारा ऐसी राष्ट्रीय प्राथमिकताएं निर्धारित की जा सकती हैं अथवा समाज का राजनैतिक ढांचा ऐसा हो सकता है कि आय के विस्तार से लोगों के सामने विकल्पों का विस्तार न हो। उदाहरण के लिए " समाज में लोकतंत्र के लिए उसका संपन्न होना आवश्यक नहीं है। परिवार में एक–दूसरे के अधिकारों को महत्व देने के लिए उसका धनी होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्र में स्त्री–पुरूषों को समानता प्रदान करने के लिए उसका समृद्ध होना आवश्यक नहीं है। बहु मूल्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को आय के सभी स्तरों पर बनाए रखा जा सकता है।

7.5.1 मानव संसाधन विकास क्यों? (Why Human Resource Development)

मानव विकास निम्न कारणों से आवश्यक है

1. मानव विकास उद्देश्य है जबकि आर्थिक संवृद्धि इस उद्देश्य का साधन मात्र है।

2. आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य स्त्रियों, पुरूषों और बच्चों की वर्तमान और भावी पीढ़ियों के रूप में देखना, मानव की स्थितियों में सुधार करना और लोगों के विकल्पों में विस्तार करना है।

3. मानव विकास ऊँची उत्पादकता का साधन है। भली प्रकार से पोषित, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल और सतर्क श्रम शक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादक परिसंपति होती है। अत: पोषण, स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा में निवेश उत्पादकता के आधार पर उचित है।

4. शिक्षा में सुधार से लोगों में छोटे परिवार के फायदों के प्रति चेतना पैदा होती है और स्वास्थ्य में सुधार व बाल मृत्युदर में कमी से लोग ज्यादा बच्चों की जरूरत महसूस नहीं करते।

5. यह मानव पुनरूत्थान को धीमा करके परिवार के आकार को छोटा करने में सहायता पहुँचाता है। यह सभी विकसित देशों का अनुभव है कि शिक्षा के स्तर (विशेष रूप से लड़कियों के शिक्षा के स्तर) में सुधार, अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्दता और बाल मृत्युदर में कमी से जन्म दर में गिरावट आती है।

6. परम्परागत दृष्टिकोण यह है कि इनका पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है लेकिन पॉल स्ट्रीटन ने हाल के शोध कार्यो के हवाले से स्पष्ट किया है कि भूमि अधिकार सुरक्षित होने की स्थिति में जनसंख्या में तेजी के साथ वृद्धि और जनसंख्या के ऊंचे घनत्व से मिट्टी और वनों का संरक्षण होता है।

7. भौतिक पर्यावरण की दृष्टि से भी मानव विकास अच्छा है। गरीबी में कमी से वनों के विनाश, रेगिस्तान के विस्तार और भूक्षरण में कमी आती है। जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या का घनत्व किस तरह पर्यावरण को प्रभावित करते हैं यह विवाद का विषय है।

8. गरीबी में कमी से एक स्वस्थ समाज के गठन, लोकतंत्र के निर्माण और सामाजिक स्थिरता में सहायता मिलती है।

9. मानव विकास से सामाजिक उपद्रवों को कम करने में सहायता मिलती है और इससे राजनीतिक स्थिरता बढ़ती है।

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि मानव विकास प्रतिमान में केवल अर्थव्यवस्था ही नहीं आती उसमें इसके अन्तर्गत राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों को उतना ही महत्व दिया जाता है जितना कि आर्थिक कारकों को और भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि

उद्देश्यों और साधनों के बीच सावधानी के साथ अन्तर किया जाता है। यद्यपि लोगों को विकास का लक्ष्य माना जाता है तथापि साधनों को भुलाया नहीं जाता है। लेकिन आर्थिक संवृद्धि के स्वरूप और वितरण का माप लोगों के जीवन में समृद्धि के रूप में किया जाता है। लोग वस्तुओं के उत्पादन करने वाले उपकरण मात्र नहीं रहते। उत्पादन प्रक्रियाएं अमूर्त शून्य रूप में नहीं देखी जाती है, उनका वस्तुत: मानवीय संदर्भ होता है।

इस प्रकार मानव संसाधन विकास जीवन के गुणात्मक पक्षों से जुड़ा है एक ओर यह आर्थिक एवं भौतिक पक्षों से जुड़ा है तो दूसरी ओर मानव जीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों से 1 कोई भी पक्ष हो वह संस्कृति व सभ्यता से जुड़ा है। समय व स्थान के अनुरूप संस्कृति व सभ्यता का विकास ज्ञान के स्तर से जुड़ा है और ज्ञान का स्तर विज्ञान व प्रौद्योगिकी के स्तर से विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा व प्रशिक्षण से सीधा सम्बन्ध है। ऐतिहासिक स्तर पर विकास की गति और विद्या को देखें तो मानव संसाधन के विकास को उससे जुड़ा पाते हैं। अत: शिक्षा मानव संसाधन विकास का बहुत बड़ा और महान स्रोत है|

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. आर्थिक विकास के कोई दो आर्थिक कारण बताइये|
2. आर्थिक विकास के कोई दो अनार्थिक कारण बताइये|
3. मानव संसाधन विकास जीवन के किन पक्षों से जुड़ा हैं?

7.7 सारांश (Summary)

शिक्षा और आर्थिक विकास परस्पर अन्तसम्बन्धित हैं। जैसी सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां होती हैं उसी परिप्रेक्ष्य में आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थितियां होती हैं। एक ओर शिक्षा आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती है तो दूसरी ओर आर्थिक परिस्थितियों में बदलाव शैक्षणिक व्यवस्था को में परिवर्तन करता है। इन दोनों का प्रभाव उपलब्ध मानव संसाधन पर भी पड़ता है। शिक्षा मानव संसाधन को ज्ञानवान एवं कुशलता व विवेकशीलता प्रदान करती है और आर्थिक परिस्थिति को प्रभावित करती हैं। आर्थिक विकास किसी भी राष्ट्र के मानव संसाधन का विकास भी करता है।विशेषकर तब परिवर्तन की गति की दिशा को ध्यान में रख शिक्षा के विकास की ओर आगे बढ़ते हैं। शिक्षा विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी के समुचित उपयोग के लिए मानव संसाधन को तैयार करती है और मानव संसाधन एवं मानव विकास दोनों ही किसी भी समाज में देखें जा सकते हैं।

7.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. "शिक्षा उपयोग भी है और निवेश भी" तर्क दें।
   "Education is Consumption as well as Investment."Give Arguments)
2. किसी भी देश के लिए मानव संसाधन विकास एक महत्वपूर्ण मुद्दा क्यों हैं?
   Why Human Resource Development is an Important issue for nation?

7.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Important Books)

1. SK Mishra and V.K. Suri, **Bhartiya Arth Vyavastha**, Himalaya Publishing House, Delhi, 2006, pp. 5.27.
2. Mahboob, ULHag, ”Employment and Income Distribution in 1970; A New Perspective, ”**Pakistan Economic and Social Reviews**, June–December,1971.
3. Foll Stretion and Others, **First Things First : Meeting Basic Needs In Human Needs In Developing Countries**,New York,1981.

इकाई 8
शिक्षा मानव अधिकार के रूप में : भारत में बच्चों की स्थिति
Education As Human Rights : Situation Of Children In India

इकाई की रूपरेखा (Outline of Unit)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 मानव अधिकार (Human Rights)

- 8.2.1 भारत में मानव अधिकार (Human Rights in India)
- 8.2.2 भारतीय संविधान में मूल अधिकार (Fundamental Rights in India Constitution)

8.3 नवीन सामाजिक व्यवस्था के लक्षण (Characteristics of New Social System)

8.4 मानवाधिकार शिक्षा (Education for Human Rights)

- 8.4.1 मानवाधिकार शिक्षा के लक्ष्य (Aims of Human Rights Education)
- 8.4.2 मानवधिकारों के प्रति जागरूकता हेतु प्रयास (Efforts for the Awareness of Human Rights)

8.5 शिक्षा का अधिकार (Rights of Education)

8.6 बच्चों के अधिकार (Rights of Children)

8.7 सारांश (Summary)

8.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

8.9 संदर्भ (Reference)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

1. भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को जानना
2. सामाजिक व्यवस्था के लक्षणों को जानना,
3. मानवाधिकार शिक्षा और उसके प्रति जागरूकता के प्रयास,
4. भारत में बच्चों के अधिकारों को जानना

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

वैदिक काल से ही हमारे देश में सबको शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने पर बल दिया गया था।कालान्तर में समाज में व्याप्त कुरीतियों के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रदान करने में भेदभाव रखा जाने लगा। कुछ विशेष जाति विशेषकर निम्न जातियों के सदस्यों एवं महिलाओं को

शिक्षा देना उस समय कठिन हो गया। परिणामस्वरूप ऐसी जातियाँ शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ गई। स्वतंत्रता के बाद नए संविधान के अन्तर्गत शैक्षिक अवसरों की समानता से हमारा तात्पर्य जाति, धर्म, रंग, लिंग तथा क्षेत्र के आधार पर पक्षपात न करते हुए सबके लिए शिक्षा के उपयुक्त अवसर प्रदान करना है। इन अवसरों को अतिरिक्त सुविधाएँ जुटाकर प्रदान किया जाना राज्य के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया है ताकि जो वर्ग किन्हीं कारणों से शिक्षा में पिछड़ा है उसे अतिरिक्त अवसर प्रदान कर सामान्य धारा में मिलाया जा सके। शिक्षा आयोग ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है मुख्य –शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करना है एवं पिछड़े अथवा अपर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त वर्ग या व्यक्तियों को अपने विकास के लिए शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाना है।

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, अन्य व्यक्तियों के साथ जीवन यापन करता है। समाज में ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह पूर्णता को प्राप्त करता है। यदि उसे विकास के लिए समुचित अवसर व सुविधाएँ न मिलें तो वह अपूर्ण रह जायेगा। इसके लिए राज्य व्यक्ति को सुविधाएँ प्रदान करता है। कुछ सुविधाएँ व्यक्तिगत होती हैं, कुछ सार्वजनिक कल्याण की। प्राय: समाज उन मांगों को स्वीकार कर लेता है जो समाज के हित में होती हैं। समाज सम्मत इन मांगों को ही अधिकार कहते हैं। समाज से बाहर अधिकारों की सृष्टि नहीं होती है। अधिकार का मूलभूत आधार "सामाजिक कल्याण का भाव" है। समाज का प्रमुख आधार स्तम्भ मानव अधिकार है।

भारतीय संविधान की उद्देशिका भारतीय संविधान का वह सार–तत्व है जिसमें मानवाधिकारों की सार्वजनिक धोषणा तथा नागरिक और राजनीतिक अधिकारों एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बन्धित आधारभूत सिद्धान्त प्रतिबिम्बित हुए हैं। भारतीय संविधान उद्देशिका में मानवाधिकार का सम्पूर्ण निचोड़ देखा जा सकता है।

उद्देशिका : हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रयुत्व–सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

> सामाजिक आर्थिक और राजनेतिक चाय' विचार अभिव्यक्ति, विश्वास',धर्म और उपासना की स्वंतत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा, और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ संकल्प होकर अपनी इ़स सविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1994 ई. (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ला सप्तमी सवंत दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस सविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं|

भारतीय संविधान का सबसे खूबसूरत अंग भारत के नागरिकों के मूल अधिकार और राज्य की नीति के निर्देशक तत्व हैं।

8.2 मानव अधिकार (Human Rights)

मानव अधिकारों को सामान्यत: ऐसे अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका उपयोग करने और जिनकी रक्षा की अपेक्षा रखने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है। सभी समाजों और संस्कृतियों में कुछ ऐसे अधिकारों की अवधारणा को विकसित किया है जिनका आदर करना आवश्यक समझा गया है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में मानवतावादी परम्परा और

सहिष्णुता की परम्परा तथा विविधता व अनेक रूपता के प्रति आदर की परम्परा रही है| वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा इसका उदाहरण है। भारतीय दर्शन में बंधुत्व और सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने जैसे मूल्य अन्तनिहित हैं। ये अवधारणाएं अनेक धार्मिक एवं समाज सुधार आदोलनों में भी प्रतिबिम्बित हुई हैं। इसी प्रकार के विचार अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं में भी विकसित हुए हैं। यूरोप में 'पुनर्जागरण' और 'ज्ञानोदय' मानवतावाद का मूलमंत्र बना है। मानवतावाद ने मनुष्य को सबसे ऊपर प्रतिष्ठित किया है। इस काल में जिस समय यूरोप में मानवतावाद की स्थापना हो रही थी लगभग उसी समय अमरीका के यूरोपीय–पूर्व संस्कृतियों के विध्वंस, इंसानों की तिजारत और विश्व के कई भागों में उपनिवेशीकरण के प्रारम्भ का भी काल था। मानवतावाद का सारा संदर्भ मानवाधिकार है।

मानवाधिकार की अवधारणा के विकास की प्रक्रिया 18वीं सदी में उदित क्रांतिकारी आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप तेजी से फैली और 19वीं व 20वी शताब्दी में परवान चढ़ी। इसमें सबसे बड़ा योगदान अमरीकी स्वतंत्रता की घोषणा और फ्रांस की मनुषय तथा नागरिक के अधिकारों की घोषणा का रहा। अमरीका और अन्य सभी देश जो मानवाधिकार की बात करते रहे सर्वाधिक अधिकारों का हनन उन्हीं प्रजातांत्रिक, समाजवादी जनवादी देशों में ही हुए हैं।1914 से 1945 दो विश्वयुद्धों तक का कालखण्ड 'विध्वसं का काल' था। इसी काल के अन्तिम वर्षो में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की अवधारणा और अभिव्यक्ति वर्तमान अशों में की जाने लगी, संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार–पत्र को लेकर कोई तीन वर्ष बाद जल्दी की गई। मानवाधिकारी की सार्वजनीक घोषणा (1948) वस्तुत: ऐसे मानवाधिकारों की एक लम्बी सूची है। जिनकी प्रगति सभी जन सभाओं और राष्ट्रों के लिए 'सामान्यत: आवश्यक मानी जाती है।

मानवाधिकार की इस अवधारणा की चर्चा सामान्य रूप से इसके तीन चरणों को ध्यान में रखकर की जाती है –

1. प्रथम चरण के अधिकार : स्वतंत्रता अभिमुख अधिकार – इनका सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्ति के नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों से हैं। इनका उद्देश्य सरकारों को व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए निषेधात्मक दायित्व आरोपित करना था।ये अधिकार 19वीं सदी से आरंभ हाने वाले सभी उदारवादी और लोकतांत्रिक आदोलनों के प्रमुख प्रयोजनों में से थे।

2. दूसरे चरण के अधिकार सुरक्षा अभिमुख अधिकार – इनमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सुरक्षा की व्यवस्था है। इसकी प्रकृति सकारात्मक है। इनके कारण यह जरूरी हो जाता है कि राज्य इन अधिकारों की पालना सुनिश्चत करें।

3. तृतीय चरण के मानवाधिकार विकास का अधिकार – इनका विकास हाल ही में हुआ है। वर्तमान में पर्यावरण सम्बन्धी, सांस्कृतिक तथा विकासात्मक अधिकारों का समावेश हुआ है। इनका सम्बन्ध व्यक्तियों की बजाय समूहों और जन–समाजों के अधिकारों से है। इनमें आत्म–निर्णय और विकास का अधिकार, आदि आते हैं। इन अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आम सहमति पैदा करने में विकासशील देशों की महती भूमिका रही है।

8.2.1 भारत में मानव अधिकार (Human Rights in India)

मानवाधिकारों से सम्बन्धित सभी दस्तावेजों में शिक्षा के अधिकार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनमें मानवाधिकारों के अभिवर्षन में शिक्षा के महत्व पर भी जोर

दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा में "मानवाधिकारों की इस सार्वजनिक घोषणा का लक्ष्य" यह बताया है कि

"प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग... अध्यापन और शिक्षा द्वारा इन अधिकारों व स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावना का अभिवर्धन करेगा |"

बच्चों के अधिकारों से सम्बन्धित कई अनुच्छेद शिक्षा के अधिकार के विभिन्न पहलूओं और शिक्षा की विषय–वस्तु के बारे में है। इसकी विषय–वस्तु में इस बात का भी समावेश है कि "बच्चे की शिक्षा... मानवाधिकारों ओर स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावना का विकास करने की और अभिमुख होगी|

बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार आज आधार भूत अधिकार है। इस मानवाधिकार के अन्तर्गत 14 वर्ष की आयु देश के सभी बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। यह इसलिए अनिवार्य है क्योंकि शिक्षा का प्रभाव मानव विकास पर सर्वाधिक होता है। इस गुणात्मक सुधार का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण के साथ ही समाज के विकास से सीधा जुड़ा है। बालक क्योंकि भविष्य का नागरिक होता है अत: उसका शिक्षित होना, ज्ञानकाल होना और अब तक के अर्जित ज्ञान को अपनी अगली पीढ़ी को स्थानान्तरित करने का कर्तव्य होता है। ऐसे में स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुरक्षा के अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार बच्चों का है। वह देश जो बच्चों की शिक्षा का अधिकार नियमित रूप से देता है वह विकास के उच्च स्तर पर रहता है।

संभवत: मानव अधिकारों से संबंधित भारतीय जीवन मूल्यों की उत्पत्ति सबसे प्राचीन है। सबसे प्राचीन माने जाने वाले ऋग्वेद में यह घोषित किया गया है कि सभी मानव बराबर है और वे सब भाई–भाई हैं। अर्थर्वेद के अनुसार खाद्य पदार्थो तथा जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर सभी मानवों का बराबर अधिकार है। उपनिषद (श्रुति) सहित वेद धर्म के मौलिक स्त्रोत हैं। 'धर्म' उन सभी मानव अधिकारों और कर्तव्यों के लिए एक ऐसा सारगर्मित शब्द है जिसका पालन करना व्यक्ति और समाज के सुख एवं शान्ति के लिए आवश्यक माना गया। स्मृति और पुराणों में धर्म के उन नियमों का संकलन किया गया है जिनमें नागरिक कर्तव्य, व्यवहार, धर्म तथा राज्य धर्म भी शामिल है और जो वेदों में निहित मूलभूत आदर्शो के आधार पर विकसित किए गये थे। इनके राजधर्म संबंधी अन्य अधिकृत ग्रंथ भी हैं जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण कामण्डक, 'शुक्र नीति' तथा कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र हैं। इन सबका उद्देश्य सब को सुखी बनाना था।

धर्म के नियमों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि अति प्राचीन काल से ही भारत में मूल्यवान मानव अधिकारों को निर्धारित कर मान्यता दी गयी और इन मानव अधिकारों की रक्षा राज्य तथा निश्चित व्यक्तियों का कर्तव्य माना गया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि जीवन मूल्यों में अनेक मानव अधिकार निहित थे जो अब "विश्व मानव अधिकार घोषणा" पत्र तथा भारतीय संविधान के तृतीय भाग में अनेक मूलभूत अधिकारों में सम्मलित किए गये हैं। यह विषय मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ वाले मुकदमे में (1978(1) एस.सी.सी. 248) नियम प्रकार उजागर किया है।

"ये मूल अधिकार उन आधारभूत मूल्यों के द्योतक हैं जिन्हें इस देश के लागों ने वेदों के काल से ही मूल्यवान समझा और जिन्हें व्यक्ति के मान की रक्षा के लिए ऐसी स्थितियाँ निर्मित करने के लिए आवश्यक माना गया जिनमें प्रत्येक मानव अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है।

इस देश की सभ्यता तथा संस्कृति को आदर्श रूप प्रदान करने वाले महान विचारकों ने प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए दूसरे व्यक्तियों के सहगामी कर्तव्य निर्धारित करने का अद्‌वितीय उपाय निकाला।

अतएव, इस देश के प्राचीन दार्शनिकों ने अधिकार पर आधारित समाज न बनाकर कर्तव्य आधारित समाज बनाना अधिक अच्छा समझा जिसमें व्यक्ति को दिया हुआ अधिकार उसकी कर्तव्य पूर्ति का अधिकार है।

मानव अधिकार जीवन का आधारभूत मूल्य है जो भगवतगीता की अत्यन्त लोकप्रिय तथा महत्वपूर्ण घोषणा है जो इस प्रकार है,

तुम्हारा अधिकार अपने कर्तव्य की पूर्ति करना है।

समानता का अधिकार सभी अधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है। इसके बिना सुखी जीवन असंभव है। अन्यायपूर्ण भेदभाव से उन व्यक्तियों में दुख और संताप पैदा होता है जिनके विरूद्ध भेदभाव किया जाता है इसलिए जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में मान प्राप्त हो। अत्यंत प्राचीनकाल से ही मानवीय क्रियाकलापों के प्रत्येक क्षेत्र में समानता और अवसर की समानता को आवश्यक माना गया है।

ऋग्वेद और अर्थवेद में समानता के अधिकार की घोषणा की गयी है। वे उदाहरण है।

जैसे–"समाज में ऊँचनीच का भेदनहीं है, सभी भाई हैं। सबको सबकी भलाई और उन्नति करनी चाहिए।"

"मानव अधिकारों के घोषणापत्र (1948) की धारा 1 और 7 के अनुसार सभी मनुष्य जन्म से ही मान और अधिकारों में बराबर हैं। मनुष्य स्वभाव से ही तर्कशील और विवेकी है, इसलिए भाई–चारे की भावना के साथ उन्हें एक दूसरे के प्रति व्यवहार करना चाहिए।"

"सभी, कानून की दृष्टि से समान हैं। कानून बिना भेदभाव के उनकी समान संरक्षण प्रदान करेगा। इस घोषणा के उल्लंघन स्वरूप किसी भी भेदभाव के खिलाफ और भेदभाव से प्रेरित किसी भी व्यवहार के खिलाफ समान संरक्षण का सबको अधिकार है।"

8.2.2 भारतीय संविधान में मूल अधिकार (Fundamental Rights in India Constitution)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय संविधान में उन अधिकारों को मूल अधिकार कहा गया है जो व्यक्ति के जीवन के लिए मौलिक एवं अपरिहार्य होने के कारण संविधान द्‌वारा नागरिकों को प्रदान किये गए हैं और जिनमें सामान्यतया राज्य द्‌वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। प्रमुख मौलिक अधिकार निम्न है :

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18),
2. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28),
3. स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22),
4. संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29–30),
5. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24), और
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

8.3 नवीन सामाजिक व्यवस्था के लक्षण(Characteristics of New Social System)

भारतीय –सामाजिक व्यवस्था का एक निश्चित, निर्धारित स्वरूप वर्तमान समय में तीव्र गति से परिवर्तित हुआ है। व्यक्ति, परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की आकांक्षाओं, उपेक्षाओं के परिवर्तित प्रतिमानों के कारण यह व्यवस्था तीव्र गति से नवीन सामाजिक स्वरूप को प्राप्त कर रही है। कुछ प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है :

- सामाजिक समानता
- लैंगिक समानता
- सामाजिक न्याय
- पंथनिरपेक्षता
- बालिका शिक्षा
- अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा
- अस्पृश्यता निवारण
- पिछड़े समुदायों का विकास
- मानवतावादी दृष्टिकोण
- आधुनिकीकरण
- वैज्ञानिक चिन्तन

प्रथम विश्वयुद्ध की व्यापक हिंसा के पश्चात् 'शान्ति स्थापना लीग नामक संगठन का गठन किया गया था। जून 1915 में फिलाडेल्फिया में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। 1920 में राष्ट्र संघ का गठन हुआ। 1941 में अमेरिका राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रुजवेल्ट ने मनुष्य की चार मूलभूत स्वतन्त्रताओं की चर्चा की। 1948 में एलोनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। 10 दिसम्बर 1948 को इसे स्वीकार किया गया। इसीलिए 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. भारतीय संविधान उद्देशिका मानवाधिकार का निचोड़ हैं,समझाइये|
2. मानवाधिकार के तीन चरण कौन–कौन से हैं?
3. भारतीय संविधान में से प्रमुख पाँच अधिकारों के नाम दीजिए|

8.4 मानवाधिकार शिक्षा (Education for Human Rights)

मानवाधिकारों से सम्बन्धित सभी दस्तावेजों में शिक्षा के अधिकार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनमें मानवाधिकारों के अभिवर्षन में शिक्षा के महत्व पर भी जोर दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा में "मानवाधिकारों की इस सार्वजनिक घोषणा का लक्ष्य" यह बताया है कि

> "प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अग .... अध्यापन और शिक्षा द्वारा इन अधिकारों व स्वतत्रताओं क्रे प्रति सम्मान की भावना का अभिवधर्न करेगा|"

भारत जैसे राष्ट्र में जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक विषमताएँ अत्यधिक हैं। मानवाधिकार शिक्षा की आवश्यकता अधिक अनुभव की जा रही है। प्रात: दिन का प्रारम्भ होते ही समाचार–पत्र अथवा दूरदर्शन पर आने वाले कार्यक्रम एवं समाचारों से मानवाधिकारों के हनन की

समस्या को उजागर करने वाले तथ्य हमें इस दिशा में सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि इस शिक्षा को प्रदान करने के लिए किन लक्ष्यों का निर्धारण किया जाना प्राथमिकता है? ऐसे ही कतिपय लक्ष्यों का वर्णन प्रस्तुत है

8.4.1 मानवाधिकार शिक्षा के लक्ष्य (Goals of Education Human Rights)

मानवाधिकार शिक्षा के मूलभूत मूल्य आध्यात्मिकता, अहिंसा तथा नैतिकता हैं। इन्हीं के आधार पर इस शिक्षा के लक्ष्यों को भी निर्धारित किया जा सकता है :

1. शांति स्थापना हेतु सामाजिक मूल्यों को प्रतिस्थापित करना।
2. सामाजिक मूल्यों के विकास हेतु ज्ञान, भावना एवं कौशलात्मक परिवर्तन लाना।
3. व्यक्ति की गरिमा को समझने की क्षमता उत्पन्न करना।
4. पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करने की निपुणता का विकास करना।
5. विवेकयुक्त एवं समाज सम्मत व्यवहार में कुशलता की प्राप्ति करना।
6. व्यक्तिगत विकास के साथ दीर्घकालीन राष्ट्रीय हितों का संरक्षण करने की संवेदनशीलता उत्पन्न करना।
7. शोषण मुक्त समाज के निर्माण की आवश्यकता के प्रति अभिवृत्यात्मक का परिर्वतन करना।
8. सांस्कृतिक विरासत का ज्ञान प्राप्त कर अधिकार व कर्तव्य में समन्वय स्थापित करना।
9. मौलिक स्वतन्त्रताओं का आदर करना सिखाना।
10. पूर्वाग्रहों क्रो त्यागने एवं दूसरों के प्रति दुर्भावनाओं को समाप्त करने हेतु तैयार करना।
11. कार्य–संस्कृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना, व्यक्तियों की गतिविधियों में सहयोग करना सिखाना।

8.4.2 मानवधिकारों के प्रति जागरूकता हेतु प्रयास (Efforts for the Awareness of Human Rights)

मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता के कई स्तरों पर प्रयास किये जाते रहे हैं और किये जा रहे हैं कुछ प्रभावशाली प्रयास निम्न हैं :

- साक्षरता कार्यक्रमों में सम्मिलित करके
- पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना
- संचार–माध्यमों का अधिकाधिक प्रयोग
- स्वैच्छिक संगठनों का गठन करके
- राजकीय विभागों में मानवाधिकार जागरूकता अभिनवीकरण द्वारा

8.5 शिक्षा का अधिकार (Rights of Education)

वेदों में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा तीन पवित्र कर्तव्यों को निभाने का उल्लेख है। धर्म के अंश के रूप में एक आधारभूत जीवन मूल्य कृतज्ञता से पवित्र कर्तव्य की भावना पैदा हुई। प्रत्येक व्यक्ति इस खेत के प्रति उत्तरदायी है, जहाँ से उसे प्रत्येक प्रकार का लाभ प्राप्त होता है, जिसमें उसका अपना अस्तित्व भी सम्मिलित है। वेदों में घोषित तीन पवित्र कर्तव्य है 1. देवऋण, 2.

पितृऋण, 3. ऋषि ऋण आचार्य / शिक्षा शास्त्री। जिनमें भगवत गीता भी सम्मिलित है। उनके अनुसार तीन पवित्र कर्तव्य अधूरे हैं उन्होंने चौथा कर्तव्य 'मानव ऋण' बताया है। चौथे कर्तव्य को पवित्र कर्तव्यों में सम्मिलित करने में महर्षि वेदव्यास का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रत्येक मनुष्य को चार पुण्य कर्तव्यों देवऋण, पितृऋण, ऋषि ऋण और मानवऋण का पालन करना चाहिए।

प्रत्येक पीढ़ी के व्यक्ति अपनी पूर्व पीढ़ी के विद्वानों, आचार्यो तथा शिक्षाविदों के प्रति ऋण को चुकाने को बाध्य है जिन्होंने ज्ञान को दूसरी पीढ़ी के लिए संचित, विकसित और हस्तान्तरित किया। ठीक वैसे ही पुत्र अपने पवित्र कर्तव्य को कृतज्ञतापूर्वक निभाता है जैसे उसके पिता ने अपने परिवार के कल्याण के लिए अपने धार्मिक कर्तव्यों को निभाया था। यह व्यक्ति का पवित्र कर्तव्य बनता है कि वह उस ज्ञान को संचित करें, ग्रहण करें और तब उसमें उपयोगी सुधार, शोघ, व्याख्या, शिक्षण तथा लेखन द्वारा नए विचारों का विकास करके उसे अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करें।

इसलिए सही शिक्षाग्रहण करना और ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। उसे प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च स्तर तक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

फिर भी, आचार्यो पर प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक अधिक उत्तरदायित्व है। आचार्यो का उत्तरदायित्व अपने छात्रों को न केवल ज्ञान प्रदान करना है अपितु उनके चरित्र को बनाना है जिससे वे प्राप्त ज्ञान का उपयोग वृत्तिसहिता तथा समाज के लाभ के अनुसार कर सकें।

प्राचीन भारत में शिक्षा की महत्ता का वर्णन भर्तृहरि (ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी) के श्लोक में मिलता है। शिक्षा मनुष्य की विशेष अभिव्यक्ति है, शिक्षा वह धन है जिसे हानि के भय के बिना सुरक्षित रखा जा सकता है। ' 'शिक्षा से भौतिक आनंद, सुख और ख्याति प्राप्त होते हैं। शिक्षा गुस्थों की गुरू है। ' शिक्षा ही उसका मित्र है, शिक्षा परमात्मा का अवतार है। "जब व्यक्ति विदेश जाता है, उधर राज्य से सम्मान की प्राप्ति शिक्षा से होती है न कि धन से।"शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशु तुल्य है।" भर्तृहरि उज्जैन का नरेश जो दार्शनिक बन गया था के उपरोक्त श्लोक में शिक्षा की महत्ता के साथ–साथ अशिक्षित व्यक्ति को पशु समान माना गया है। ऐसा कहकर उसने सभी को ज्ञान प्राप्त करने और अगली पीढ़ी को उसका प्रसार करने की प्रेरणा दी।

हमारी सभ्यता के इस पक्ष का संकेत भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मोहिनी जैन के मुकदमे में किया गया जिसमें शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार माना गया है। उन्नीकृष्णन के मुकदमे में आदेश दिया गया कि शिक्षा का अधिकार संविधान की इक्कीसवीं धारा के अधीन मौलिक अधिकारों का एक भाग है।

पातंजलि ने संक्षिप्त मगर सार्थक अनुच्छेद में शिक्षा के इन चार महत्वपूर्ण सोपानों अथवा अवस्थाओं को पूर्ण करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को आदेश देते हुए कहा है–

1. अपने माता–पिता तथा आचार्यो से ज्ञान / शिक्षा प्राप्त करो।
2. स्वयं अध्ययन करके ज्ञान में वृद्धि करो।
3. महत्वपूर्ण ज्ञान को दूसरों को प्रदान करो। अर्थात् माता पिता के रूप में अपनी संतान को अध्यापक के रूप में छात्रों को अथवा अन्य किसी रूप में दूसरों को।
4. ज्ञान का उपयोग परिवार के लाभ के लिए तथा अपने व्यापार, पेशे या रोजगार से समाज के लाभ पहुँचाने के लिए करो।

शिक्षा के मानवीय अधिकार के उद्देश्य सुख प्राप्त करना है इसलिए इसे साक्षरता तक सीमित नहीं करना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य तो व्यक्ति का बौद्विक, मानसिक, नैतिक, शारीरिक, अर्थात् सर्वागीण विकास कर व्यक्ति को समाज की संपदा बनाना है। जब राष्ट्र और समाज अधिक संख्या में ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करने में सफल होता है, तभी वह सुख प्राप्त करता है। इस तथ्य को तैत्तरीय उपनिषद् के शिक्षावली के आठवें पाठ में बताया गया है।

यह पाठ घोषित करता है कि शिक्षा का अर्थ बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक शिक्षा है। इसमें यह भी निहित है कि किसी भी राष्ट्र का सुख और उसकी समृद्धि लोगों की शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक शक्ति के अनुपात में होती है। शिक्षा के द्वारा सभी के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सभी के सुख के लिए न सिर्फ केवल आर्थिक नियोजन ही पर्याप्त है अपितु ऐसी मौलिक शैक्षणिक योजना भी आवश्यक है जो अधिक संख्या में चरित्रवान् ज्ञानी, दृढ़ संकल्पी, नैतिक तथा शारीरिक रूप से योग्य युवकों का निर्माण करें। राष्ट्र का सुख ऐसी ही युवा पीढ़ी की संख्या के अनुपात में होगा जिसे हम सही शिक्षा द्वारा सर्जन कर सकते हैं। सभी शिक्षाशास्त्रियों और अध्यापकों का यह पवित्र और दुःसाध्य कर्तव्य है।

सभी लोगों के पास सुखी जीवन बिताने की क्षमता अथवा साधन नहीं होते। अनेक व्यक्ति घोर द्ररिद्रता, शिक्षा के अभाव, धनोपार्जन की अक्षमता, शारीरिक अपंगता, बीमारी, व्रद्धावस्था तथा परिवार में कमाने वाले सदस्य के निधन आदि से पीडित होते हैं। परन्तु इसप्रकार के सभी लोगों को घोर द्ररिद्रता की अवस्था में भी, सुखी जीवन जीने का मूल मानव अधिकार है। उनके इस अधिकार की सुरक्षा उन लोगों तथा राज्य को, कर्तव्य बोध कराने से होता है जिन लोगों पर वे आश्रित हैं।

8.6 बच्चों के अधिकार (Rights of Children)

इस बात को याद करते हुए कि मानवाधिकार की सार्वजनिक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ऐलान किया है कि बचपन विशेष देखभाल और सहायता का पात्र है। भारत में भी बच्चे के अधिकार–संबंधी घोषणा में निर्दिष्ट किया गया है, "अपनी शारीरिक तथा मानसिक अपरिपक्वता के कारण बच्चों को जन्म लेने से पूर्व और उसके बाद भी विशेष संरक्षण और देखभाल की आवश्यकता है, जिसमें उपयुक्त कानूनी संरक्षण का भी समावेश है।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लालन–पालन और गोद लेने की व्यवस्था के विशेष संदर्भ में बच्चों के संरक्षण एवं कल्याण के बारे में सामाजिक तथा कानूनी सिद्धान्तों से संबंधित घोषणा बाल न्याय प्रशासन संबंधी संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों (बेजिंग नियमों) तथा आपात और सशस्त्र संघर्ष की स्थितियों में महिलाओं एवं बच्चों के संरक्षण सम्बन्धी घोषणा की व्यावस्थाओं को सम्मिलित किया गया। प्रत्येक देश में, खास तौर से विकासशील देशों में, बच्चों के जविन की अवस्थाओं को सुधारने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के महत्व को स्वीकार किया।

वर्तमान अभिसमय के प्रयोजनों के लिए बच्चे का अर्थ अठारह साल से कम उम्र का प्रत्येक मनुष्य है, बशर्ते कि बच्चों के लिए लागू कानून के अनुसार वह इससे कम उस में ही वयस्क नहीं माना गया :

1. प्रत्येक राज्य अपने–अपने अधिकार क्षेत्र के अन्दर, अभिसमय में उल्लिखित अधिकारों को प्रत्येक बच्चे के संदर्भ में बच्चे की याद उसके माता–पिता या कानूनी अभिभावक की नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य मत, राष्ट्रीय, नृजातीय या सामाजिक मूल, संपत्ति, नियोग्यता जन्म या अन्य स्थितियों के आधार पर कोई विभेद किए बिना, सम्मान देगे और सुनिश्चित करेंगे।

2. बच्चों से सम्बन्धित सभी कार्यवाइयों में, चाहे वे कार्यवाइयां सरकारी या समाज कल्याण संस्थाओं द्वारा की जाए या न्यायालयों द्वारा अथवा प्रशासनिक प्राधिकारियों या विधायक संस्थाओं द्वारा, बच्चों के वास्तविक हित मुख्य विचारणीय तत्व होंगे।

3. सभी राज्यों का कर्त्तव्य है कि वे बच्चे के माता–पिता, कानूनी अभिभावकों या उसके लिए कानूनन अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों के अधिकारों तथा कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए उसके लिए ऐसा संरक्षण और देखभाल सुनिश्चित करेंगे जो उसके कल्याण के लिए आवश्यक हो और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी उपयुक्त वैधानिक तथा प्रशासनिक उपाय करेंगे।

4. राज्य यह भी सुनिश्चित करेंगे कि बच्चे को उसके माता–पिता की इच्छा के विरूद्ध उनसे अलग नहीं किया जाएगा, जिसका अपवाद मात्र वह स्थिति होगी जब सक्षम प्राधिकारी लागू किए जाने योग्य कानून और प्रक्रियाओं के अनुसार यह निर्णय करें।

5. बच्चे की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। इस अधिकार में किसी प्रकार की सीमाओं की कोई बाधा माने बिना, मौखिक या लिखित अथवा मुद्रित रूप में या कला के रूप में या बच्चे की पसंद के अन्य माध्यमों से सभी प्रकार की जानकारी और विचार प्राप्त करने और संप्रेषित करने का प्रयत्न करने तथा उन्हें प्राप्त और संप्रेषित करने की स्वतंत्रता के अधिकार का समावेश होगा।

6. किसी भी बच्चे के निजीपन, परिवार या घर या पत्र–व्यवहार में मनमाना या गैर कानूनी हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और न उसके सम्मान और प्रतिष्ठा पर कोई गैर–कानूनी प्रहार किया जाएगा।

7. बच्चे के अपने माता या पिता या दोनों या कानूनी अभिभावकों या उसकी देखभाल के लिए जिम्मेदार किसी अन्य व्यक्ति की देख–रेख में रहते हुए उसे सभी प्रकार की शारीरिक या मानसिक हिंसा से, चोट या दुरूपयोग से, उपेक्षा या उदासीन व्यवहार से, दुर्व्यवहार या शोषण से, जिसमें लैंगिक दुर्व्यवहार भी शामिल है, बचाने के लिए पक्षकार राज्य सभी उपयुक्त वैघानिक प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षिक उपाय करेंगे।

8. यह राज्य सरकारों का दायित्व है कि मानसिक या शारीरिक दृष्टि से विकलांग बच्चे को ऐसी परिस्थितियों में सर्वागीण और श्रेष्ठ जीवन जीना चाहिए जो मानवीय गरिमा सुनिश्चित करने वाली, स्वावलंबन को बढ़ावा देने वाली और समाज में ऐसे बच्चे की सक्रिय भागीदारी कामार्ग सुगम बनानेवाली हों।

9. सभी राज्य बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकर पारंपरिक प्रथाओं को समाप्त करने के लिए सभी प्रभावकारी और उपयुक्त उपाय करेंगे।

10. जिन राज्यों में नृजातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक समुदाय या मूलवासी समूहों के लोग रहते हैं उनमें ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय या मूलवासी समूह के बच्चे को अपने समुदाय या समूह के अन्य सदस्यों के साथ अपनी संस्कृति का उपभोग करने, अपने धर्म को मानने या

उसका आचरण करने अथवा अपनी भाषा का उपभोग करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

11. नशीली दवाओं तथा मनः–प्रभावी (साइकोट्रॉपिक) पदार्थो की प्रासंगिक अंतर्राष्ट्रीय संधियों मे जो परिभाषाएं की गई है उन परिभाषाओं के अंतर्गत आनेवाली ऐसी दवाओं या पदार्थो के निषिद्ध उपयोग से बच्चों को बचीने के लिए तथा ऐसे पदार्थो के निषिद्ध उत्पादन तथा व्यापार में बच्चों के उपयोग को रोकने के लिए पक्षकार राज्य वैधानिक, प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षिक सभी उपयेक्त उपाय करेंगे।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. संयुक्त राष्ट्र महासभा में मानवअधिकारों की घोषणा का लक्ष्य बताइये|
2. मानवअधिकारों के प्रति जागरूकता हेतु किए गए प्रभावशाली प्रयासों के नाम दीजिए|
3. शिक्षा का उद्देश्य तो व्यक्ति का बौद्दिक,मानसिक,नैतिक शारीरिक अर्थात सर्वगिक विकास कर व्यष्टि को सम्पदा बनाना है| स्पष्ट करें|

8.7 सारांश (Summary)

मानव होने के नाते जैविक एवं अजैविक आवश्यकताओं का होना स्वाभाविक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति प्राकृतिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक (मानव संसाधन) स्रोतों पर निर्भर रहता है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की व्यवस्था रहती है और सामाजिक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक भी होता है।

मानव समाज के विकास के वर्तमान स्तर पर ज्ञान, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विकास ने भौगोलिक एवं सामाजिक गतिशीलता में तीव्र वृद्धि की है। संचार एवं यातायात के साधनों की गति में तीव्र वृद्धि हो रही है। ज्ञान का अकल्पनीय भंडार इंटरनेट के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपलब्ध है। और इसमें निरतंर वृद्धि हो रही है। ज्ञान का स्रोत जन–जन तक पहुँचने और पहुंचाने का कार्य शिक्षा के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है। इसीलिए शिक्षा मानवाधिकार के रूप में स्वीकृत किया जा चुका है। प्रजातत्रीय व्यवस्थाओं में बच्चों को शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकारों के क्षेत्र में आते हैं। भारत में भी बच्चों के इस अधिकार को संवैधानिक रूप से स्वीकार ही नहीं किया गया है, विभिन्न योजनाओं के माध्यम से इसका क्रियान्वयन भी किया जा चुका है।

8.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. भारतीय संविधान में कौनसे मूल अधिकार दिये गये हैं? मूल अधिकारों की शिक्षा के क्या उद्देश्य हैं?

   What fundamental human rights are given in Indian Constitution?What are the aims of Education for Human Rights?
2. बाल अधिकार एवं शिक्षा के अधिकार के बारे में आप क्या जानते हैं? लिखें।

   What do you know about rights of children and right of education?Write down.

8.9 सन्दर्भ (References)

1. Brown,**Educational Sociology**
2. Rich Johan Martin,**Education and Human Values**.
3. Thomson,**A Modern Philosophy of Education**.
4. Mathur,S.S.,**A Sociology Approach to Indian Education**.

इकाई 9
बाल केन्द्रित शिक्षा
(Child Centered Education)

इकाई की रूपरेखा (Outline of Unit)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 बाल केन्द्रित शिक्षा (Child–Centered Education)

- 9.2.1 बाल केद्रित शिक्षा का अर्थ (Meaning of Child–Centered Education)
- 9.2.2 बाल केन्द्रित और शिक्षक केन्द्रित शिक्षा (Child–Centered and Teacher– Centered Education)

9.3 बाल केन्द्रित शिक्षा और शिक्षक की भूमिका (Child–Centered Education and the Role of Teacher)

9.4 बाल केन्द्रित शिक्षण की विधियाँ (Types of Child–Centered Education)

- 9.4.1 शिक्षण विधि अर्थ एवं विशेषता (Meaning and Characteristic of Teaching Method)
- 9.4.2 विभिन्न विधियाँ (Types of Method)
- 9.4.3 बाल केन्द्रित शिक्षा के लिए योजना (Plan of Child–Centered Education)

9.5 मूल्यांकन एवं आंकलन (Evaluation and Analysis)

- 9.5.1 मूल्यांकन : विशेषता एवं आवश्यकता (Evaluation : Characteristics and Need)
- 9.5.2 सतत–व्यापक मूल्यांकन, आन्तरिक–बाह्य मूल्यांकन (Continued–Broad Evaluation,Internal–External Evaluation)

9.6 शैक्षिक प्रौद्योगिकी (Education Technology)

9.7 सारांश (Summary)

9.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Quaestions)

9.9 संदर्भ (Reference)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं –

1. बाल केन्द्रित शिक्षा को समझना।
2. शिक्षक की भूमिका को जानना।
3. शिक्षा की विधियों की जानकारी।

4. बाल केन्द्रित शिक्षण का मूल्यांकन कैसे हो?
5. बाल केन्द्रित शिक्षा में आधुनिक प्रौद्योगिकी की महत्त्वता जानना।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

परम्परागत शिक्षा के विद्वान गुणात्मकता की बात करते हैं और उसे बनाये रखने के लिए पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु को अधिक महत्व देते रहे हैं। इस हेतु शिक्षा व्यवस्था में शिक्षाविदों के बाद मनोवैज्ञानिकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कई बार तो वे अपना प्रभुत्व बनाने के प्रयास में लगे नजर आते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के दर्शन में बालक को केन्द्र में रख शिक्षण को प्रदान करने की बात बाल मनोवैज्ञानिक अक्सर करते है। बाल मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि शिक्षा की अन्तर्वस्तु बालक के सर्वागिण विकास को ध्यान में रखकर निर्धारित की जानी चाहिए। बालक की क्षमता, रूचियाँ और रूझान को महत्व दिया जाना चाहिए ताकि बालक के व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास हो सके। लेकिन वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में परिवार और मानव समाज यानि सामाजिक सम्बन्धों की महत्वता कम होती जा रही है। इसे नकारने का परिणाम बच्चों में बढ़ती स्वेच्छाचारिका एवं उत्छृंकलता में देखा जा सकता है। अत: बाल केन्द्रित शिक्षा में आधुनिकतम शिक्षा के बीज तो होने ही चाहिए, साथ की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों को भी समाहित किया जाना चाहिए।

9.2 बाल केन्द्रित शिक्षा (Child–Centered Education)

विद्यालयी शिक्षा में प्रारम्भ में पाठ्यक्रम को अधिक महत्त्व दिया जाता था। लेकिन शिक्षा के दर्शन के विकास के साथ बालक को महत्व दिया जाने लगा है। पाठ्यक्रम के निर्धारण में बालकों की क्षमता, रूचियाँ और उनके रूझानों को ध्यान में रखा जाने लगा है।

9.2.1 बाल केन्द्रित शिक्षा का अर्थ (Meaning of Child–Centered Education)

बालकों की शिक्षा का केन्द्र पाठ्यक्रम के स्थान पर बालक बन गए हैं। क्या पढ़ाया जाना चाहिए, क्यों और कैसे पढ़ाया जाना चाहिए, आदि बिन्दु महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। अध्यापक अपने पांडित्य को प्रदर्शित करने की जगह बच्चें के मस्तिष्क में बात कैसे पहुँचायी जाए को ध्यान रखने लगे हैं। क्योंकि इस बालकेन्द्रित शिक्षा का उद्देश्य बालक का चहुँमुखी विकास करना है। बालक की रूचियों और क्षमताओं को ध्यान में रखकर ही सम्पूर्ण शिक्षा का आयोजन किया जाता है| इसमें बालक को सरल ढंग से नवीन ज्ञान रूचिपूर्ण तरीके से प्रदान करने का शिक्षा का महत्वपूर्ण तरीका है। इसमें बालकों को अत्यधिक अवसर प्राप्त होते हैं। बालकेन्द्रित शिक्षा वास्तव में बालक की व्यावहारिकता और सामाजिकता पर केन्द्रित है।

9.2.2 बाल केन्द्रित तथा शिक्षक केन्द्रित शिक्षा (Child–Centered and Teacher– Centered Education)

बाल केन्द्रित शिक्षा जैसा कि उपर बताया जा चुका है बालक पर केन्द्रित होती हैं। यह बालक की रूचि, सीखने की गति, व स्वाभाविकता पर आश्रित होती है। सीखने की प्रकिया में बालक सक्रिय रहता है। बाल केन्द्रित शिक्षा में व्यक्ति को महत्व दिया जाता है। इसमें बालक का

स्वाभाविक रूप से घर के बाहर समाजीकरण होता है। बालकों की व्यक्तिगत समस्याओं को भी दूर करने का प्रयास किया जाता है। स्वावलम्बन एवं स्वतंत्रता की भावना बालक सीखता है और उसके व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है। उसे जीवन में विभिन्न साध्यों और उनकी प्राप्ति हेतु साधनों की जानकारी प्राप्त होती है और विभिन्न साधनों में से अपनी इच्छानुसार किसी भी साधन का चयन कर उद्देश्यों की पूर्ति करता है और इस प्रकार अनुभवों से वह शारीरिक एवं मानसिक शान्ति के साथजीवन पथ पर आगे बढ़ता चला जाता है। अत: बाल केन्द्रित शिक्षा शिक्षण प्रणाली है। यह शिक्षा प्रणाली जैवकीय शिशु से एक विकसित प्रौढ़ बनने में सहायता करती है। इसमें सीखने की सभी क्रिया प्रणालियों का समावेश होता है।

दूसरी ओर, शिक्षक–केन्द्रित शिक्षा प्रणाली अब तक प्रमुख रही है। इसमें बालक के स्थान पर शिक्षक केन्द्र में होता है। समस्त शिक्षा कार्यक्रम शिक्षक को केन्द्र में मानकर आयोजित होते हैं। वास्तव में यह सामूहिक कक्षा शिक्षण पर आधारित होता है और भयनिर्मित बाह्य अनुशासन स्थापित किया जाता है। इस प्रणाली में अक्सर बालक की भावाभिव्यक्ति खुलकर सामने नहीं आती। छात्र अध्ययन के लिए उतना स्वतंत्र नहीं होता जितना कि बाल केन्द्रित शिक्षा में होता है। इस प्रणाली में शिक्षा एवं निरीक्षण पर शिक्षक का पूर्ण नियत्रंण रहता है। इसमें बालक की रूचियों और क्षमताओं का ध्यान नहीं दिया जाता है। बालक को वही पढ़ना होता है जो शिक्षक चाहता है। इस प्रणाली में सभी प्रयोगात्मक कार्य शिक्षक करते हैं। बालक को मौका दिया ही नहीं जाता और इसीलिए बालक को आत्माभिव्यक्ति का अवसर नहीं मिलता। परिणाम यह होता है कि बालक में न तो आत्मविश्वास विकसित होता है और ना ही वह आत्मनिर्भर हो पाता है। सबसे बड़ी बात सृजनात्मक शक्ति विकसित नहीं हो पाती।

9.3 बाल केन्द्रित शिक्षा और शिक्षक की भूमिका (Child–Centered Education and the Role of Teacher)

बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक की भूमिका मार्गदर्शक एवं सहयोगी की होती है। शिक्षक बालकों का प्रत्येक स्तर पर व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन करता है। इसके लिए शिक्षक को शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों के प्रति जागरूक रहना आवश्यक होता है। शिक्षक का उद्देश्य बालकों को केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होता वरन् बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक का एक मात्र उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वागिण विकास करना है। इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक, सम्बन्धित सभी बालकों की सहायता एवं उनको मार्गदर्शन देने का कार्य अन्तरंगता विकसित करके ही की जा सकती है। बाल केन्द्रित शिक्षा में बालक केन्द्र में होता है, लेकिन शिक्षक की भूमिका बालक के व्यक्तित्व के सर्वागिण विकास में नीहित है।

ऐसी स्थिति में शिक्षक की भूमिका और उसकी महत्त्वता शिक्षक की योग्यता एवं क्षमता पर निर्भर करती है। बाल केन्द्रित शिक्षा में इसीलिए शिक्षक की प्रतिष्ठा भी अधिक होती है। शिक्षक पूर्णत: बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निखारने और भविष्य में विकास के लिए मार्गदर्शन देता है। प्राचीन भारत में शिक्षक को गुरू के रूप में ईश्वर से भी अधिक महत्वता एवं प्रतिष्ठिा प्राप्त थी। यह निम्न दोहे से भी स्पष्ट हो जाता है :

गुरू गोविन्द दोनों खड़े, काकी लागू पांव,
बलिहारी गुरू आपकी, गोविन्द दियो मिलाय।

शिक्षक द्वारा दिया गया ज्ञान जगत और सृष्टि से, यहाँ तक कि स्वयं से परिचय कराता है। यह ज्ञान परिवार के सदस्य, सम्बन्धी या सामान्य जन नहीं दे सकते। सूक्ष्म एवं व्यापक स्तर का ज्ञान शिक्षक ही देता है। तर्क, विश्लेषण एवं विवेचन की क्षमता शिक्षक ही बालक को देता एवं विकसित करता है। शिक्षक बालकों में विचारधारा या परिप्रेक्ष्य की क्षमता भी विकसित करते हैं।

बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक, माली द्वारा पौधों की देखभाल के समान, बालकों का पोषण करके उनका शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास करता है। बालक को जैविकीय से मानवीय प्रवृति की ओर उन्मुख करने में शिक्षक की भूमिका परिवार के सदस्यों से अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं विशेषकर 'ज्ञान की शक्ति' से ओत–प्रोत करने का कार्य शिक्षक ही करता हैं। बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक को बिना पक्षपात के स्वतंत्र रहकर निर्णय लेना होता है कि बालक को क्या और कैसे सिखाए? स्थानीय पर्यावरण, पाठ्यक्रम, शाला समय, शाला का दैनिक कार्यक्रम, आदि का निर्णय स्थानीय समाज की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षक को करना होता है।

अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बालक केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक की मार्गदर्शक के रूप में सदैव महती भूमिका रहती है। इसके अभाव में शिक्षा का मूल्य एवं महत्व दोनों ही समाज में घटने लगते हैं।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. बाल केन्द्रित शिक्षा क्या हैं|
2. बाल केन्द्रित शिक्षा तथा शिक्षक केन्द्रित शिक्षा में प्रमुख अन्तर बताइये|
3. बाल केन्द्रित शिक्षा में शिक्षक की भूमिका कैसी होती हैं?

9.4 बाल केन्द्रित शिक्षण की विधियाँ (Types of Child–Centered Education)

वर्तमान युग में शिक्षक विधि से सम्बन्धित दो विचारधाराएँ प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। प्रथम विचारधारा के अनुसार शिक्षक को विभिन्न शिक्षण विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है, जिनके द्वारा वह अपने अध्यापन कार्य को सफलतापूर्वक संचालित कर सकता है, जिससे उनकी विषय वस्तु सम्बन्धी ज्ञान की कमी की पूर्ति होती है। दूसरी विचारधारा के अनुसार यदि शिक्षक को विषयवस्तु सामग्री की पूर्ण जानकारी है तो उसे किसी भी प्रकार की शिक्षण विधियों को जानने की आवश्यकता नहीं होती है। इसप्रकार प्रथम विचारधारा शिक्षण विधि को महत्व देती है जबकि दूसरी विचारधारा विषय वस्तु को समझने पर बल देती है। ये दोनों विचारधाराएँ अपने में पूर्ण नहीं हैं। शिक्षक को सफल एवं प्रभावी अध्यापन कार्य हेतु विषय वस्तु तथा शिक्षण विधियों दोनों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। शिक्षण विधि के महत्व के सम्बन्ध में मुदालियर आयोग ने लिखा है कि "यहाँ तक कि सर्वोत्तम पाठ्यक्रम एवं सर्वागीण विषय वस्तु (सिलेबस) भी मरे के समान हैं जब तक कि उसके लिए उचित शिक्षकों एवं उचित शिक्षण विधियों की व्यवस्था न हो।" इसलिए शिक्षक को उचित शिक्षण विधियों का ज्ञान होना अत्यधिक आवश्यक है।

श्रीमती एस.के. श्रीधर का भी मानना है कि "जिस प्रकार एक सैनिक को युद्ध क्षेत्र में लड़ने के लिए विभिन्न हथियारों का ज्ञान आवश्यक होता है, उसी प्रकार अध्यापक को भी शिक्षण विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है।" इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों को शिक्षण विधियों का इगन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

9.4.1 शिक्षण विधि का अर्थ एवं विशेषता (Meaning and Definition of Teaching Method)

शिक्षण विधि का आशय इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि किसी भी विषय के ज्ञान को छात्रों तक किस प्रकार पहुँचाया जाय? किसी भी विषय के शिक्षण में विधि का वही महत्व है जो किसी निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए सत्य मार्ग का होता है। अत: ज्ञान को छात्र में प्रेषित करने का कार्य विधियों द्वारा होता है। एस.के. कोचर लिखते है कि "जिस प्रकार एक सैनिक के लिए लड़ने के अनेक हथियारों का ज्ञान होना आवश्यक है। उसी प्रकार शिक्षक को भी शिक्षण की विभिन्न पद्तियों का ज्ञान होना चाहिए। किस समय कौन–सी विधि अपनानी चाहिए? यह उसके निर्णय पर निर्भर है।"

शिक्षण विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ है–

(1). शिक्षण विधि प्रयोग करने योग्य, व्यावहारिक तथा सुनिश्चित होती है।

(2). शिक्षण विधि वैयक्तिक शिक्षण के सिद्धान्तों पर आधारित होती है।

(3). शिक्षण विधि छात्रों को अधिगम प्रेरणा प्रदान करने में सक्षम होती है

(4). शिक्षण विधि पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होती है

(5). शिक्षण विधि छात्रों में अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन लाने में सक्षम होती है

(6). शिक्षण विधि के द्वारा शिक्षक को वांछनीय तथा अवाछनीयता का ज्ञान होता है, क्योंकि विधि कलात्मक होती है।

9.4.2 विभिन्न विधियाँ (Types of Method)

शिक्षण विधियों शिक्षक का कार्य विधि के तरीके को स्पष्ट करती है। यह ज्ञान को विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पहुँचाता है और तर्क एवं विश्लेषण की क्षमता विकसित करता है। प्रमुख विधियां निम्न, प्रकार हैं :

1. प्रोजेक्ट योजना विधि : प्रोजेक्ट विधि एक योजना है, जिसका प्रयोग किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया जाता है। उसके लिए पहले शिक्षक बालकों के सामने एक समस्या उपस्थित करता है। तत्पश्चात् उस समस्या को सुलझाने के लिए सभी बालक अपनी–अपनी रूचियों के अनुसार विभिन्न विषयों का स्वाभाविक रूप से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

2. कहानी विधि : बालकेन्द्रित शिक्षा में कहानी कहना एक प्राचीन कला है। कथा प्रणाली में कहना, बातचीत करना एवं भाषण देना आदि का समावेश होता है। छोटी कक्षाओं में इतिहास और भूगोल–शिक्षण में यह सर्वोत्तम विधि है। छात्र स्वाभाविक रूप से कहानी–प्रिय होते है। प्लेटों ने भी इस विधि को छोटे बालकों के लिए लाभप्रद तथा उपयोगी बताया था। कुछ शिक्षकों में कहानी कहने की कला जन्मजात होती है। प्रत्येक शिक्षक को उस कला का जानना आवश्यक है। यदि किसी शिक्षक को यह कला नहीं आती है तो उसे प्रयत्न करके यह कला अर्जित करनी चाहिए। ऐसा करने से ही वह सफल शिक्षक बन सकता है।

3. अभिनय विधि : बाल केन्द्रित शिक्षा में अभिनय विधि का प्रयोग एक आधुनिक देन है। इस विधि के द्वारा कठिन विषयों को मनोरंजन बनाया जा सकता है। उसी के फलस्वरूप छात्र क्रिया में रुचि दिखाने लगते हैं। अभिनय विधि का अर्थ अभिनय करने का अर्थ किसी व्यक्ति का अनुसरण करना होता है। छात्र किसी पात्र, व्यापरियों तथा फेरी लगाने वालों का अभिनय करते हैं। इस प्रकार छात्रों में स्वयं करके सीखना आ जाता है। इतिहास और भाषा जैसे विषयों में अभिनय विधि का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।

4. भ्रमण विधि : छात्र कक्षा–शिक्षण के ज्ञान को जल्दी भूल जाते हैं, क्योंकि कक्षा–शिक्षण के वास्तविक अनुभव प्राप्त नहीं होते और न ही विद्यार्थी को प्रत्यक्ष सूचना ही मिलती है। यदि ताजमहल पढ़ाना है तो उसका वास्तविक अनुभव प्रदान करने के लिए ताजमहल दिखाना आवश्यक होता है। क्षेत्रीय पर्यटन से केवल शैक्षणिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता, बल्कि वास्तविक ज्ञान का प्रयोग करने का अवसर भी प्राप्त होता है और छात्रों की निरीक्षण शक्ति का विकास होता है।

भ्रमण के द्वारा छात्रों को स्वयं प्रत्यक्ष अधिगम अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। सबसे पहले प्रोफेसर रान ने विद्यालय भ्रमण की शुरुआत की थी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर छात्र की जितनी अधिक इन्द्रियाँ किसी कार्य को करने में क्रियाशील होती है, वह विषय उतना ही शीघ्र एवं दीर्घकालिक स्मृति में रहता है। क्षेत्रीय भ्रमण में ज्ञानेन्द्रियाँ कार्यरत होती हैं, जिनके माध्यम से उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

5. अवलोकन विधि : बालकेन्द्रित शिक्षा में अवलोकन विधि प्राथमिक कक्षाओं में विषेष रूप से उपयोगी है, क्योंकि इस विधि के अन्तर्गत छात्र स्वयं अवलोकन कर, अपने तथा वातावरण के सम्बन्धों का अनुभव कर उनके विषय में सोचता है और उनसे अधिक सम्पर्क स्थापित कर अपने ज्ञान में वृद्धि करता है। अवलोकन विधि में यह आवश्यक है कि जिस स्थान का अवलोकन करना हो, उसके विषय में शिक्षक को पूर्व जानकारी होनी चाहिए जिससे वह छात्रों के सम्मुख प्रश्न और निर्देशन द्वारा उसका विवेचन कर सके।

6. इकाई विधि : शिक्षा के क्षेत्र में सर्वप्रथम इसका प्रयोन सन् 1920 ई. में किया गया था। इकाई को शिक्षा के क्षेत्र में लाने का श्रेय हरबर्ट महोदय को है। जिस प्रकार हम एक शीर्षक अथवा खण्ड को पढ़ाने के लिए कालांश की दैनिक पाठ योजना बनाते हैं, उसी प्रकार पूरे अध्याय की एक योजना बनायी जाती है, जिसके अनतर्गत पाठ्य–वस्तु से सम्बन्धित शिक्षक एवं छात्र की क्रियाएँ, सहायक सामग्री एवं मूल्यांकन की प्रविधियों को समाहित कर एक योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से लिखा जाता है। इकाई योजना कुल मिलाकर एक विषय के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति करती है। इकाई सम्पूर्ण पाठ्यक्रम और दैनिक पाठ के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है।

7. आगमन विधि : आगमन विधि में कुछ उदाहरण छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इन उदाहरणों की सहायता से छात्र सामान्यीकरण करते हैं। इस प्रकार छात्र का ज्ञान स्थायी हो जाता है।"जब कभी छात्रों के समक्ष अनेक तथ्य, उदाहरण या वस्तुएँ प्रस्तुत करते हैं तथा फिर निष्कर्ष निकलवाने का प्रयत्न करते हैं, तो शिक्षण की आगमन विधि का प्रयोग किया जाता है।" आगमन विधि में शिक्षण के तीन सूत्रों का प्रयोग किया जाता है – (i)ज्ञात से अज्ञात की ओर, (ii) विशिष्ट से सामान्य की ओर तथा (iii) स्थूल से सूक्ष्म की ओर।

8. निगमन विधि : बालकेन्द्रित शिक्षा में निगमन विधि से छात्रों को शिक्षा देते समय सामान्य नियमों का ज्ञान करा दिया जाता है उसके पश्चात् प्रयोग, अवलोकन आदि की सहायता से उसे सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। इस अर्थ में निगमन विधि आगमन विधि के

ठीक विपरीत प्रतीत होती है। लेण्डन के अनुसार "निगमन विधि द्वारा शिक्षण में प्रथम परिभाषा या नियम का ज्ञान करा दिया जाता है। तत्पश्चात् उसके अर्थ की सावधानी से व्याख्या की जाती है। अन्त में तथ्यों का प्रयोग करके उसे पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाता है। "इस विधि में दो सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। ये सूत्र इस प्रकार है – (ii) सामान्य से विशिष्ट की ओर तथा (ii) सूक्ष्म से स्थूल की ओर।

9. परिचर्चा विधि : परिचर्चा विधि शिक्षण की वह विधि है जिसमें शिक्षक तथा छात्र मिलकर किसी प्रकरण, प्रश्न या समस्या के सम्बन्ध में स्वतन्त्रतापूर्णक सामूहिक वातावरण में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इसके अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए आगे कुछ परिभाषाएँ दी जा रही हैं :– जेम्स एल.ली के अनुसार परिचर्चा एक शैक्षिक समूहिक क्रिया है, जिसमें शिक्षक तथा छात्र सहयोगी रूप से किसी समस्या या प्रकरण पर बातचीत करते हैं।" योकम तथा सिम्पसन के अनुसार "परिचर्चा बातचीत का एक विशिष्ट स्वरूप है, इसमें सामान्य बातचीत की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं विवेकयुक्त विचारों का आदान–प्रदान होता है। सामान्यत: परिचर्चा में महत्वपूर्ण विचारों एवं समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है।"

10. क्रियापरक या गतिविधि आधारित शिक्षा विधि : परम्परागत शिक्षा प्रणाली में क्रियापरक शिक्षण पर लेशमात्र ध्यान नहीं दिया जाता था तथा अध्यापक द्वारा छात्र के मस्तिष्क में पुस्तकीय ज्ञान को ठूँस–ठूँस कर भरने का प्रयास किया जाता था। इस शिक्षण विधि का कॉमेनियस ने विरोध किया तथा छात्र क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। रूसो को इस सिद्धान्त का प्रवर्तक कहा जाता है। रूसो का कथन है कि 'यदि आप अपने छात्र की बुद्धि का विकास करना चाहते हैं तो उस शक्ति का विकास करना चाहिए, जिसे इसको नियन्त्रित करता है। उसको बुद्धिमान और तर्कपूर्ण बनाने के लिए उसे हष्ट–पुष्ट और स्वस्थ बनाना जरूरी है।" क्रियात्मक विधि का अर्थ है – छात्र का अपनी स्वयं की क्रिया के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। छात्र की क्रिया से तात्पर्य है कि जिस क्रिया को बालक किसी उद्देश्य से पूर्ण करता है और उसको पूर्ण करने में उसका शरीर और मस्तिष्क दोनों क्रियाशील रहते हैं। इस आधार पर यह ज्ञात होता है कि छात्र की क्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं – शारीरिक तथा मानसिक। पहल कदमी, आत्मक्रिया एवं आत्म अभिव्यक्ति इसके प्रमुख अंग माने जाते हैं। क्रियात्मक या क्रिया परक विधि का स्थान कक्षा–कक्ष और इसका साधन सग्रिहक शिक्षण होता है। क्रियापरक विधि का प्रयोग पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण विषयों के शिक्षण के लिए किया जाता है।

11. शिक्षक समाख्या योजना शिक्षक समाख्या योजना का क्रियान्वयन यूनीसेफ की सहायता से मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं राज्य सरकार का शिक्षा विभाग चरणबद्ध तरीके से संचालित कर रहा है। शिक्षक समाख्या एक ऐसी विधि है जिसमें अध्यापक के अध्यापन कार्य को इतना समर्थ एवं रूचिकर बनाया जाय, जिससे वह बालकों को रोचक ढंग से पढ़ा सके, जिससे छात्र भी सरलतापूर्वक पठन–पाठन कर सकें। इस विधि के द्वारा शिक्षक एवं उसके शिक्षण की गुणवत्ता से सम्बधित ऐसी योजना बनायी जाती है, जिससे छात्र पढ़ने–लिखने के प्रति आकर्षित होकर एक श्रेष्ठ शैक्षिक वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकें। शिक्षण के वातावरण सृजन हेतु अध्यापक उन सभी साधनों का उपयोग करेगा, जो शिक्षा के आवश्यक उपयोगी, रोचक और प्रभावकरी उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक होंगे।

9.4.3 बाल केन्द्रित शिक्षा आयोजना (Plan of Child–Centered Education)

किसी कार्य को सफलतापूर्वक करते हुए निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन 'योजना कहलाता है। इसके अन्तर्गत करणीय कार्य के विभिन्न पक्षों पर पूर्व चिन्तन किया जाता है, ताकि वह कार्य कुशलतापूर्वक एवं प्रभावशाली ढंग से पूर्ण किया जा सके। योजना द्वारा कार्य करने में क्रमबद्ता आ जाती है। इसलिए बालकेन्द्रित शिक्षा में शिक्षण को उद्देश्यनिष्ठ बनाने के लिये कार्य का योजनाबद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षण योजना को मुख्य रूप से दो वर्गो में विभाजित किया जाता है –

(i) दीर्घकालिक योजना : इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण सत्र के लिए शिक्षण योजना (वार्षिक योजना) तैयार की जाती है तथा उसके विभाजित अंशों के रूप में मासिक और साप्ताहिक योजनाएँ तैयार की जाती है।

(ii) अल्पकालिक योजना : इसके अन्तर्गत इकाई तथा दैनिक पाठ योजना का सम्मिलित किया जाता है।

9.5 मूल्यांकन एवं आंकलन (Evaluation and Analysis)

एक समय था जब विद्यालय शिक्षा का मुख्य कार्य छात्रों को विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करना था और इस उद्देश्य से ही छात्रों की प्रगति का मापन किया जाता था। अन्य शब्दों में छात्रों की प्रगति का मापन करने के लिए विभिन्न परीक्षाओं का आयोजन किया जाता था जो आज भी प्रचलित हैं। इस प्रकार की परीक्षाओं का आयोजन करने का मुख्य लक्ष्य यह पता लगाना था और है कि छात्र ने पाठ्यवस्तु को किस सीमा तक ग्रहण किया है। परन्तु इस प्रकार की परीक्षाओं का सबसे बड़ा दोष है कि इनके द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व के अन्य पक्षों का ज्ञान नहीं हो पाता, अर्थात् ये परीक्षाएँ छात्रों की शैक्षिक प्रगति या उपलब्धि की ही जाँच करती हैं, उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की नहीं। परीक्षाओं के इन दोषों को दूर करने के लिए ही मूल्यांकन की अवधारणा का नए स्वरूप में जन्म हुआ है। इसका श्रेय अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री राइस को जाता है। बाल केन्द्रित शिक्षा में मूल्यांकन की आवश्यकता बालक के शैक्षिक विकास का आधार है।

9.5.1 मूल्यांकन : विशेषता एवं आवश्यकता (Evaluation : Characteristics and Need)

शिक्षा में मूल्यांकन विधि की अवधारणा का प्रयोग पिछले दों–तीन दशकों में ही हुआ है। इसके अनुसार शिक्षण के उद्देश्यों को सीखने के अनुभवों तथा परीक्षणों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इससे शिक्षण तथा परीक्षण – दोनों ही क्रियाएँ साथ–साथ चलती हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ पूर्व निर्धारित उद्देश्यों पर आधारित होती है। मूल्यांकन एक व्यापक क्रिया मानी जाती है। इस क्रिया में छात्रों की सफलताओं का सही अनुमान लगाया जाता है। इसमें छात्रों की कमजोरियों का भी ज्ञान कर लिया जाता है। मूल्यांकन में छात्र के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक इत्यादि सभी गुणों की परीक्षा सम्मिलित रहती है। मूल्यांकन के द्वारा शिक्षा जगत् में अनेक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं।

मूल्यांकन का अर्थ : मूल्यांकन दो शब्दों से मिलकर बना है – मूल्य और अंकन इस प्रकार मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ हुआ छात्र के गुण दोषों की व्याख्या करके उसके सम्बन्ध में, उचित निर्णय करना अथवा उसके यथार्थ मूल्य का निर्धारण करना। वास्तव में मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षक व छात्र यह निर्णय करते हैं कि शिक्षण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा रहा है अथवा नहीं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्यांकन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी कार्य का मूल्य निश्चित किया जाता है। हम प्रत्येक प्रकार की योग्यता का मूल्यांकन कर सकते हैं।

मूल्यांकन की विशेषताएँ : मूल्यांकन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ –

(1). मूल्यांकन का कार्य यह मापन करना है कि किसी बालक की निश्चित उद्देश्य की ओर क्यों प्रगति हुई हैं?

(2). मूल्यांकन की प्रक्रिया में वे सभी व्यक्ति भाग लेते हैं, जिनके द्वारा यह संचालित की जाती है।

(3). मूल्यांकन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

(4). मूल्यांकन निदानात्मक होता है। इसके द्वारा बालक की वर्तमान दशा में सुधार किया जाता है तथा समस्याओं के कारण का पता चलता है।

(5). मूल्यांकन की प्रक्रिया यह निश्चत करती है कि आगामी समय के लिए नियोजन करने हेतु क्या किया जा चुका है।

(6). मूल्यांकन में श्रम, धन और समय की अधिक आवश्यकता होती है।

(7). मूल्यांकन में कई परीक्षाओं का समावेश होता है।

(8). मूल्यांकन में सार्थकता के साथ भविष्यवाणी भी की जा सकती है।

(9). मूल्यांकन की सरलता उस वस्तु पर निर्भर रहती है, जिसका मापन किया जा सकता है। कुछ वस्तुओं का मापन सरलता से किया जा सकता है और कुछ वस्तुओं के मापन में कठिनाई आती है।

(10). मूल्यांकन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हो चुके हैं? इसका ज्ञान किया जा सकता है।

(11). यह शिक्षा प्रणाली का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है।

(12). मूल्यांकन अगले स्तर के लिए आधार प्रस्तुत करता है तथा व्यापक रूप से सूक्ष्मतः प्रगति का भी ज्ञान प्राप्त करता है।

मूल्यांकन की आवश्यकता : बालक को शिक्षा देने के कुछ उद्देश्य होते हैं। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम बनाया जाता है। मूल्यांकन से यह ज्ञात किया जाता है कि क्या पाठ्यक्रम का निर्माण सही दिशा में किया गया है? क्या शिक्षण पद्धति ठीक है? शिक्षक अपने प्रयास में कहीं तक सफल रहा है? परीक्षा का उद्देश्य इसी सफलता का मापन करना होता है। स्पष्ट है कि मूल्यांकन शिक्षक, माता–पिता तथा छात्र तीनों के लिए आवश्यक होता है। संक्षेप में मूल्यांकन की आवश्यकता निम्नलिखित तीन पहलुओं के लिए होती है –

(i) मूल्यांकन की प्रशासनिक आवश्यकता

(ii) मूल्यांकन की शैक्षिक आवश्यकता

(iii) मूल्यांकन की शैक्षिक अनुसंधान में आवश्यकता

9.5.2 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन : आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकन (Continued–Broad Evaluation,Internal–External Evaluation)

छात्र–छात्राओं की अधिगम प्रक्रिया का निर्माण होता है। इसके लिए उनका मूल्यांकन रचनात्मक तथा विकासात्मक दृष्टि से किया जाता है। इसके लिए दक्षताधारित मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है, जिसके तहत छात्रों द्वारा सीखे गये रचनात्मक कौशलों का आकलन होता है। इसके विपरीत छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में कौन–कौन से परिवर्तन हो रहे हैं, इस हेतु व्यापक मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षताधारित मूल्यांकन, व्यापक मूल्यांकन का केन्द्रबिन्दु है, किन्तु आकार एवं प्रकार में यह व्यापक मूल्यांकन से छोटा है।

सतत् मूल्यांकन : सतत् मूल्यांकन योजना को निरन्तर मूल्यांकन योजना भी कहते हैं|सतत् मूल्यांकन का आशय उस परीक्षण से है, जिससे छात्र के अध्ययन एवं उपलब्धियों का प्रतिमाह लेखा–जोखा लिया जाता है। सतत् मूल्यांकन पद्धति में आमतौर पर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को दस इकाईयों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक माह उस इकाई का अध्ययपन कराने के बाद स्वाभाविक रूप से परीक्षण किया जाता है। जिसका व्यवस्थित अभिलेख रखा जाता है। वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण मूल्यांकन के प्राथमिक और पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में सतत् मूल्यांकन पद्धति कहीं–कहीं प्रचलित है, किन्तु यह उस रूप में नहीं है, जैसा कि सतत् मूल्यांकन के मौलिक स्वरूप में होना चाहिए। इससे मात्र ज्ञानार्जन के शैक्षिक कौशल का ही मूल्यांकन किया जाता है। शैक्षिकेतर उपलब्धियों का कोई मूल्यांकन नहीं किया जाता है।

वास्तव में सतत् मूल्यांकन सार्थक ज्ञान के लिये निदान एवं उपचार का पथ प्रशस्त करता है। यदि एक प्राथमिक शिक्षक अपने ज्ञापन एवं कार्यकुशलता की सहायता से मूल्यांकन का प्रयोग विद्यार्थी के ज्ञानार्जन की कठिनाईयों और उसके कारणों का निदान करने के लिये कर सके, तो वह उचित उपचारात्मक साधन अपनाकर उसके प्रगति–रोध एवं क्षति को कम कर सकता है और इस तरह उसे अधिकतम ज्ञान प्राप्त करने में सहायता कर सकता है। सार्थक ज्ञान का अर्थ है – विद्यार्थी की वांछनीय कार्यक्षमताओं एवं योग्यताओं का विकास, जिससे कि वह भविष्य में अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके। सार्थक ज्ञान कई तथ्यों पर निर्भर करता है जैसे विद्यार्थी की रूचि, शिक्षा का स्तर ज्ञानार्जन के लिए उपलब्ध समय एवं शिक्षा से लाभ उठाने की क्षमता आदि।

व्यापक मूल्यांकन : दक्षता आधारित मूल्यांकन प्रतिदिन कक्षा में शिक्षण के अन्तर्गत छात्रों में दक्षता सिखाने के बाद किया जाता है, किन्तु छात्रों की दक्षता के अतिरिक्त उनमें संज्ञानात्मक पक्ष, भाव पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष भी सम्मिलित होते हैं, जिनका मूल्यांकन दक्षताधारित विधि से सम्भव नहीं होता है। इसलिए छात्रों के चहुँमुखी विकास हेतु व्यापक मूल्यांकन की आवश्यकता होती हैं|

आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यांकन : प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रतिबद्धता को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। प्राथमिक शिक्षा में आन्तरिक मूल्यांकन की व्यवस्था को कायम रखा गया है, किन्तु उच्च प्राथमिक विद्यालयों में बाह्य मूल्यांकन की व्यवस्था है। न्यूनतम अधिगम

स्तर की संकल्पना के लागू होने के बाद बाह्य मूल्यांकन अनुपयुक्त सा प्रतीत होने लगता है, फिर भी इसे न्यूनाधिक रूप में लागू किया गया है। आन्तरिक मूल्यांकन से आशय है कि प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक द्वारा सतत रूप से बालक की उपलब्धियो का मूल्यांकन, जिससे बालक का दैनिक साप्ताहिक, मासिक, षट्मासिक एवं वार्षिक विकास तथा अधिगम दर का सही ज्ञान हो सके, जबकि बाह्य मूल्यांकन का सम्बन्ध छात्र की बाह्य परीक्षा से होता है, जिसका अंकन अन्य अध्यापकों द्वारा किया जाता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. बाल केन्द्रित शिक्षण की प्रमुख विधियों के नाम दीजिये|
2. मूल्यांकन का अर्थ बताइये|
3. सतत एवं व्यापक तथा आंतरिक एवं बाह्य मूल्यांकन के प्रकार बताइये|

9.6 शैक्षिक प्रौद्योगिकी (Education Technology)

शिक्षाशास्त्र का कोई भी अंग चाहे वह विधियों तथा प्रविधियों का हो, चाहे उद्देश्यों का हो, चाहे शिक्षण–प्रक्रिया का हो, चाहे शोध का हो, बिना तकनीकी के अपंग, विवश और कमजोर महसूस होता है। छात्राध्यापकों की चाहे सैद्धान्तिक समस्याएँ हों, चाहे उसके प्रयोगात्मक शिक्षण के क्षेत्र में अड़चन हो, तकनीकी हमारी सहायता करती है। सच तो यह है कि तकनीकी विज्ञान इतना समृद्ध और शक्तिशाली होता जा रहा है कि बिना इसका अध्ययन किये छात्राध्यापकों का शिक्षण सम्बन्धी ज्ञान या उनके परीक्षण तथा प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान और कौशल अधूरे समझे जाते हैं। शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षा के क्षेत्र में पुरानी अवधारणाओं में आधुनिक सन्दर्भ के साथ–साथ अभूतपूर्व क्रान्तिकारी परिवर्तन कर उन्हें एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है।

पहले शैक्षिक तकनीकी को दृश्य–श्रव्य सामग्री से और कक्षा में अध्यापन सामग्री से सम्बन्धित माना जाता था लेकिन अब इसका स्वरूव दृश्य–श्रव्य के सामन नहीं है। अध्यापक प्रक्रिया के मशीनीकरण के कारण शैक्षिक तकनीकी का खूब विकास हुआ है। आजकल शिक्षण प्रक्रिया में अध्ययन मशीनें, रेडियों, दूरदर्शन, टेपरिकॉर्डर, कम्प्यूटर और भाषा प्रयोगशालाओं में खूब प्रयोग हो रहा है। दूर बैठा छात्र बिना अध्यापक के अध्ययन कर रहा है। अध्यापन प्रक्रिया में मशीनीकरण से शैक्षिक तकनीकी के सम्प्रत्यय का विकास हुआ है।

9.7 सारांश (Summary)

परम्परागत शिक्षा प्रणाली से अलग बाल केन्द्रित शिक्षा औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं का परिणाम है। परम्परागत शिक्षा प्रणाली में पाठ्य सामग्री यानि ज्ञान अर्जन की मात्रा का ज्ञान परीक्षाओं के माध्यम से हो पाता था। लेकिन परिवर्तन की प्रक्रियाओं ने शिक्षा और शिक्षण पद्धति को लेकर नई विचारधाराओं को जन्म दिया है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान की अन्तर्वस्तु के साथ ही बालक ही क्षमता एवं योग्यता का मूल्यांकन भी आवश्यक माना है। क्योंकि आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वागिण विकास करना है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति ने बालक के मूल्यांकन की पद्धति को बदलने पर भी जोर दिया है। अब सतत एवं व्यापक मूल्यांकन पर जोर दिया जाने लगा है। अत: आतरिक मूल्यांकन की महत्वतता बढ़ गयी है। ऐसी स्थिति में शिक्षक की भूमिका ओर भी गंभीर होती चली जा रही है।

9.8 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1. बाल केन्द्रित शिक्षा से आप क्या समझते हैं? यह शिक्षक केन्द्रित शिक्षासे कैसे भिन्न है? What do you understand by child centered education?How it is different than teacher centered education?

इकाई–10
जनसंख्या शिक्षा
Population Education

इकाई की रूपरेखा (Outline of Unit)

10.0 उद्देश्य (Aims and Objectives)

10.1 भूमिका (Introduction)

10.2 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता (Need of Population Education)

10.3.1 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Population Education)

10.3.2 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Population Education)

10.3.3 जनसंख्या शिक्षा – शिक्षण की अवधारणा (Concept of Teaching– Population Education)

10.4 जनसंख्या सांख्यिकी – भारत एवं राजस्थान (Population Statistics–India and Rajasthan)

10.5 जनसंख्या शिक्षा की विषय–वस्तु (Content of Population Education)

10.6 जनसंख्या शिक्षा की शिक्षण विधियॉ (Methods of Population Education)

10.7 जनसंख्या शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यकम के उद्देश्य (Objectives of Teachers Training Programme in Reference of Population Education)

10.8 शिक्षक प्रशिक्षण कार्यकम के लिये पाठ्य–बिन्दु (Content for Teacher Training programme)

10.9 सारांश (Summary)

10.10 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

10.11 संदर्भ (References)

10.0 उद्देश्य (Aims and Objectives)

जनसंख्या शिक्षा पाठ को पढ़ने के बाद आप व्यवहार में निम्न परिवर्तन पायेगे :–

1. जनसंख्या शिक्षा के अर्थ व आवश्यकता से परिचित हो सकेगें।
2. जनसंख्या शिक्षा व सामान्य शिक्षा में अन्तर कर सकेगें।
3. जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य व विषय–वस्तु का निर्धारण कर सकेगें।
4. जनसंख्या शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों से परिचित हो सकेगें।
5. शिक्षक प्रशिक्षण कार्यकम में जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य व विषय–वस्तु का निर्धारण कर सकेगें।

10.1 भूमिका (Introduction)

किसी भी देश एवं उसके समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नागरिकों को योग्य बनाने तथा उनके विकास करने का कार्य शिक्षा का है। शिक्षा के द्वारा बालक का सर्वागीण विकास किया जाता है, तथा उसे इतना सक्षम बनाया जाता है कि वह समाज की देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, जब समाज की आवश्यकताओं में

अब हम देखें कि भारत में जनसंख्या का इतिहास क्या रहा है? भविष्य में जनसंख्या का अनुमान व वर्तमान में जनसंख्या की स्थिति क्या है और भारत वर्ष में जनसंख्या शिक्षा की क्यों आवश्यकता है? इंचरवर्तन होता है, तो शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आज भारत की जनसंख्या विस्फोट स्थिति में पहुँच गई है। भारत में तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के कारण हमारे सभी प्राकृतिक संसाधनों में होती जा रही है। निर्धनता और बेरोजगारी विकराल रूप धारण कर चुकी है, पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है, जल का स्तर प्रति दिन गिरता जा रहा है। विकास योजनाओं का समुचित लाभ नहीं मिल पा रहा है। इन सब का मूल कारण है– भारत में जनसंख्या वृद्धि।

10.2 जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता (Need of Population Education)

आजादी के पश्चात् 1951 में भारत की जनसंख्या 36.10 करोड़ थी और 2001 में 102.70 करोड़ हो गई अर्थात 50 वर्षो में भारत की जनसंख्या तिगुनी से भी अधिक 66.50 करोड़ बढ़ गई। भारत की भूमि में 1951 से अब तक एक की भी वृद्धि नहीं हुई भारत में प्रति मिनिट 50 व्यक्ति और जुड़ जाते हैं। भारत का क्षेत्रफल विश्व की तुलना में 2.5 प्रतिशत है तथा विश्व की तुलना में 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, अर्थात 25 प्रतिशत भूमि पर 16 प्रतिशत आबादी है। भारत में जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई है। इसके लिए जनसंख्या नियन्त्रण हेतु भावी नागरिकों में भी वैचारिक परिवर्तन करना आवश्यक है।

विगत 25 वर्षा से परिवार कल्याण कार्यकम में सर्वाधिक ध्यान देने तथा अत्यधिक धन खर्च करने पर भी वांछित परिणाम सामने नहीं आए हैं। इसका कारण है– भारतीयों की जनसंख्या के प्रति जागरूकता का न होना, हमारी ऐसी रूढ़िगत प्राचीन परम्पराएं एवं मान्यताएं हैं, जो कि जनसंख्या वृद्धि में सहायक है। इन कारणों को दूर करने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि बालकों में वैचारिक स्तर पर सुधार लाया जाए। किशोरावस्था में परिपुष्ट विचारधाराएं, मान्यताएं तथा विश्वास स्थायी हो जाते हैं और बालक, युवक बनने पर उन विचारों की क्रियान्विति करता है इसलिये यह आवश्यक है कि विद्यालयों में जनसंख्या शिक्षा दी जाए।

10.3.1 जनसंख्या शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Population Education)

जनसंख्या शिक्षा को प्रारम्भ में परिवार नियोजन शिक्षा या यौन शिक्षा के रूप में शिक्षा पद्धति के एक भाग के रूप में जाना जाता था परन्तु यह स्पष्ट समझना आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा तो परिवार नियोजन है और न ही यौन शिक्षा। यह दूसरी बात है कि इन दोनों

से सम्बन्धित बातों का समावेश जनसंख्या शिक्षा के अन्तर्गत किया जा सकता है। जनसंख्या शिक्षा जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है मूलतः तीन शब्दों का योग है जिसका अर्थ है–

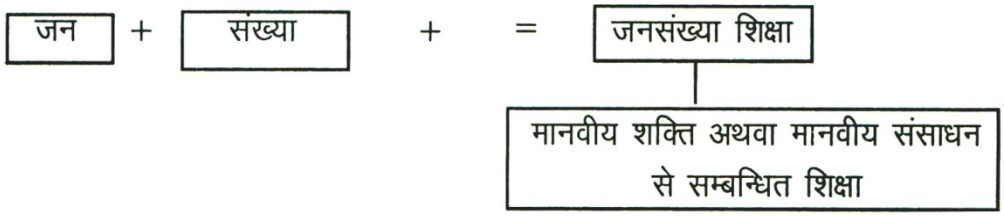

वस्तुतः जनसंख्या शिक्षा का प्रत्यय नवीन है : जनसंख्या शिक्षा जीवन स्तर उच्च बनाने तथा सुखी जीवन की सम्भावनों की वृद्धि करने वाली शिक्षा ही है। जनसंख्या शिक्षा मानव के ज्ञान, बोध एवं व्यवहार को जागृत करने, परिष्कृत करने एवं नवीन अथवा समयानुसार विचार प्रदान करने की शिक्षा है।

परिभाषाऐ (Definitions)

जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक नवाचार है। यह शैक्षिक कार्यक्रम है जो शिक्षार्थी में जनसंख्या सम्बन्धी विचारधारा को विकसित करता है।

"जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा छात्रों को जनसंख्या वृद्धि और जीवन स्तर के मध्य अर्न्तसम्बन्धों की जानकारी दी जाती है, ताकि वे उच्च स्तर के जीवनयापन की धारणा बनाकर जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं का हल ढूंढने के प्रति प्रयत्नशील हो।"

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रषिक्षण परिषद (NCERT) के अनुसार :–

"जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रक्रिया है जिससे सीखने वालों में सतत् विकास एवं जनसंख्या के मध्य अन्तर्सम्बन्धों, जनसंख्या परिवर्तन के कारण, परिणाम तथा जनसंख्या स्थिरीकरण की आवष्यक दशाओं के सम्बन्ध में बोध विकसित हो सके।"

"जनसंख्या शिक्षा एक ऐसा शैक्षिक कार्यक्रम है जिसके द्वारा विद्यार्थी जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं को समझकर, उनके समाधान के प्रति जागरूक हों तथा गुणात्मक जीवनयापन के लिये अपने–अपने परिवार, समाज व देश के हित में, परिवार के प्रसंग में उचित निर्णय ले सकें।"

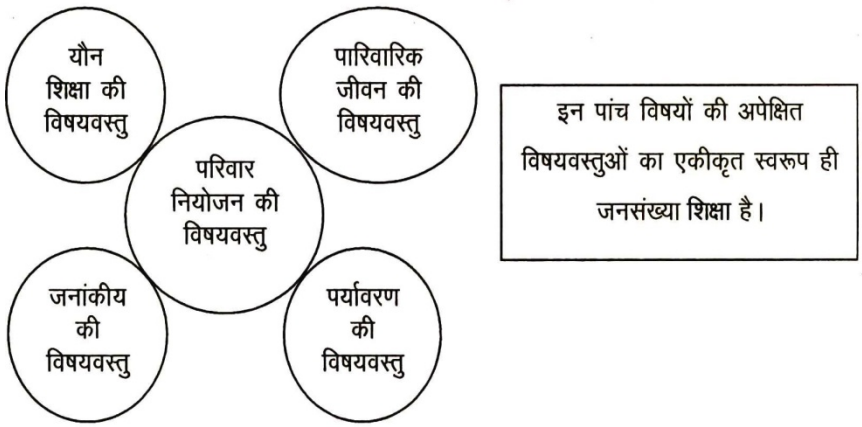

चित्र नं. 1 – जनसंख्या शिक्षा

जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक कार्यक्रम है, जो शिक्षार्थी में विकास करता है –

1. जनसंख्या एवं जीवन गुणवत्ता के मध्य अन्तर्संबंधों का बोध।
2. जनसंख्या समस्याओं के प्रति उत्तरदायी रूख एवं व्यवहार।
3. जनसंख्या से सम्बन्धित समस्याओं पर उचित निर्णय लेने की क्षमता का विकास।

पुनर्बोधीकरण (Reconceptulization)

जनसंख्या शिक्षा के विभिन्न तत्वों का पुनर्बोध करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 1984 में यूनेस्को की क्षेत्रीय सेमीनार (बैंकाक) में इसे पुन: परिभाषित करने का प्रयास किया गया। पुनर्बोधीकरण की प्रक्रिया में मुख्य ध्यान इस तथ्य पर केन्द्रित किया गया कि जनसंख्या शिक्षा के अर्थ को जनसंख्या नियंत्रण उपागम अथवा शुद्ध जनांकिकी के क्षेत्र से हटा कर एक व्यापक सतत् विकास के उपागम से जोड़े, जो कि पर्यावरण, संसाधन, गरीबी एवं पुर्नरउत्पादक स्वास्थ्य से सम्बन्धित बिन्दुओं को स्पर्श करता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. "जनसंख्या शिक्षा" को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिये|

10.3.2 जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Population Education)

प्रारम्भ में तो जनसंख्या शिक्षा को परिवार नियोजन एवं यौन शिक्षा से सम्बन्धित ही माना गया परन्तु अब जनसंख्या शिक्षा को जीवन को सुखी बनाने तथा जीवन मूल उन्नत बनाने की शिक्षा के रूप में मान्य किया जाता है, जनसंख्या शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य यही है कि बालक अवधारणा में ऐसा परिवर्तन किया जाय कि जिससे वह वयस्क होने पर छोटे परिवार के महत्व को जानकर, गुणात्मक जीवन यापन के लिये अपने परिवार एवं समाज दोनो के हित में उचित निर्णय ले सके। इस प्रकार वैचारिक परिवर्तन करना इसका सामान्य उद्देश्य है। इन उद्देश्यों को निम्न प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है –

1. बढ़ती हुई जनसंख्या से उत्पन्न समस्याओं के प्रति बालक में जागरूकता उत्पन्न करना।
2. बालक को अपने परिवार एवं देश के हित में उचित निर्णय ले सकने के योग्य बनाना।
3. जनसंख्या एवं जीवन की गुणवत्ता के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को जानना।
4. पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके कुप्रभावों को समझना।
5. प्राकृतिक संसाधन एवं मानवीय आवश्यकताओं के मध्य सन्तुलन की अभिवृत्ति का विकास करना।
6. जनसंख्या नियन्त्रण के प्रति सजग एवं सचेष्ट होना।
7. उपजनसांख्यकीय प्रत्ययों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।
8. नारी को समाज में उचित स्थान दिलाने की अभिवृत्ति का विकास करना।

उपर्युक्त जनसंख्या के उददेश्यों को प्राप्त करके बालकों को इस योगय बनाया जा सकेगा कि वे उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जी सकेंगे तथा अपने परिवार को सीमित रखने सम्बन्धी

युक्तियुक्त तथा उचित निर्णय लेने में समर्थ होंगे। उनमें जनसंख्या सम्बन्धी उचित दृष्टिकोण भी विकसित होगा जिससे समाज, देश एवं विश्व का कल्याण सम्भव होगा।

स्व–मूल्यांकन–2 (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा के मुख्य उद्देश्य लीखिये|

10.3.3 जनसंख्या शिक्षा शिक्षण की अवधारणा (Concept of Population Education Teaching)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.), नई दिल्ली द्वारा संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोश (U.N.F.P.A.) की आर्थिक सहायता से भारत में यह प्रायोजना प्रारम्भ की गई है।

राजस्थान में जनसंख्या शिक्षा की प्रायोजना अप्रेल 1980 से आरम्भ की गई। इसके क्रियान्वयन का दायित्व,राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (S.I.E.R.T), उदयपुर को दिया गया। इस संस्थान द्वारा निम्नांकित कार्य किये गये है और अब भी नये आयाम लेकर प्रायोजना का विस्तार किया जा रहा है :–

1. पाठ्यकम एवं अधिगम सामग्री का निर्माण एवं विकास।
2. अध्यापकों को प्रशिक्षित करना
3. सह शैक्षिक प्रवृत्तियों का संचालन
4. विभिन्न विषयों में जनसंख्या शिक्षा संबंधी पाठों का निर्माण एवं पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित करना।
5. अनुसंधान एवं मूल्यांकन
6. पत्रिका, एकांकी, रूपक, कहानी, कविता आदि पुस्तकों का प्रकाशन एवं प्रसार, जनसंख्या शिक्षा संबंधी साहित्य का निर्माण
7. चार्ट्स, चित्रावली, स्लाईड आदि का निर्माण।
8. शिक्षक प्रशिक्षण कार्यकम में जनसंख्या को सम्मिलित करना।
9. प्रतियोगिताएं कार्यक्रम में जनसंख्या को सम्मिलित करना।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए|

10.4 जनसंख्या सांख्यिकी–भारत एवं राजस्थान (Population Statistics–India and Rajasthan)

भारत एवं विश्व –

2001 की जनगणना के आधार पर विश्व की जनसंख्या 650 करोड़ थी औश्र इसमें भारत की 102.70 करोड़ थी। विश्व की जनसंख्या का 17 प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है। विश्व के भू–भाग की तुलना में भारत का भू–भाग 240 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में जनसंख्या का दबाव अधिक है।

विश्व की जनसंख्या वृद्धि दर 17 प्रतिशत है जबकि भारत में 2.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। भारत में प्रतिवर्ष एक आस्ट्रेलिया महाद्वीप की जनसंख्या के बराबर जनसंख्या बढ़ जाती है और भूमि में एक इंच भी वृद्धि नहीं होती है, इसीलिये भारत अभी तक विकासशील देशों में गिना जाता है।

भारत की जनसंख्या (1901 से 2001 तक)

क्र. स.	वर्ष	जनसंख्या करोड़	10 वर्ष में जनसंख्या वृद्धि करोड़	जन्म दर प्रति 1000 प्रति दशक	मृत्यु दर 1000 प्रति दशक प्रतिशत	जनसंख्या वृद्धि दर (गुणोत्तर)	घनत्व प्रति एक वर्ग में प्रति दशक	लिंगानुपात प्रति किमी पुरुष	साक्षारता 1000
1	1901	23.84	–	–	–	–	77	972	5.35
2	1911	25.21	1.37	49.20	42.60	6.6	82	964	9.92
3	1921	25.13	–.08	48.10	47.20	–0.9	81	955	7.16
4	1931	27.89	2.76	46.40	36.30	10.1	90	950	9.50
5	1941	31.86	3.97	45.20	31.20	14.0	103	945	16.10
6	1951	36.10	4.24	38.90	27.40	11.5	117	946	28.02
7	1961	43.92	7.82	41.71	22.80	18.9	142	941	28.02
8	1971	54.81	10.89	41.20	19.00	24.89	177	930	34.45
9	1981	68.33	13.51	37.20	15.00	24.66	216	934	43.57
10	1991	84.33	16.30	29.30	9.08	23.86	267	927	52.21
11	2001	102.70	18.06	–	–	21.34	324	933	65.38

जनसंख्या सम्बन्धी भारत की उपर्युक्त सांख्यिकी को यदि ध्यान पूर्वक देखें तो जनसंख्या वृद्धि की भयावह स्थिति ज्ञात होती है। विश्व की जनसंख्या जो 6 बिलियन पार कर चुकी है पहले की अपेक्षा तेजी से बढ़ रही है। 3 व्यक्ति प्रति सेकण्ड एवं 250000 से अधिक व्यक्ति प्रतिदिन इसमें जुड़ जाते हैं। यदि इसी तरह से जनसंख्या वृद्धि होती रही तो भारत में निर्धनता, कुपोषण, बेरोजगारी आदि समस्याएं विकराल रूप धारण कर लेंगी।

राजस्थान में जनसंख्या की स्थिति (Population Status in Rajasthan)

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग किमी है। यह क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का 10.4 प्रतिशत है। राजस्थान की जनसंख्या 2001 में 5,64,73122 है।

2001 की जनसंख्या के अनुसार भारत एवं राजस्थान का तुलनात्मक विवरण निम्नांकित प्रकार से है -

क्र.सं.		वृद्धि दर	घनत्व	लिंगानुपात	शहरीकरण	साक्षरता
1	भारत	21.34	324	933	27.76	65.38

2	राजस्थान	28.33	165	922	23.38	61.3

इस प्रकार हम देखें राजस्थान की जनसंख्या वृद्धि दर भारत की जनसंख्या वृद्धि दर से 7 प्रतिशत अधिक है।अन्य कारकों का विस्तृत विश्लेषण कर पाना यहां संभव नहीं है।

स्व–मूल्यांकन–4 (Self Evaluation)

1. भारत एवं राजस्थान में जनसंख्या की स्थिति बताइये|

10.5 जनसंख्या शिक्षा की विषय–वस्तु (Content of Population Education)

पाठ्यक्रम के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति किया जाना संभव है। पाठ्यक्रम ही पढ़ने वाले को प्रेरित करता है तथा सीखकर जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा देता है अत: यह आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा का अच्छा पाठ्यक्रम विकसित किया जाए। जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यों के आधार पर जनसंख्या शिक्षा की विषयवस्तु के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व कमेटी ने रिपोर्ट दी है :–

सन 1912 में समाजशास्त्री व जनसंख्याविद् हाउसर ने पाठ्यक्रम में जनांकिकी (Demography) की आवश्यकता को बताया।

1. कुल जनसंख्या वृद्धि (प्रागेतिहासिक से आधुनिक काल तक)
2. जनसंख्या वृद्धि के कारक, प्रवास, उत्पत्ति–दर, आयु के अनुसार वर्गीकरण एवं मृत्यु दर
3. जनसंख्या वितरण
4. जनसंख्या का आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभाव
5. जनसंख्या अनुसंधान की विधियां

परन्तु हाउसर ने जनसंख्या शिक्षा के लिये जनांकिकी को ही महत्वपूर्ण बताया व जनसंख्या शिक्षा के अन्य पहलुओं को छोड़ दिया है। इस प्रकार यह रूपरेखा संकुचित दृष्टिकोण लिये हुए है।

1970 में NCERT ने जनसंख्या शिक्षा में पांच क्षेत्रों को बताया –

1. जनसंख्या वृद्धि
2. आर्थिक विकास व जनसंख्या
3. सामाजिक विकास व जनसंख्या
4. स्वास्थ्य पोषण व जनसंख्या
5. जैवीय कारक – पारिवारिक जीवन व जनसंख्या

विभिन्न मतों को जानने के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि जनसंख्या शिक्षा में सबसे पहले हमें –

1. **जनसंख्या सम्बन्धी ऑकड़ों को लेना** चाहिये। इसके अन्तर्गत जन्मदर, शुद्ध पुनरूत्पादन (Net Production rate) व मृत्युदर, किसी देश विदेश में क्या हो रहा है, इसका विवेचन किया जाता है।
2. **आर्थिक विकास एवं जनसंख्या वृद्धि** :–

इस विषय क्षेत्र के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि से संसाधनों में कमी, निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा राष्ट्रीय आय में कमी, कृषि, उत्पादक भूमि में कमी, खनिज पदार्थो का अभाव, आर्थिक विकास का अवरूद्ध होना आदि सभी आयामों की जानकारी दी जाती है।

3. **सामाजिक विकास और जनसंख्या वृद्धि** –

   जनसंख्या वृद्धि से समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई है जैसे – गरीबी, दहेज, शहरी भीड–भाड, गन्दी बस्तियों, बेरोजगारी, सामाजिक अपराध, बाल विवाह, अशिक्षा, अन्ध विश्वास, पानी, चिकित्सा, निवास में कमी आदि। इस क्षेत्र में इन्ही प्रकरणों पर शिक्षण करवाया जाता है।

4. **स्वास्थ्य व पोषण और जनसंख्या वृद्धि** :–

   स्वस्थ रहने के लिये स्वास्थ्य प्रद निवास, स्वच्छ वायु, संतुलित एवं पोषक तत्वों से युक्त भोजन, शुद्ध पेयजल आदि की परम आवश्यकता होती है। खाद्यान्न की वृद्धि चिकित्सा सुविधाओं में आदि में प्रतिवर्ष वृद्धि से ये अपर्याप्त रहते है। इन सभी विषयों का अध्ययन इस क्षेत्र में कराया जाता है।

5. **जैविक तत्व, परिवार एवं जनसंख्या वृद्धि**

   लड़के –लड़की की विवाह की आयु, बच्चों के बीच का अन्तराल, गर्भवती स्त्रियों की देखभाल, प्रसव के पूर्व व पश्चात् लगने वाले टीकों की जानकारी आदि बातें जनसंख्या शिक्षा का अंग है।

6. **संसाधनों का विकास एवं पर्यावरण संरक्षण**

   जलवायु बढ़ने से आज जीवित रहने के लिये उपभोग्य वस्तुओं की मांग में वृद्धि हो गई है। प्रकृति प्रदत्त साधन सीमित है। असीमित जनसंख्या वृद्धि एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों एवं उत्पादन में असन्तुलन हो गया है, वनों का विनाश हो रहा है, जल का स्तर नीचे जा रहा है, ओजोन परत में छेद हो गया है, खनिज पदार्थो का अनियन्त्रित दोहन हो रहा है – इन सबको ध्यान में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण अनिवार्य है।

   इन सभी विषयों का अध्ययन इस क्षेत्र में करवाया जाता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा पाठ्यक्रम के मुख्य बिन्दुओं को बताइये|

10.6 जनसंख्या शिक्षा की शिक्षण विधियाँ (Content of Population Education)

जनसंख्या शिक्षा समस्या केन्द्रित तथा मूल्य आधारित शिक्षा है अत: जनसंख्या शिक्षण के लिये ऐसी शिक्षण विधि उपयुक्त रहती है जो समस्याओं तथा मूल्यों से संबंधित हो। जनसंख्या शिक्षा के लिए वह शिक्षण विधि उपयुक्त होगी जो बालक को जनसंख्या विस्फोट की समस्या का बोध करा सके और जनसंख्या वृद्धि के कारक, मान्यताओं, मूल्यों को छोड़कर नवीन धारणाएं, मान्यताओं व मूल्यों को अपना सके।

इन्हीं आधारों पर जनसंख्या शिक्षा शिक्षण के लिये निम्नांकित विधियां उपयुक्त हो सकती है :–

1. जिज्ञासा उपागम विधि (समस्या समाधान विधि)
2. मूल्य स्पष्टीकरण विधि
3. प्रायोजना विधि
4. खेल और नाट्य विधि
5. दृश्य व श्रव्य 'सामग्री के माध्यम से जनसंख्या शिक्षा
6. स्वयं शिक्षण विधि (प्रोग्राम्ड लर्निंग विधि) –
7. सर्वेक्षण विधि

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा शिक्षण की विधियों के नाम लिखिए।

10.7 जनसंख्या शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यकम के उद्देश्य (Objectives of Teachers Training Programme in Reference of Population Education)

(क) ज्ञान व अवबोध :–

1. इस उद्देश्य की संप्राप्ति पर जनसंख्या शिक्षा का अर्थ, विषय–वस्तु क्षेत्र व महत्व का अवलोकन।
2. भारत व विश्व की जनसंख्या के गत्यात्मकता (Population Dynamics) का अवबोधन।
3. जनसंख्या वृद्धि का मानवीय जीवन के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक पहलुओं पर प्रभाव।
4. विभिन्न अनुसंधानों व खोजों का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव का अवबोधन।
5. तीव्र जनसंख्या वृद्धि का प्रकृति के सन्तुलन, जीवन स्तर, जीवन की गुणात्मकता व जनसंख्या वृद्धि में सबंध।
6. जैवीय कारक व प्रजनन सम्बन्धी तत्व जो कि प्रजाति की निरन्तरता बनाये रखने के लिये उत्तरदायी है, इसका अवबोधन करना।
7. जनसंख्या शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यकम में लाने से सामाजिक परिवर्तन व राष्ट्रीय विकास संभव है, इसका अवबोध करना।
8. भारत के भावी अभिभावकों में छोटे परिवार का सामाजिक मानक अपनाने में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है, इसका अवबोधन।

दृष्टिकोण –

1. नियोजित अभिभावकता व परिवार के आकार की सीमा आवश्यक है, इसकी आवश्यकता की श्लाघा।

2. तीव्र जनसंख्या वृद्धि को रोकने में विद्यालय की एक संस्था के रूप में भूमिका की श्लाघा।
3. परिवार नियोजन नीति, कार्यकम व देश में हो रहे प्रयासों की श्लाघा।

कौशल –

1. 6 से 14 वर्ष व 15 से 17 वर्ष स्तर के बालकों की जनसंख्या शिक्षा का अध्ययन करने का कौशल।
2. जनांकिकी (Demography) प्रदत्तों का प्रस्तुतीकरण व विश्लेषण।
3. विभिन्न दृश्य–श्रव्य सहायक सामग्री के द्वारा जनसंख्या शिक्षा का ज्ञान प्रदान करने का कौशल विकसित करना।
4. जनसंख्या शिक्षा कार्यकम को सहभागी कियाओं द्वारा आयोजित करने का कौशल विकसित करना।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य लिखिये।

10.8 शिक्षक प्रशिक्षण कार्यकम के लिये पाठ्य–बिन्दु (Content for Teacher Training programme)

जनसंख्या शिक्षा की विषय–वस्तु शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य पर निर्भर करती है। पूर्व लिखित उद्देश्यों के आधार पर निम्न विषय–वस्तु की अनुशंसा की गई है :–

प्रथम इकाई – जनसंख्या शिक्षा की प्रस्तावना (An Introduction of Population Education Programme)

(अ) जनसंख्या शिक्षा का अर्थ व क्षेत्र – परिवार शिक्षा, यौन शिक्षा, गर्भ निरोधक शिक्षा, प्रत्ययों में भिन्नता।

(ब) जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य, आवश्यकता व महत्व

(स) सामान्य शिक्षा में जनसंख्या शिक्षा का स्थान व जनसंख्या शिक्षा का मुख्य क्षेत्र ।

द्वितीय इकाई :– जनसंख्या की गत्यात्मकता (Dynamics of population)

(अ) वितरण. घनत्व व जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति – भारत की विशेष स्थिति व संसार के सामान्य क्षेत्र में।

(ब) जनसंख्या वृद्धि की विशेषतायें – जन्म दर, मृत्युदर, आयु व लिंग के आधार पर जनसंख्या की संरचना।

(स) अति जनसंख्या के निर्धारक तत्व व परिणाम – औद्योगिक नगरीकरण के प्रवास की समस्याएं।

(द) जनसंख्या वृद्धि की मान्यताऐं (Implications) देश की सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक संदर्भ में।

(य) जनसंख्या वृद्धि व साधन – जनसंख्या वृद्धि का जीवन स्तर पर व जीवन की गुणात्मकता पर प्रभाव।

(र) जनसंख्या वृद्धि व शिक्षा का गुणात्मक पक्ष।

तृतीय इकाई – जनसंख्या शिक्षा में शिक्षक की भूमिका (The Role of Teacher in Population Education)

(अ) सामाजिक परिवर्तन में शिक्षक की भूमिका एक एजेन्ट के रूप में।

(ब) शिक्षक का स्वयं का विश्वास कि शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन व विकास लाया जा सकता है।

(स) जनसंख्या शिक्षा राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सशक्त उपाय है।शिक्षक का यह विश्वास महत्वपूर्ण है। (द) अध्यापक की विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं की जानकारी की महत्ता।

(य) अध्यापक जनसंख्या शिक्षा, यौन शिक्षा व परिवार शिक्षा की जानकारी देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

चतुर्थ इकाई –जनसंख्या शिक्षा का पाठ्यक्रम (Curiculum of Population Education)

(अ) विद्यालयों में पाठ्यक्रम बदलने की आवश्यकता

(ब) विद्यालयी पाठ्यकम में जनसंख्या शिक्षा का स्थान

(स) पाठ्यकम को विभिन्न क्षेत्रों को पहचानना ताकि जनसंख्या शिक्षा के प्रत्ययों व सिद्धान्तों को सम्मिलित किया जा सके।

(द) पाठ्यक्रम विकास के सिद्धान्त – संगठित पाठ्यकम, प्रत्यात्मक एप्रोच व लैडर टाइप एप्रोच

(य) पाठ्यक्रम दिग्दर्शन का विकास।

पंचम इकाई –शिक्षण पद्धतियां व मूल्यांकन (Teaching methods & Evaluation)

(अ) संगठित व सह–सम्बन्धात्मक तरीके से जनसंख्या शिक्षा का शिक्षण।

(ब) जनसंख्या शिक्षा के शिक्षण में एकल विषय अध्ययन पद्धति व समस्या समाधान पद्धति का प्रयोग।

(स) अन्य विद्यालयी विषयों तथा सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान भाषा, स्वास्थ्य शिक्षा, जीव विज्ञान के प्रकरणों के साथ जनसंख्या शिक्षा का संगठन।

(द) जनसंख्या शिक्षा व सह–शैक्षिक क्रियाओं का संगठन।

(य) आवश्यक शिक्षण सामग्री का निर्माण व प्रयोग।

(र) जनसंख्या शिक्षा के द्वारा आये व्यवहारगत परिवर्तनों का मूल्यांकन।

(ल) जनांकिकी (Demography) तथ्यों का प्रस्तुतीकरण व विवेचन कौशल।

षष्टम इकाई – विवाद और समस्याएं (Controversied & Issues)

(अ) पारिवारिक जीवन शिक्षा, यौन शिक्षा, निषेधात्मक उपायों की शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा व स्वास्थ्य शिक्षा में प्रत्यात्मक अन्तर।

(ब) जनसंख्या शिक्षा के प्रति धार्मिक, सामाजिक व सांस्कतिक अभिमति।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation)

1. जनसंख्या शिक्षा के संदर्भ में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के पाठ्य बिन्दु लिखिए।

10.9 सारांश (Summary)

भूमि, श्रम व पूंजी इन तीन साधनों के द्वारा उत्पादन संभव होता है, यदि इन साधनों में सामंजस्य नही हो पाता तो देश आर्थिक व सामाजिक विकास नहीं कर पाते। यदि मानव शक्ति या जनसंख्या वृद्धि इसी तरह होती गई तो मानव जाति को भयावह तकलीफों का सामना करना पड़ेगा। अत: यह आवश्यक है कि जनसंख्या शिक्षा सभी को दी जाये।

जनसंख्या शिक्षा को देने के लिये उसे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यकम के अन्तर्गत जनांकिकी, परिवार परिसीमन जनसंख्या की गत्यात्मकता और जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित सहायक सामग्री के प्रयोग को सम्मिलित किया जाना चाहिये।

10.10 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. जनसंख्या शिक्षा से आप क्या समझते है?
   What do you understand by Poulation Education?
2. जनसंख्या शिक्षा विद्यालयी स्तर पर विद्यार्थियों तक किस प्रकार पहुँचायी जा सकती है?
   How Population Education can be transferred to school level?

10.11 संदर्भ (References)

1. Mallayaa K.C. : “Population Education”1992,Vinod Pustak Mandir Agra
2. Sharma Radheshyam : “Teaching of Population Education,2005”,Puneet Prakashan,Jaipur
3. Rajput J.S. : “Encyclopedia of Indian Education”,(NCERT) Vol–II(L–Z)

इकाई–11
पर्यावरण शिक्षा
(Environmental Education)

इकाई की रूपरेखा (Out Line of the Unit)

11.1 उद्देश्य व लक्ष्य (Objectives and Aims)

11.2 प्रस्तावना (Introduction)

11.3 पर्यावरणीय शिक्षा का विकासात्मक इतिहास (Developmental History of Environment Education)

11.4 पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Environment Education)

11.5 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Environment Education)

11.6 पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता (Needs of Environment Education)

11.7 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार (Types of Environment Education)

11.7.1 प्रकार (Types)

11.7.1.1 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

11.7.1.2 जल प्रदूषण (Water Pollution)

11.7.1.3 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

11.7.1.4 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

11.8 अध्यापक प्रशिक्षण (Teacher Training)

11.9 पर्यावरण शिक्षा व्यवहार में (Environmental Education in behaviour)

11.10 सारांश (Summary)

11.11 मूल्यांकन (Evaluation)

11.12 संदर्भ ग्रन्थ (References)

11.1 उद्देश्य व लक्ष्य (Objectives and Aims)

इस अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :–

1. पर्यावरण शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, उद्देश्य, पर्यावरण प्रदूषण, अध्यापक प्रशिक्षण, व्यवहार में आदि का प्रत्यास्मरण, पुर्नपहचान व पुर्नकथन कर सकेंगे।
2. पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का विश्लेषण कर सकें तथा उदाहरण दे सकेंगे।
3. पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित समस्या का विश्लेषण, वर्गीकरण, संबंध स्थापना कर सकेंगे, उदाहरण दे सकेंगे।
4. पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी कार्यकमों तथा साहित्य में रूचि उत्पन्न कर सकेंगें।
5. पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी कार्यकमों व नाठ्यक्रम के प्रति वैज्ञानिक व सकारात्मक मनोवृत्तियॉ उत्पन्न कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना (Introduction)

मानव तथा पृथ्वी के अन्य जीवधारियों के जीवन का उनके चतुर्दिक विद्यामान पर्यावरण के साथ अन्योन्याश्रितता का सम्बन्ध रहा है। पृथ्वी ग्रह पर प्राणियों का अस्तित्व एवं विकास आस–पास के पर्यावरण से नियन्त्रित एवं निर्धारित होता रहा है। भौतिक और जैविक पर्यावरण के अवयव एक दूसरे के पूरक हैं तथा एक दूसरे के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक है, परन्तु भौतिक व औद्योगिक प्रगति के कारण मानव ने पर्यावरण को ही नष्ट करना आरम्भ कर दिया।

भोपाल गैस कांड, ताजमहल पर गैसों का प्रभाव, जंगलों की कटाई के कारण भूमि का बंजर होना, ओजोन परत में छिद्र, बढ़ता वाहन प्रदूषण आदि ने मानव को मजबूर कर दिया है कि वह आत्मघाती औद्योगिकरण की योजनाओं तथा स्वार्थपरक आर्थिक गतिविधियों को रोके। इसके लिए यह उचित है कि पर्यावरण की रक्षा व इसके विकास के लिये नागरिकों को शिक्षित किया जाये।

इस ईकाई में आप यही अध्ययन करेंगे कि "पर्यावरण शिक्षा" क्या है? इसका विकासात्मक इतिहास क्या है? इसके उद्देश्य क्या है? इसके प्रमुख घटक, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण सम्बन्धी समस्याएँ क्या हैं? यदि शिक्षक "पर्यावरण शिक्षा" के महत्व को समझ लेता है, तो वह शिक्षार्थियों को भी इसकी शिक्षा दे सकता है। शान्तिमय सुन्दर सुखमय जीवन के लिये पर्यावरण शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है।

11.3 पर्यावरण शिक्षा का विकासात्मक इतिहास (Developmental History of Environment Education)

1. पर्यावरण शिक्षा का इतिहास इस विचारधारा पर आधारित है कि पर्यावरण मानव जीवन को अनेक रूपों में प्रभावित करता है। प्राचीन काल में शिक्षा का प्रचार प्रसार ऐसा नही था, जैसा आजकल है, वैदिक ऋषि अपने अनुकूल ज्ञान की शिक्षा जनसाधारण तक अग्रलिखित विधियों द्वारा दिया करते थे –

(1). पूजा – उपासना के माध्यम से

(2). यज्ञों के आयोजन द्वारा पर्यावरणीय शिक्षा 1899 में पैट्रिक गेडिस ने इंडिनवर्ग इंग्लैण्ड में “द आउटलुक टावर" नामक अंगूठी संस्था की स्थापना की, जिसका प्रमुख लक्ष्य पर्यावरण व शिक्षा में सुधार लाना था। उनका मानना था कि पर्यावरण व शिक्षा की गुणवत्ता एक दूसरे से जुडी हुई है यदि बालक को पर्यावरण की वास्तविकताओं के समीपं लाया जा सकेगा तो न केवल शिक्षा में सुधार होगा अपितु पर्यावरण में वांछित सुधार होगा।

2. रूसो, डयुवी तथा एडम्स ने वातावरण के साथ सम्पर्क को माध्यम से शिक्षा का प्रचार करने पर जोर दिया था; परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसिडेन्ट रूपवैल्ट (1933 – 45) ने राज्यपालो की एक कान्क्रेंस व्हाइट हाउस में बुलाई तथा उसमें प्रकृति के संरक्षण पर बल दिया, यह नीति अमेरिका में आज तक निभाई जा रही है।

3. समय–समय पर पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी पहलुओं पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा ध्यान दिया जाता रहा है। परन्तु 1965 में पहली बार कीले विश्वविद्यालय अमेरिका द्वारा पर्यावरण शिक्षा की पाठ्यकम के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया गया।
4. 1975 में IEEP ने बेलग्रेड में एतिहासिक पर्यावरण शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की गई जिसमें यूनेस्को ने 136 देशों से पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की।

संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रमुख संस्थायें जैसे – WHO, WMO,ILO,FAO आदि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण शिक्षा में सहयोग दे रही है।

बेलग्रेड अधिवेशन (1975) की महत्वपूर्ण उपलब्धि "पर्यावरण घोषणा पत्रं" (Charter) था, जिसमें चार भाग है

(अ) पर्यावरण की स्थिति

(ब) पर्यावरण के उद्देश्य

(स) पर्यावरण के शैक्षिक उद्देश्य तथा लक्ष्य

(द) पर्यावरण के शैक्षिक लक्ष्य

1976 से 1982 विश्व के कितने ही देशों में पर्यावरण रक्षा सम्बन्धी कानून बने तथा पर्यावरण रक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना हुई है।

भारत में "पर्यावरण शिक्षा" संस्कृति का एक ऐसा अंग रही है। इसके संरक्षण के लिये समाज को शिक्षित किया जाता रहा है। वेद–पुराणों में वृक्ष आदि की रक्षा के लिए प्रसंग आते है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी राष्ट्रीय कार्यकम चलाए जा रहे है जिसमें से 1972 में स्टाकहोम में आयोजित "मानव और जीव मण्डल" नामक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी से प्राप्त की, तथा भारत में पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रम आरम्भ किये।

भारत सरकार द्वारा सन 1897 से लेकर 1992 तक पर्यावरण संरक्षण कानून बनाये गये तथा उनकी पालना की जा रही है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation)

1. पर्यावरण शिक्षा के इतिहास से संबन्धित प्रमुख घटनाएँ लिखिए।

4. पर्यावरण शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा(Meaning and Definition of Environment Education)

वह शिक्षा जिसके द्वारा लोगों में पर्यावरण के प्रति सही समझ, संवेदनशीलता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास हो तथा जो लोगों में पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करे "पर्यावरणीय शिक्षा' कहलाती है। पर्यावरणीय शिक्षा का लक्ष्य मानव और पर्यावरण के बीच के सम्बन्धों की व्याख्या करना है, जिससे लोग अपने आस–पास के पर्यावरण के महत्व को ठीक से समझ सकें तथा अपने पर्यावरण को संरक्षित व सुरक्षित करने के लिये प्रेरित हो। पर्यावरण शिक्षा के अर्थ को सही–सही समझने के लिये इसे अधोलिखित तीन आयामों में समझना आवश्यक हैं:–

1. **पर्यावरण के बारे में** (About the Environment)

इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपने आस–पास के भौतिक व जैविक पर्यावरण के विभिन्न अवयवों की जानकारी होनी चाहिये। शिक्षा द्वारा बालको में पर्यावरण के प्रति सही समझ पैदा की जानी चाहिये।

2. **पर्यावरण से** (From the Environment)

इसके अन्तर्गत शिक्षा द्वारा लोगों को यह ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है कि आस–पास के भौतिक एवं जैविक पर्यावरण से क्या और कैसे प्राप्त करें कि उनका पर्यावरण असन्तुलित न हो।

3. **पर्यावरण के लिये** (For the Environment) :–

इसके अन्तर्गत बालकों अथवा व्यक्तियों को ऐसी शिक्षा प्रदान करना आता है, जिससे वे अपने पर्यावरण को सुरक्षित रखने में समर्थ बने।

कभी–कभी पर्यावरण शिक्षा को "पाठ्यक्रम का उपागम (Approach) भी कहा जाता है न कि परम्परागत आधार पर निर्मित एक विषय। इस 'उपागम" के आधार पर पर्यावरण शिक्षा को अन्त: अनुशासनात्मक (Inter Disciplinary) विषय माना है, जिसकी विषय वस्तु जीव विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र तथा वनस्पति विज्ञान आदि सभी विषयों से ली जाती है।

"पर्यावरण शिक्षा" की परिभाषा मिरजैल (1982) की एनसाइक्लोजिडिया ऑफ एज्यूकेशनल रिसर्च के अनुसार – "पर्यावरण शिक्षा अन्त: अनुशासनात्मक होनी चाहिये। अवधारणात्मक आगम पर्यावरण शिक्षा देने के लिये सर्वोत्तम है|

एल. बी. सिंह व सी एस सिंह (1990) ने पर्यावरण शिक्षा को एकीकृत प्रकिया के रूप में परिभाषित किया –"पर्यावरण शिक्षा एक ऐसी एकीकृत प्रक्रिया है जो प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वातावरण के साथ मानद् के अंतंसबंधों की व्याख्या करती है। इसके अन्तर्गत वे सभी गतिविधियां आ जाती हैं जो प्राणियों के प्राकृतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती है। इसका प्रमुख उद्देश्य है पर्यावरण के अभिज्ञान द्वारा जीवन का गुणात्मक सुधार करना तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपने दायित्व को स्वीकार करना।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर पर्यावरण शिक्षा की एक सामान्य परिभाषा निम्नवत की जा सकती है :–

पर्यावरण शिक्षा वह प्रकिया है जो व्यक्तियों में उन मूल्यों, अभिवृत्तियों, रूचियों, कौशलों का विकास करती है, जिनके आधार पर वे अपने आस–पास के पर्यावरण को ठीक–ठाक समझ सकें तथा उसके संरक्षण और संवर्धन के लिये सक्षम बन सके।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पर्यावरण शिक्षा को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिये?
2. पर्यावरण शिक्षा का अर्थ बताइये?

11.5 पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Environmental Education)

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों को विभिन्न पर्यावरण वैज्ञानिको ने अलग–अलग प्रकार से दिये हैं, जो निम्नवत है -

(अ) स्टेप और उनके साथी (1970) –

स्टेप और उनके साथियों ने सन 1970 में पर्यावरण शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य निर्धारित किये –

1. लोगों को यह अवबोध कराना कि मानव उस व्यवस्था का अभिन्न अंग है जिसमें मानव, भौतिक और जैविक पर्यावरण आते हैं।
2. जनसामान्य में पर्यावरण के प्रति समझ उत्पन्न करना
3. मूलभूत पर्यावरणीय समस्याओं का अवबोध कराना
4. पर्यावरण के प्रति नागरिकों के उत्तरदायित्व निर्धारित करना।
5. अनुकूल मनोवृत्तियों (Attitudes) का निर्माण करना।

(ब) विदार्त (Vidart) (1978) के अनुसार –

विदार्त ने पर्यावरण के उद्देश्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया –

1. ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive Aims) –

(1). पर्यावरण का ज्ञान कराना।

(2). सोचने व समस्या समाधान की क्षमता का विकास करना।

2. मानक उद्देश्य (Normative Aims) –

(1). पारिस्थितिक जागरूकता का विकास करना

(2). पर्यावरणीय मूल्यों का निर्माण करना

3. तकनीकी तथा प्रायोगिक उद्देश्य (Technical & Experimental Aims) –

(1). पर्यावरण के संवर्धन व संरक्षण के लिये सामूहिक् व्यावहारिक क्रियाओं की योजनाएं बनाना तथा उन्हें क्रियान्वित करना।

(2). सामुदायिक रूप से समाज के स्वीकृत मानदण्डों के अनुसार औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करना, जिससे आर्थिक विकास पर्यावरण के जैविक चक को प्रभावित न कर सके।

(स) यूनेस्को (1981) के अनुसार –

1. पर्यावरण शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के साथ सम्बद्ध किया जाना।
2. पर्यावरण शिक्षा को अन्त: अनुशासनात्मक प्रकृति प्रदान करना।
3. समग्रता के दृष्टिकोण का विकास, जिसमें इकोलोजीकल सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष सम्मिलित हो।
4. पर्यावरणीय शिक्षा को मानव जीवन से सम्बन्धित करना।
5. पर्यावरणीय मूल्यों का निर्धारण करना, जिससे शिक्षा के माध्यम से बालका बालिकाओं में उनका विकास किया जा सके।

(द) UNEP के अनुसार –

यूनाइटेड नेशन्स एन्दायरमेन्टल प्रोग्राम (UNEP) के अनुसार पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत निर्धारित किये गये –

(1). जागरूकता (Awareness)

पर्यावरण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य जनसामान्य में पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करना है। यह कार्य औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा का नियोजन कर सम्पन्न किया जाना चाहिये।

(2). ज्ञान (Knowledge)

पर्यावरण शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य समाज के सभी आयु वर्ग के तथा लिंग के लोगों को पर्यावरण से सम्बन्धित ज्ञान का प्रचार व प्रसार करना ताकि लोग पर्यावरण के संरक्षण की चिन्ता करें।

(3). मूल्यांकन (Evalution) –

व्यक्तियों एवं सामाजिक समूहों में पर्यावरण के मूल्यांकन की दक्षता का विकास करना।

(4). अभिवृत्तियों में परिवर्तन (Change in Attitude) -

पर्यावरण शिक्षा द्वारा लोगों में पर्यावरण के प्रति अनुकूल अभिवृत्तियों एवं मूल्यों का विकास किया जाए। निम्नांकित पर्यावरणीय मूल्यों का विकास करना है –

(अ) प्रेम (ब) उदारता (स) सह–अस्तित्व (द) अहिंसा (प) करुणा
(फ) परस्पर पूरकता (ब) समानता (भ) न्याय (म) बन्धुत्व।

(5). कौशलों का विकास–

इसके अन्तर्गत पर्यावरण शिक्षा द्वारा लोगों में उन कौशलों का विकास किया जाना आवश्यक है, जिसके द्वारा वे पर्यावरणीय समस्याओं को पहचान कर उनको हल करने में समर्थ हो सकें।

(6). सहभागिता (Participation) –

इसके अन्तर्गत पर्यावरण शिक्षा द्वारा प्रदूषण निवारण के लिए वृक्षारोपण, सफाई कार्यक्रम के संचालन, जनसंख्या शिक्षा के कार्यकमों के नियोजन व कार्यान्वयन में समाज के सभी वर्गो के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पर्यावरण शिक्षा के मुख्य उद्देश्य लिखिये?
2. पर्यावरण शिक्षा में संयुक्त राष्ट्र संघ की क्या भूमिका रही?

11.6 पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता (Needs of Environmental Education)

आज के इस जनसंख्या विस्फोट तथा औद्योगिक विकास के युग में पर्यावरण का बिगड़ता हुआ संतुलन विश्व स्तर पर चिन्ता का विषय बना हुआ है।

1. आज के विद्यार्थी कल के नागरिक, प्रशासक, नेता, निर्णयकर्ता तथा नियोजक है। यदि मानव जीवन को सुखमय व शान्तिमय बनाना है तो विद्यार्थियों को पर्यावरण से सम्बन्धित सभी प्रकार की जानकारी व कौशल का विकास करवाना आवश्यक है।
2. औद्योगिकरण के विकास के साथ मूल्यों का ह्यास हुआ है। आज मानव भौतिक सुखों की ओर अधिक अग्रसर है। मानव को अपने जीवन मूल्यों पर पुर्नविचार करना होगा, इसके लिये विद्यार्थी व शिक्षक दोनों को पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा आवश्यक है।
3. अभिवृत्तियों व्यवहार को प्रभावित करने वाले आवश्यक प्रेरक होते हैं। किसी स्थान, वस्तु, क्रिया व जीव के प्रति जैसी हमारी मनोवृति होगी, हम वैसा ही व्यवहार करेंगे। पर्यावरण सम्बन्धी सकारात्मक व वैज्ञानिक दृष्टिकोणों अथवा मनोवृतियों के विकास के लिये पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा की आवश्यकता है।
4. पर्यावरण के प्रति ध्यान आकर्षित करने के लिये उचित रूचियों का विकास विद्यालय में ही किया जा सकता है। पाठ्यकम में परिवर्तन, प्राकृतिक वातावरण में छात्रों को ले जाना, समय–समय पर पर्यावरण सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ आदि आयोजित करके पर्यावरण सम्बन्धी रूचियों का विकास किया जा सकता है, इस प्रकार सिद्ध होता है कि शिक्षा में पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी की आवश्यकता है।
5. पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को समझने, विश्लेषण करने व उनके समाधान के लिये बौद्धिक क्षमताओं तथा निर्णय लेने के लिये सम्बन्धित कौशल के विकास की आवश्यकता है। यह कार्य विद्यालयों में ही हो सकता है, अत: पर्यावरण की शिक्षा आवश्यक है।
6. जल, वायु, ध्वनि, भूमि, वाहन प्रदूषण की समस्याओं ने पर्यावरण में बड़ी समस्याओं को जन्म दे दिया है – जैसे – ओजोन परत में छिद्र, ग्रीन हाउस प्रभाव, अम्लीय वर्षा आदि यदि इस समस्याओं की जानकारी विद्यार्थियों को देना आवश्यक है,अत: पर्यावरण शिक्षा की परम आवश्यकता है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिये?

11.7 पर्यावरणीय प्रदूषण–संकल्पना, प्रकार(Environmental Pollution–Concept and Types)

संकल्पना (Concept)

पर्यावरण प्रदूषण आज विश्वव्यापी समस्या बन गई है। वर्तमान जनसंख्या विस्फोट, तीव्र औद्योगिकरण एवं नगरीकरण जनस्वास्थ्य, स्वच्छता तथा प्राकृतिक सन्तुलन से जुड़ी समस्याऐं चिन्ता का विषय बन गई है। इन सभी समस्याओं का सामूहिक नाम 'प्रदूषण है। प्रदूषण एक घातक समस्या है जो न केवल पर्यावरण सन्तुलन को बिगाड़ती है एवं स्वास्थ्य संकट उत्पन्न करती है, बल्कि राष्ट्र अर्थव्यवस्था को भी अनेक प्रकार से क्षति पहुचाती है। विशेष चिन्ता का विषय तो है कि प्राकृतिक संसाधनों पर जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण पर्यावरण का जीवन

पोषक तंत्र (Life Supporting System) कमजोर हो रहा है और हमारे संविकास की संकल्पना (Concept of Sustainable Development) को गहरा आघात लग रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं –

1. अनियन्त्रिक प्राकृतिक घटनाएं
2. जनसंख्या वृद्धि एवं संसाधनों पर उसका बढ़ता दबाव
3. ठोस अपशिष्ट निस्तारण एवं मलप्रवाह की अपर्याप्त सुविधाऐं
4. उद्योगों से निकले वाले जहरीले रसायन एवं ठोस पदार्थ
5. आधुनिक कृषि तकनीकें व कीटनाशकों का प्रयोग
6. निर्धनता एवं अल्प विकास
7. बढ़ते हुए परिवहन के साधन एवं बढ़ता शोर

मानव द्वारा छोड़े गये अवशिष्ट पदार्थो व उर्जा के पर्यावरण में सम्मिलित होने से पारिस्थितिकी तन्त्र की सामान्य क्रियाओं में परिवर्तन को प्रदूषण कहते हैं।

11.7.1 प्रकार (Types)

प्रदूषण सामान्यत: छ: प्रकार के होते हैं –

1. मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)
2. जल प्रदूषण (Water Pollution)
3. वायु प्रदूषण (Air Pollution)
4. ध्वनि प्रदूषण(Sound Pollution)
5. नाभिकीय प्रदूषण (Nuclear Pollution)
6. सामाजिक प्रदूषण (Social Pollution)

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पर्यावरण प्रदूषण को स्पष्ट कीजिये व प्रदूषण के प्रमुख प्रकारों के नाम लिखिये?

उपरोक्त सभी प्रकारों की विस्तार से व्याख्या कर पाना यही संभव नहीं है, अत: हम संक्षिप्त में इसका अध्ययन करेंगे सबसे प्रथम प्रकार है -

11.7.1.1 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

कोई भी ऐसा पदार्थ जो मिट्टी में मिलकर उसकी उर्वरता को प्रभावित करे, मृदा प्रदूषक कहलाता है।

Causes मृदा प्रदूषण के कारण –

(1) वायुमण्डलीय प्रदूषक –

औद्योगिक नगरों के वायुमण्डल में उत्सर्जित धूलकण तथा नाभिकीय विस्फोटों से उत्सर्जित रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमण्डल से पृथ्वी पर गिरते हैं तथा मिट्टी में मिलकर उसकी उर्वरता को प्रभावित करते हैं।

(2) औद्योगिक अवशिष्ट –

विभिन्न उद्योगों से मुख्यत: तीन प्रदूषक प्राप्त होते हैं –

1.सल्फर डाईऑक्साइड

2.पलोराइड

3.नाइट्रिक ऑक्साइड तथा पारा, कैडमियम आदि।

फर व नाइट्रिक ऑक्साइड मिट्टी की क्षारीयता को बढ़ाते है, जिससे मृदा की उर्वरता घटती है।

(3) घरेलू कचरा –

कॉच के टुकडे, प्लास्टिक व रबर के टुकडे, चमड़े के टुटे –फूटे टकड़े ऐसे घरेलू कचरे हैं जो अपचायित नहीं हो पाते तथा मृदा को प्रदूषित करते हैं।

(4) कीटनाशक दवाएं –

डी. डी. टी., टिक20, बी.एच.सी. टैक्सोफेन आदि कीटनाशकों का प्रयोग हम फसल की रक्षा के लिये करते हैं|

(5) रासायनिक खाद :–

रासायनिक खादों के प्रयोग से मृदा की उर्वरकता का ह्मास हुआ तथा खाद्यान्नों की गुणवता घट गई

(6) भूक्षरण :– भूक्षरण दो प्रकार से होता है –

(1) वायु द्वारा (2) जल द्वारा

मृदा प्रदूषण रोकने के उपाय (Preventive measures to control soil Pollution)

1. वृक्षारोपण को प्रोत्साहन
2. गोबर व कम्पोस्ट खादों के प्रयोग को बढ़ाना
3. घरेलू व औद्यागिक कचरे को खाद में परिवर्तित करने के लिये संयंत्र लगाना
4. कीटनाशक दवाओं का सीमित एवं संयमित प्रयोग

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. मृदा प्रदूषण से आप क्या समझते हैं?
2. मृदा प्रदूषण के कारक या स्त्रोत बताइये?

11.7.1.2 जल प्रदूषण (Water Pollution)

सभी प्रकार के जीवों के लिये जल अति आवश्यक है, इसके बिना जीवन संभव नहीं हैं। स्वच्छ शुद्ध जल की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। पृथ्वी के 2/3 भाग पर जल भरा है परन्तु वास्तव में कुल जल का 3 प्रतिशत भाग ही उपयोगी है, शेष 97 प्रतिशत भाग मनुष्य के लिये अनुपयोगी है, उपयोगी 3 प्रतिशत जल ही भूमिगत व वायुमण्डल में वाष्प के रूप में होता है। केवल 0.6 प्रतिशत जल ही सतही जलस्त्रोत के रूप में मिलता है वास्तव में इस जल की मात्रा का कुछ अंश ही पीने के काम आता है, शेष नहाने, धोने, सिंचाई उद्यानों आदि में खर्च होता है।

जल के प्रमुख स्त्रोत हैं–

(1) धरातल स्त्रोत (Surface sources)

(2) भूमि स्त्रोत (Ground sources)

जल प्रदूषण की परिभाषा (Definition of Water pollution):–

प्राकृतिक जल में किसी अवांछनीय बाहय पदार्थ का प्रवेश जिससे जल की गुणवत्ता में अवनति आती हो, जल प्रदूषण कहलाता है।

1.भौतिक प्रदूषण

2.रासायनिक प्रदूषण

3.शरीर क्रियात्मक प्रदूषण

4.जैवीय प्रदूषण

जल प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय (Preventive measures to control of water pollution)–

जो गन्दगी मानव द्वारा उत्पन्न है उसकी रोकथाम भी वही कर सकता है। इसे रोकने के लिये सामान्य उपाय व सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. किसी भी प्रकार के अपशिष्ट या अपशिष्टयुक्त पदार्थो को जलाशयों में मिलने से रोका जाय।
2. घरों से निकलने वाले मलीन जल को संशोधन संयंत्रो में उपचारित करके ही नदी तालाबों में डाला जाये।
3. पेयजल के स्त्रोतों जैसे– तालाब, नदी व कुएँ इत्यादि के पास दीवार बनाकर विभिन्न प्रकार की गन्दगी को इनमें प्रवेश से रोका जाए।
4. जलाशयों के पास स्नान करने कपड़े धोने आदि को रोका जाये।
5. नदी व तालाबों में जानवरों के प्रवेश व नहाने आदि पर रोक लगाई जाये।
6. छोटे बड़े उद्योगों को नदी तालाबों, झीलों के पास बनाने पर रोक लगाई जाए।
7. कृषि कार्यो में आवश्यकता से अधिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के उपयोग पर रोक लगाई जाए।
8. जलाशयों में मछली पालन पर अधिक जोर दिया जाए क्योंकि ऐसा करने से मछलियों मच्छरों के अण्डे, लार्वा व जलीय खरपतवार को नष्ट करने में सहायता मिलती है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. उन वस्तुओं के नाम लिखिये, जो आपके पडौस या मोहल्ले वाले कचरे के रूप में पानी में बहाते हैं?
2. आपकी राय में जल प्रदूषण को रोकने में–
   (अ) परिवार (ब) समुदाय व (स) सरकार की क्या भूमिका है?

11.7.1.3 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

श्वसन के लिये हमें ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। यह ऑक्सीजन हमें वायुमण्डल से प्राप्त होती है। शुद्ध वायु सामान्यत: प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली कई गैसों का मिश्रण

होती है, इसमें 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.03 प्रतिशत कार्बनडाई ऑक्साइड तथा 0.97 प्रतिशत जल तथा अन्य गैसें होती हैं।

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानव क्रियाओं – जंगल जलाने, भोजन पकाने, जंगली जानवरों को दूर भगाने, भवनों को गरम रखने, ईधन जलाने तथा वर्तमान में 'नगरीय–ओद्योगिक–तकनीकी सभ्यता से उत्पन्न हुआ है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने वायु प्रदूषण को निम्न रूप से परिभाषित किया है :–

"वायु प्रदूषण वह सीमित दशा है जिसमें चतुर्दिक फैले वायुमण्डल में ऐसे पदार्थो का संकेन्द्रण हो जाता है, जो मानव तथा उसको घेरने वाले पर्यावरण के लिये हानिकारक होते हैं।"

वायु प्रदूषण के कारणों को मुख्यतया दो वर्गो में बाटा जा सकता है :–

1. प्राकृतिक (Natural)
2. मनुष्यकृत (Man–made)

मुख्य वायु प्रदूषण (Major Air Pollutants)

(1) सल्फरडाई ऑक्साइड –

यह गैस किसी भी प्रकार के गन्धक युक्त ईधन के जलने से बनती है। कोयले तथा खनिज तेल का उपयोग बड़े कल–कारखानों में ईधन के रूप में होता है अत: ऐसे कल कारखानों के आस–पास की वायु में सल्फरडाई ऑक्साइड की अत्यधिक मात्रा पाई जाता है। SO_2 का वायु में उच्च स्तर होने पर कई श्वसन संबन्धी समस्याऐं उत्पन्न हो जाती है। सिर दर्द, अनिद्रा, अनियमित श्वसन आदि व्याधियां उत्पन्न हो जाती है।

सल्फरडाई ऑक्साइड जीव –जन्तुओं के अलावा पौधों के लिये भी अत्यन्त हानिकारक गैस है।

(2) कार्बन मानो ऑक्साइड –

यह एक रंगहीन व गंधहीन गैस है। कार्बन मोनो ऑक्साइड मनुष्य के लिये शारीरिक व मानसिक दोनों दृष्टियो से हानिकारक है। 10 से 30 P.P.M. तक कार्बन मोनो ऑक्साइड का स्तर हमारे तन्त्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। इसका स्तर 30 P.P.M. से अधिक होने पर हृदय तथा फेफडों पर बुरा प्रभाव पडता है।

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव :–

1. कल कारखानों से निकलने वाली हानिकारक गैसें जैसे – सल्फरडाई ऑक्साइड, क्लोरिन, अमोनिया, कार्बनडाई ऑक्साइड आदि ऑखो में जलन, श्वसन संबंधी अनेक रोग उत्पन्न करती है।
2. रासायनिक उद्योगों से निकलने वाली वाष्प अनेक प्रकार के फुफ्फुस सम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है।
3. एल्युमिनियम तथा सुपर फास्फेट का उत्पादन करने वाले कारखानों से क्लोरिएन गैस निकलती है जो दाँतों हड्डियों में रोग उत्पन्न करती है।
4. वाहनों से निकलने वाली गैसें – कार्बन मोनो ऑक्साइड व सल्फरडाई ऑक्साइड श्वसन सम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है।

वायु प्रदूषण को रोकने के उपाय (Preventive measures to control of Air pollution)

1. कल कारखानों की चिमनियों पर ऐसे यंत्र लगाये जाने चाहिये कि उनसे निकलने वाली धुएं, गैसों व धूल कणों का अवशोषण हो सके।
2. वाहनो से निकलने वाले धुएं को नियन्त्रित किया जाए। वाहनो को C.N.G. योजना के अनुसार उपयोग में लाया जाए।
3. भट्टियों व कल कारखानों में ईधनों का इस प्रकार प्रयोग किया जाए जिससे उसका पूर्ण ऑक्सीकरण हो सके।
4. ऐसे स्थानों पर जहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक हो, कल कारखाने नहीं लगाये जाए।
5. वन संरक्षण के विशेष उपाय किये जाने चाहिये।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. वायु प्रदूषण के स्त्रोत बताइये?
2. वायु प्रदूषण के मानव जीवन पर प्रभाव बताइये?

11.7.1.4 ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

शोर एक प्रकार का अदृश्य वायु प्रदूषण है। इसके प्रभाव से मनुष्य की सुनने की क्षमता में कमी आतीं है। अवांछित तथा अनचाही ध्वनि ही शोर है।

ध्वनि एक प्रकार की ऊर्जा है, जो माध्यम (वायु) में तरंग गति के रूप में संचरित होती है। इन्ही ध्वनि तरंगों अथवा वायु में उत्पन्न कम्पनों को हमारे कान ग्रहण करते हैं, जिससे हमे सुनाई देता है।

ध्वनि की तीव्रता को या प्रबलता को डेसीबल (Decibels) में मापा जाता है। डेसीबल पैमाने पर शून्य ध्वनि तीव्रता का वह स्तर है जहाँ से हमें सुनाई देना आरम्भ होता है, जैसे–जैसे डेसीबल संख्या बढ़ती जाती है ध्वनि की तीव्रता भी बढ़ती जाती है।

ध्वनि की तीव्रता (डेसीबल में) तथा मनुष्य द्वारा अनुभव किये जाने वाले ध्वनि के स्तर की श्रेणी –

	ध्वनि की तीव्रता (डेसीबल में)	ध्वनि के स्तर की श्रेणी
1	0–30 डेसीबल	शांत
2	30–60 डेसीबल	मध्यम
3	60–90 डेसीबल	तीव्र
4	90 – 120 डेसीबल	अतितीव्र (हानिकारक)
5	120 एवं इससे अधिक डेसीबल	असुविधाजनक रूप से तीव्र (खतरनाक)

शोर (ध्वनि) के स्त्रोत (Source of Noise Pollution)

ध्वनि स्त्रोतों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -

1. **प्राकृतिक स्त्रोत (Natural Sources)**

बादल की गरज, उल्कापात, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन, भूकम्प से भवनों का गिरना, समुद्री लहरें आदि।

2. **मानव निर्मित स्त्रोत (Man–made Sources)**

इन्हें पुन: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(अ) अचल स्त्रोत (Stationary Sources) :– इनमें विभिन्न प्रकार के उद्योग, रेडियो, टेलीविजन, मिलों के सायरन, लाउड स्पीकर, विवाह उत्सव आदि।

(ब) सचल स्त्रोत :– इनमें सड़क परिवहन, रेल परिवहन तथा वायु परिवहन सम्मिलित हैं। मोटर गाडियां, रेल गाडियां तथा वायुयान ऐसे ही स्त्रोत हैं।

शोर के दुष्प्रभाव (Effect of Noise Pollution)

1. **सुनने की क्रिया पर** :–

अध्ययनों से ज्ञात होता है कि लम्बी अवधि तक शोर ग्रस्त स्थानों के संपर्क में रहने पर मनुष्य पूर्ण अथवा आशिक रूप से बहरा हो सकता है।

2. **शरीर की क्रिया प्रणाली पर** –

शोर केवल बहरापन ही उत्पन्न नहीं करता वरन हृदय, पाचन तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

3. **मानसिक क्रियाओं पर** :–

शोर के कारण मनुष्य के अनेक क्रिया कलापों में व्यवधान उत्पन्न होता है जिसके परिणाम स्वरूप असुविधा, दुर्घटना तथा थकान उत्पन्न हो जाती है। कई कष्टप्रद ध्वनियों से मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप दुर्घटना, लड़ाई–झगड़े मानसिक अस्थिरता, कुण्ठा, पागलपन आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

शोर प्रदूषण को नियंत्रण करने के उपाय (Preventive measures to control Noise Pollution)

1. शोर उत्पन्न करने वाले वाहनों की जांच की जानी चाहिये तथा तकनीकी दोषों के निवारण के पश्चात ही वाहन चलाने की अनुमति दी जावे।
2. वाहनों की अधिकतम शोर सीमा निर्धारित कर देनी चाहिये।
3. उद्योगों तथा कल कारखानों को अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों से दूर स्थापित किया जाए।
4. अधिक शोर उत्पन्न करने वाले कारखानों में शोर शोधक विधियां अपनाई जानी चाहिये।
5. भारी यातायात वाली सड्कों तथा रेलमार्गो के दोनो ओर घने वृक्षारोपण द्वारा शोर की तीव्रता को कम किया जा सकता है।
6. शोर नियंत्रण हेतु प्रभावी कानून बनाये जाने चाहिये|

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. ध्वनि प्रदूषण से आप क्या समझते है?
2. ध्वनि प्रदूषण को रोकने के उपायों का उल्लेख कीजिये?

11.8 अध्यापक प्रशिक्षण (Teacher Training)

यूनेस्को ने पर्यावरण शिक्षा को अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यकम में सम्मिलित करने की अनुशंसा 1982 में की थी इसी अनुशंसा के अनुसार जो अध्यापक पहले से ही सेवारत है, उनके लिये अभिनवीकरण कार्यक्रम तथा नये अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को सम्मिलित किया गया है।

शिक्षा सम्बन्धी कोई भी नवीन कार्यक्रम बिना अध्यापकों के सकिय सहयोग के सफल नहीं हो सकता। पर्यावरण शिक्षा' को भी सफल बनाने के लिये अध्यापकों की पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी मनोवृत्तियों का विकास, पर्यावरण सम्बन्धी आवश्यक जानकारी, पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी पठन विधियों की जानकारी व कौशल का विकास आवश्यक है।

अध्यापकों के लिये पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिये।

- अध्यापकों की पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी में अभिवृद्धि करना।
- स्थानीय समस्याओं का सुव्यवस्थित ढंग से अध्ययन करने की क्षमता का विकास करना।
- पर्यावरण सम्बन्धी नई समस्याओं के निबटने के लिये उनको गहन रूप से प्रशिक्षित करना।
- अध्यापकों को इस प्रकार के कौशलों का प्रशिक्षण देना जिससे वे कक्षा में पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं से उत्पन्न प्रभावों के विषय में छात्रों को जानकारी दे सकें।

मिटजैल (1982) ने अध्यापकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने के लिये कुछ सुझाव दिये हैं। उनके अनुसार अध्यापकों की पर्यावरण शिक्षा की निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये –

1. कार्यक्रम का सम्बन्ध मूल विज्ञान से होना चाहिये परन्तु वह पूरी तरह से विज्ञान(Science ominated) प्रमुख नहीं होनी चाहिये।
2. कार्यक्रम विविध प्रकार की रूचियों तथा पृष्ठभूमि रखने वाले अध्यापकों के अनुकूल होना चाहिये।
3. कार्यक्रमों का मूल उद्देश्य अध्यापकों को पर्यावरण शिक्षा के प्रति अपेक्षित करने वाला होना चाहिये।
4. वह अध्यापकों को पर्यावरण विशेष के साथ संलग्नता उत्पन्न करने वाला होना चाहिये।
5. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा अध्यापक अपनी मान्यताओं, मूल्यों तथा भावनाओं और प्राकृतिक वातावरण के साथ सम्बन्धों के बारे में पुर्नविचार करने पर मजबूर हो सकें।

अब प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का स्वरूप क्या हो? सक्सेना (1983) ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित स्वरूपों का सुझाव दिया है –

आमने–सामने प्रशिक्षण

इस सम्बन्ध में विशिष्ट विशेषज्ञ गिने–चुने अध्यापकों को सामने बिठाकर उनको पर्यावरण शिक्षा में प्रशिक्षित करते है तथा ये प्रशिक्षित अध्यापक पुन: कुछ अध्यापकों को प्रशिक्षित करते हैं इस प्रकार की विधि में गुणवत्ता कन्ट्रोल (Quality Control) की विशेष आवश्यकता होती है।

स्व–अधिगम मोड्युल (Self Learning Module)

स्व अधिगम मोड्युल को बनाने में बहुत अधिक समय तथा अर्थ की आवश्यकता होती है, परन्तु एक बार इनके निर्माण के पश्चात अध्यापक प्रशिक्षण आसान व सस्ता हो जाता है। INCERT में ऐसे Module का निर्माण किया गया है।

Mass Media दूर संचार साधन

रेडियों, टेलीविजन, कम्प्यूटर, वीडियों, कॉन्फ्रेन्सिंग, इंटरनेट आदि का उपयोग भी आवश्यकतानुसार अध्यापकों को पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा के लिये किया जा सकेगा।

पत्राचार पाठ्यक्रम (Corrospondance courses)

पत्राचार के माध्यम से भी 'पर्यावरण शिक्षा पाठ्यकम चलाया जाता है। इसमें क्षेत्रीय अध्ययन, योजना, सर्वेक्षण आदि का भी प्रावधान रहता है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. अध्यापक प्रशिक्षण में पर्यावरण शिक्षा के संदर्भ में अपने सुझाव दीजिये?

11.9 पर्यावरण शिक्षा व्यवहार में (Environmental Education Question)

9.1 वर्तमान काल में "पर्यावरण शिक्षा" पाठ्यक्रम में अनेक प्रकार की क्रियाऐं व्यवहार में लाई जा रही है क्षेत्र, विभिन्न प्रकारों की विधियाँ आदि हैं।

9.2 पर्यावरण शिक्षा के समर्थक विभिन्न पहलुओं पर पाठ्यक्रम के निर्माण में जोर देते हैं। उदाहरण के लिये – कुछ क्रिया आधारित पाठ्यक्रम, कुछ लोग समस्या समाधान प्रकिया पर जोर देते हैं जो कुछ लोग पर्यावरण के साथ मानव के सम्बन्धों को पाठ्यकम में शामिल करने पर जोर देते हैं।

9.3 इस प्रकार "समस्या समाधान विधि" द्वारा छात्रगण समस्या से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की जानकारी, समझ व समस्या समाधान कौशलों का विकास कर सकते हैं।

9.4 सीखने का माध्यम "पर्यावरण" इस उपागम के समर्थक "पर्यावरण" को केन्द्र बिन्दु बनाकर छात्रों में उनके प्रति जागरूकता तथा पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिये जोर देते हैं। इस उपागम में "पर्यावरण" एक प्रयोगशाला का काम करता है। अध्यापक के निर्देशन में छात्रगण पर्यावरण सम्बन्धी वस्तुओं जैसे पेड–पौधे, पुष्प आदि का अध्ययन करते हैं।

9.5 वर्तमान समय में "पर्यावरण शिक्षा" को लगभग प्रत्येक देश ने अपनाया है व इसे प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। राजस्थान सरकार ने भी पाठ्यक्रम में "पर्यावरण शिक्षा" को महत्व दिया है। प्रत्येक वर्ष विद्यालयों में पर्यावरण जागरूकता के लिये माध्यमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी प्रतियोगिताओं का आयोजन "विश्व पर्यावरण दिवस" पर शिक्षा विभाग द्वारा करवाया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा व्यवहार में सफलता पूर्वक ला जा रही है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. आप अपने विद्यालय में पर्यावरण शिक्षा किस प्रकार देना चाहेंगे? पाठ्यक्रम, अध्ययन विधि तथा समय विभाग चक्र को ध्यान में रखकर इसका उत्तर लिखिये?

11.10 सारांश (Summary)

भौतिक व औद्योगिक विकास के साथ पर्यावरण को नष्ट किया जाने लगा है। "पर्यावरण शिक्षा" का इतिहास से स्पष्ट होता है कि मानव इसके प्रति जागरूक रहा है। "पर्यावरण" सम्बन्धी जानकारी व समझ उत्पन्न करने की प्रक्रिया को पर्यावरण शिक्षा कहा जा सकता है। यद्यपि विद्वानों ने पर्यावरण शिक्षा को अलग–अलग रूप से परिभाषित किया, विश्व संगठन की संस्था ने पर्यावरण शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य प्रस्तावित किये है, जिनमें पर्यावरण के प्रति जागरूकता, समझ, कौशल, मनोवृत्तियों आदि का विकास प्रमुख है। पर्यावरण शिक्षा आज अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मानव व पर्यावरण एक दूसरे के पूरक है।

11.11 मूल्यांकन (Evaluation)

प्र.1 पर्यावरण शिक्षा से आप क्या समझते है? दो वाक्यों में लिखिये?
What do you mean by Environmental Education? Write in two sentences?

प्र.2 पर्यावरण शिक्षा को अन्त: अनुशासनात्मक क्यों माना है, दो वाक्यों में समझाइये?
Why Environment Education is considered as interdisciplinary? Explain in two sentences.

प्र.3 विदार्थ ने पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों को कितनी श्रेणी में बांटा है? नाम लिखिये?
Mention objectives of Environmental Education in Teacher Education?

प्र.4 अध्यापकों की "पर्यावरण शिक्षा' से सम्बन्धित उद्देश्य कौन–कौन से हैं?
How Viddarth has classified objectives of Environmental Education?Give names?

प्र.5 पर्यावरण शिक्षा –"पाठ्यकम" के रूप में किस प्रकार व्यवहार में लाई जा रही है?
How Environmental Education Practically used in curriculum?

प्र.6 आपके मतानुसार वर्तमान भारत में "पर्यावरण शिक्षा' में क्या दोष है? किन्ही तीन दोषों की चर्चा तीन वाक्यों में कीजिये?
What are the limitations of Environment Education in India?Give your own views three limitations?

11.12 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. Soxena,A.B.” Environment Education”National Psycholigical corporation, Agra,1986
2. Agrawal, Anil 1982, ”For on Altermation Development” The Vnaco courier, August–September 23–26
3. Chourasia R.A.1998 ”Elements of Environment Education” Sahitya Prakashan Agra.
4. Senger Shivraj singh” Environment Education” Sahitya Prakashan Agra.
5. EEP (Environment Education Project),1981.
   “Environment Education; A source book for primary Education.”Curriculum development center canbera,Austrlia.
6. NCERT 1990 A Teacher’s Guide for Environmental studies Part II
   Class–V NCERT,New Delhi.
7. Rajput J.S.1978”Teaching through Environmental Paper presented at the meeting of UNESCO study group on development of curriculum material held during 4–19 December at Vdan them Thailand.

इकाई 12
भारत में वंचित वर्ग के लिए शिक्षा
(Education of Deprived Class in India)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य (Socio–economic Scenerio)

12.3 वंचित वर्ग का अर्थ (Meaning of Deprived Class)

12.4 संवैधानिक मूल्य (Constitutional Values)

12.4.1 न्याय (Justice)

12.4.2 स्वतंत्रता (Liberty)

12.4.3 समता (Equality)

12.4.4 बन्धुत्व (Fraternity)

12.5 संवैधानिक मूल्यों के शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications of Constitutional Values)

12.6 संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

12.7 वंचित वर्ग की शिक्षा (Education of Deprived Class)

12.7.1 अनुसूचित जाति की शिक्षा (Education of Schedule Class)

12.7.2 अनुसूचित जनजाति की शिक्षा (Education of Schedule Tribe)

12.7.3 निर्दिष्ट जनजाति की शिक्षा (Education of DT)

12.7.4 भ्रमणशील जनजाति की शिक्षा (Education of NT)

12.8 वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए सुझाव (Suggestion for Education of Deprived Class)

12.8.1 शैक्षिक सुविधाओं की सुलभता (Availability of Educational Facilities)

12.8.2 अंशकालिक एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था (Part Time and Distance Education System,)

12.8.3 क्षतिपूरक शिक्षा (Supportive Education)

12.8.4 शिक्षक की भूमिका (Role of a Teacher)

12.8.5 शिक्षण में सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Cultural Perspective in Teaching)

12.8.6 प्रेरक गतिविधियाँ (Motivational Activities)

12.9 सारांश (Summary)

12.10 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

12.11 संदर्भ (Reference)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत 'विविधता में एकता के लिए सम्मानित देश है। इसे आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चतम स्तर पर आत्मसंतुष्टि के स्रोत के रूप में देखने की परम्परा रही है। मुख्य रूप से कृषक समाज रहा। आर्थिक दृष्टि से विपन्नता के बावजूद आत्मनिर्भरता, संतोष और प्रत्येक गाँव में कार्य करने की स्वायत्तता पर जोर दिया जाता रहा। अतीत में सामाजिक सम्बन्धों की पहचान भी वित्तीय भूमिकाओं की जमावट, रोजगार एवं शिक्षा से थी। त्यौहार समाज के आतरिक संगठन के विभिन्न अंग के रूप में अत्यन्त स्वाभाविक तरीके से मनाए जाते थे। धार्मिक व दार्शनिक लोकाचार आत्मज्ञान की प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य से उसके आस–पास केन्द्रित रहते थे।

12.2 सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन (Socio–Economic Change)

वर्तमान भारतीय समाज में एक बड़ा वर्ग इस धार्मिक और दार्शनिक लोकाचार, सामाजिक रचना की चेतना और अतीत की विरासत की समझ से दूर चला गया है। आधुनिक प्रौद्योगिकी से प्रभावित होकर माता–पिता तथा शैक्षिक संस्थाएं केवल सूचना प्रौद्योगिकी जैसे ज्ञान अर्जित करने पर जोर देने लगी हैं। किन्तु गाँवों में रहने वाले तथा सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित वर्ग इन विकासों के प्रति आज भी अनभिज्ञ सा है। इस प्रकार एक नये प्रकार का विभाजन पैदा हो गया है जो ग्रामीण–शहरी, कृषक–औद्योगिक, समृद्ध–निर्धन, साक्षर–निरक्षर के रूप में तेजी से दिखाई दे रहा है।

कृषि प्रधान समाज के परिदृश्य में बाद की पीढ़ियाँ अपने पारम्परिक धन्धों और पारिवारिक लक्ष्यों या मोटे तौर पर जातीय लक्ष्यों का ही अनुसरण करती थी। आगे चल कर प्रौद्योगिक विकास के नये व्यवसाय शुरू हुए और परिणामस्वरूप नये लक्ष्य बिन्दुओं का उदय हुआ। संयुक्त एवं विस्तृत परिवार प्रणाली के विपरीत अब समाज में लघु परिवारों का चलन, माता–पिता दोनों के बजाय केवल 'माँ' या केवल 'पिता', अविवाहित सम्बन्ध और ऐसी अनेक बातें दिख रही हैं। आधुनिक औपचारिक श्रम या कार्य रोजगार संगठनों से सह–समूहों का जन्म हुआ। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली जो इस देश में आजादी के बाद तक भी जारी रही, ने इस प्रकार के तौर–तरीकों के विकास में काफी, योगदान दिया। यह हमारे कृषि प्रधान समाज की कार्य–रचना के एकदम विपरीत था।

इस प्रकार पूर्व में स्थित जातिगत भेद के साथ ही साथ आर्थिक वर्ग व्यवस्था ने भी समाज में असमानताएँ उत्पन्न कर दी हैं। एक बड़ा वर्ग है जो इस दृष्टि से वंचित वर्ग में समाहित है। इस वंचित वर्ग को शिक्षा के द्वारा ऊपर उठाया जाना आवश्यक है। जिससे सामाजिक समरूपता स्थापित की जा सके।

12.3 वंचित वर्ग का अर्थ (Meaning of Deprived Class)

वंचित वर्ग मे वे समस्त लोग आते हैं जो किसी न किसी कारण से समाज में हीन स्थिति में रहे हों वह सामाजिक कारण भी हो सकते हैं तथा आर्थिक भी। ऐसे व्यक्ति समाज में आगे आने में असमर्थ रहे हैं। ये शिक्षा के अवसर भी नहीं पाते। परिणाम स्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से ऊपर नहीं उठ पाते हैं।

भारतीय संविधान की धारा 341–342 में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को पिछड़ी जातियों में रखा गया है। संविधान में यह भी प्रावधान है कि राज्य अपने क्षेत्रों में

सामाजिक आधार पर जिन जातियों को वंचित वर्ग माने वह स्वीकार्य होगा। इनमें अनुसूचित जाति (Schedule Class), अनुसूचित जनजाति (Schedule Tribe), निर्दिष्ट जनजाति (Deprived Education of Schedule Tribes) एवं भ्रमणशील जनजाति (Numadic Tribes) को रखा गया है।

'वंचन' मूल रूप से आर्थिक सम्प्रत्यय है। जब एक परिवार को अधिकाधिक समय जीविका के लिए व्यय करने के बाद भी पर्याप्त भोजन एवं पोषण प्राप्त नहीं होता है तब उसे गरीब कहा जाता है। ऐसे परिवारों के बालक भी आर्थिक क्रियाओं में जुट जाते हैं तथा शिक्षा–दीक्षा के अवसरों से वंचित रहने के कारण वंचित वर्ग में आते हैं।

इसी प्रकार सामाजिक मान्यताओं एवं रीति–रिवाजों के कारण महिलाओं को समाज में समान अवसर नहीं मिल पाते। भारत के ग्रामीण एवं सुदूरवर्ती इलाकों में अभी भी बालिकाओं को बालकों से भिन्न मानकर व्यवहार किया जाता है। उनके लिए शिक्षा अर्जन से अधिक घर की जिम्मेदारी का निर्वाह करना है। अत: पढ़ाने के अवसरों से वंचित रखा जाता है। कई बार सुरक्षा की दृष्टि से भी ऐसा किया जाता है।

स्व–मूल्यांकन–1(Self Evaluation Question)

1. समाज में किस प्रकार के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं?
2. वंचित वर्ग से आप क्या समझते हैं?
3. हमारे संविधान में कौनसी जातियों को वंचित वर्ग में रखा गया है।

12.4 संवैधानिक मूल्य (Constitutional Values)

समाज में कोई भी वंचित वर्ग न रहे। सभी को समान अवसर मिलें इसलिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि – न्याय–सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक, विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा पूजा की स्वतन्त्रता, स्तर तथा अवसर की समानता तथा इनको सबमें प्रोत्साहित करेंगे। To Constitute India in to a sovereign, socialists, secular and democratic republic and to secure to all its citizens : Justice–social, economis and political ; liberty and thought, expression, faith, belief and worship, equality of status and opporturnty, and to promote among them all fratemity assuring and the dignity of the individual and the integrity of the nation.'

बन्धुत्व, व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता का विश्वास दिलाते हुए अपनी संविधान सभा में सन् 1949 नवम्बर के छबीसवें दिन अब अपनाते हैं, अधिनियम बनाते हैं अपने आपको यह संविधान देते हैं।

हमारे संविधान में चार आदर्श –न्याय, स्वतन्त्रता, समता एवं बन्धुत्व सम्मिलित करने का उद्देश्य यह रहा कि सामाजिक असमानताएं, आर्थिक–विभेद तथा राजनैतिक विशेषाधिकार समाप्त किये जा सकें। कानून की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का स्तर बराबर है। प्रत्येक की आत्म–

प्रतिष्ठा को मान्यता दी गई है। इन चारों आदर्शों का शैक्षिक महत्व है। इन्हें तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कि शिक्षा के द्वारा समाज के वंचित वर्ग को उसके महत्व को समझाया जाये। सामाजिक वर्गभेद को दूर करने के लिए ये चार अधिकार दिये गये हैं। ये वो मूल अधिकार हैं जो उन सब बातों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि भारतीय समाज के लिए मूल्यवान हैं। यह निर्देशन सिद्धान्त हैं, आचरण के नियम हैं जिन पर भविष्य के कानून एवं विधान निर्माण किये जाने चाहिए।

12.4 संवैधानिक मूल्यों के शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications of Constitutional Values)

12.4.1 न्याय (Justice)

मूल अधिकारों के सन्दर्भ में न्याय शब्द की अवधारणा से अभिप्राय है – सबको बराबरी का स्थान व अवसर। इसके अन्तर्गत राज्य नागरिकों में भेद–भाव धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग भेद या जन्म स्थान के आधार पर नहीं करेगा। इसलिए शिक्षा व्यवस्था में शैक्षिक संस्थाओं का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि उनके दरवाजे देश के किसी भी नागरिक के लिए सदैव खुले रहें। कोई भी शैक्षिक संस्था विशेष धर्म, जाति या प्रजाति या क्षेत्र के लिए ही केवल आरक्षित नहीं की जा सकती। हमारे विद्यालयों में किसी प्रकार का भेदभाव समाज के विभिन्न वर्गो या जातियों में नहीं किया जा सकता है। सभी को अपने आत्म विकास तथा ज्ञानार्जन के लिए अवसर प्राप्त हों। शिक्षा सुविधा सहज उपलब्ध हो जिससे सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचित किसी भी नागरिक के विकास के अवसर अवरूद्ध न हों। यदि किसी भी योग्य विद्यार्थी को साधनों के अभाव में शिक्षा के अवसर प्रदान नहीं किये जाते हैं तो यह सामाजिक अन्याय होगा तथा संविधान के विरूद्ध होगा।

12.4.2 स्वतन्त्रता (Liberty)

हमारे संविधान के अन्तर्गत कोई भी नागरिक अपना निवास स्थान चयन करने, भ्रमण करने, अभिव्यक्ति करने, संगठन निर्मित करने, रोजगार करने, सम्पत्ति अर्जित करने हेतु स्वतन्त्र है। इसलिये किसी भी व्यवसाय, धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा के आधार पर शाला में प्रवेश से वंचित नहीं किया जा सकता। इस अधिकार के उचित उपयोग की शिक्षा देना अत्यधिक आवश्यक है। उच्च अधिकारी, उच्च जाति, उच्च आर्थिक स्तर वाले व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता एवं अधिकार प्राप्त हों। राज्य या कानून उनके इस स्वतन्त्रता के अधिकारों के उपयोग करते समय यह न देखे कि इससे किसी व्यक्ति, वर्ग, समुदाय या जाति की स्वतन्त्रता या अधिकारों का हनन हो रहा है, उनका शोषण किया जा रहा है – तो यह संविधान की अवहेलना होगी। अत: संविधान में इस अधिकार को देने की भावना को समझना होगा। स्वयं की स्वतन्त्रता का अधिकार दूसरों के लिए शोषण नहीं बनाना चाहिए। इस भावना को शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही विकसित किया जा सकता है।

12.4.3 समता (Equality)

पूर्वोक्त सामाजिक न्याय की अवधारणा में समता का अधिकार समाहित है। यह अधिकार देश के कानून के सम्मुख सबको बराबर मानने का है। प्रत्येक नागरिक को कानून का संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। कानून किसी भी नागरिक के साथ जाति, वर्ग या धर्म के आधार पर

भेद–भाव नहीं कर सकता है। कानून सब के लिए चाहे हिन्दू हो, मूसलमान हो, युवा हो, वृद्ध हो, स्त्री या पुरूष एक समान है। इसके अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था में प्रवेश, चयन, मूल्यांकन, व्यवहार आदि में समानता का ध्यान रखा जाये। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के साथ भेदभाव किया जाना गैर संवैधानिक होगा।

12.4.4 बन्धुत्व (Fraternity)

राष्ट्रीय एकता एवं सद्भावना बनाए रखने के लिए बन्धुत्व की भावना अत्यधिक आवश्यक है। उक्त तीनों मूल अधिकार–न्याय, स्वतन्त्रता एवं समानता का विवेकपूर्ण उपयोग न किया जाये तो समाज में कई व्यक्ति शोषित होते रहेंगे। जबकि इन अधिकारों को समाविष्ट करने का उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय एकता व सद्भावना बनी रहे| इसीलिए बन्धुत्व का अधिकार सम्मिलित किया गया है। क्योंकि मूल अधिकारों के प्रयोग में दूसरे व्यक्तियों की स्वतन्त्रता में रूकावट पड़ती है या वह समाज विरोधी है या वह अनैतिक है तो उन्हें व्यवहार में लाने की अनुमति नही दी जा सकती है। इसमें कोई सन्देह नुहीं है कि हमारे संविधान में व्यक्ति की मान–मर्यादा को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है किन्तु यह राष्ट्र की एकता के बीच में रूकावट नहीं बन सकती है। अत: राष्ट्रीय सद्भावना हेतु बन्धुत्व के अधिकारों की पालना आवश्यक है। शिक्षा व्यवस्था में वंचित वर्ग के प्रति सद्भाव तथा सहयोग की भावना को पोषित किया जाना आवश्यक है।

उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत सामाजिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा सामाजिक समरूपता स्थापित करने की दृष्टि से यथेष्ट गुणात्मक तथा व्यापक शिक्षा एक बहुत ही शक्तिशाली साधना है। कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्य हैं पंथ निरपेक्षता, लोकतन्त्र, समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, न्याय, राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति। शिक्षा का दायित्व है कि वह बच्चों में मानव अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करें। निर्बल समुदाय जिनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाएं, विकलांग बच्चे 'और अल्पसंख्यक आते हैं, अब और देर तक सुविधा वंचित नहीं रखे जा सकते।

12.5 संवैधानिक मूल्यों के शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications of Constitutional Values)

12.6 संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions)

महात्मा गाँधी शिक्षा को समाज के पुनर्निर्माण एवं चेतना जाग्रत करने के लिए प्रमुख साधन मानते थे। इसके अनुरूप संविधान निर्माण समिति ने राष्ट्रीय विकास के लिए संविधान में शिक्षा को केन्द्रीय स्थान दिया। इसीलिए विभिन्न धाराओं में शिक्षा के प्रचार व प्रसार ही नहीं वरन् अनिवार्य रूप से लागू करने की व्यवस्था दी है।

इस व्यवस्था में आर्थिक एवं सामाजिक रूप से वंचित वर्ग को आगे लाने का प्रावधान भी सम्मिलित है।

समाजिक–आर्थिक वंचित वर्ग में शहरी / ग्रामीण, गरीब–अमीर, पुरूष–महिला आदि आधार बनते हैं। इन सभी आधारों को ध्यान में रखा गया है। किन्तु कुछ जाति–आदिवासी जाति, आदिवासी जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग आदि के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था भी की गई है। इन सबसे सम्बन्धित विभिन्न धाराएं निम्न प्रकार हैं :–

– धारा 45 के अन्तर्गत यह निर्देशित किया गया है कि संविधान लागू होने के दस वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक के प्रत्येक बालक को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी।

– संविधान की धारा 29(1) के अन्तर्गत प्रावधान है कि नागरिकों का कोई भी वर्ग देश के किसी भी भाग में भारत देश की सीमा में रहता हो, चाहे किसी भी भाषा या धर्म का हो, को उक्त लाभ प्राप्त होगा।

– संविधान की धारा 29(2) के अनुसार कोई भी शैक्षिक संस्था किसी भी नागरिक को धर्म, जाति, भाषा या अन्य किसी भी कारण से प्रवेश देने से मना नहीं कर सकती।

– धारा 30(1) में दिये प्रावधान के अनुसार धर्म अथवा भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग को उनकी रूचि के अनुसार शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने एवं चलाने का अधिकार होगा।

– धारा 30(2) के प्रावधान के अनुसार धर्म अथवा भाषा के आधार पर वर्गीकृत अल्पसंख्यक समूहों द्वारा प्रबंधित शैक्षिक संस्थाओं को राज्य अथवा केन्द्र सरकार अनुदान हेतु भेदभाव पूर्ण व्यवहार नहीं कर सकती।

– धारा 350(4) के अनुसार भाषा के दृष्टि से घोषित अल्पसंख्यक वर्ग के बालकों की प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा के लिए उनकी मातृभाषा में शिक्षण की सुविधा प्रदान करने की जिम्मेदारी स्थानीय अधिकृतियो की होगी।

– धारा–46 के अन्तर्गत वंचित वर्ग के आर्थिक एवं शैक्षणिक रूचि का विशेष रूप से ध्यान रखने की जिम्मेदारी राज्य सरकार को दी गई है। इस धारा के अनुसार कमजोर वर्ग में शैक्षिक रूचि जाग्रत करना एवं आर्थिक सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए। विशेष रूप से, आदिवासी एवं आदिवासी जनजाति समूह का, शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार का शोषण न हो, सम्पूर्ण सामाजिक न्याय प्राप्त हो, यह आवश्यक है।

भारतीय संविधान में 42वे संशोधन से शिक्षा को एक मात्र राज्य सरकार के दायित्व से हटा कर समवर्ती सूची में सम्मिलित कर लिया है। इस परिवर्तन का उद्देश्य था कि शिक्षा के क्षेत्र में जारी समस्त राष्ट्रीय नीतियों व प्रायोजनाओं को व्यवस्थित रूप से सुविधाऐ प्राप्त हो सकें। इस व्यवस्था में केन्द्र एवं राज्य सरकारों की सार्थक सहभागिता हो सकेगी।

12.7 वंचित वर्ग की शिक्षा (Education of Deprived Class)

सर्वप्रथम सन् 1882 में दादा भाई नारोजी ने भारतीय शिक्षा आयोग के समक्ष प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने का प्रस्ताव किया था। किन्तु अंग्रेजों ने इसे अस्वीकार कर दिया। 1910–12 में गोपाल कृष्ण गोखले ने पुन: यह प्रस्ताव रखा। इस पर भी ध्यान नहीं दिया गया। 1937 में गाँधीजी ने बुनियादी शिक्षा योजना देकर अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान रखा। योग्यता एवं साधनहीनता के आधार पर छात्रवृत्तियाँ भी प्रारम्म की गई। स्वतंत्रता के पश्चात् ये प्रयास अत्यधिक बढ़े हैं।

12.7.1 अनुसूचित जाति की शिक्षा (Education of Schedule Caste)

इनकी स्थिति समाज में अलग–थलग सी थी। परिणामस्वरूप ये शिक्षा से वंचित रहे। संविधान की धारा 17 में अस्पृश्यता निवारण का प्रावधान किया गया है। अछूतों को सभी सार्वजनिक स्थानों, धार्मिक स्थानों का उपयोग करने की छूट संविधान की धारा 15 एवं 25 में उल्लेखित है। धारा 29 में सरकारी अथवा अनुदानित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेशित होने का

अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान की धारा 16,46, 164, 335 एवं 338 में भी अनुसूचित जाति को अधिकाधिक अवसर प्रदान कर आगे लाने हेतु प्रावधान किये गये हैं।

इन विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार अनुसूचित जाति के वंचित वर्ग को शैक्षिक अवसर प्रदान करने हेतु अनेक प्रोत्साहन दिये जा रहे हैं। निःशुल्क शिक्षा, आवासीय व्यवस्था, छात्रवृत्तियाँ आदि। नई शिक्षा नीति में इन सब सुविधाओं के साथ गणवेश, पुस्तकें, स्टेशनरी आदि भी निःशुल्क उपलब्ध करवाने की सुविधा दी गई है।

12.7.2 अनुसूचित जनजाति की शिक्षा (Education of Schedule Tribe)

अनुसूचित जातियों की भाँति अनुसूचित जनजाति के लोग भी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए रहा है। इस समूह में भील, मीणा आदि आदिवासी सम्मिलित हैं। ढेबर कमीशन(1960–61) के सुझावों के अनुरूप सरकार ने अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था के साथ निःशुल्क मध्याहन भोजन, वस्त्र, पुस्तकें, लेखन सामग्री आदि भी प्रदान की जाती है। कोठारी कमीशन (1964–66) ने अनुसूचित जनजाति के विरल आबादी (Spreadly Populated Agrees) वाले क्षेत्रों में आश्रम स्कूल जिसमें निःशुल्क शिक्षा, आवास, भोजन, वस्त्र, पढ़ने–लिखने की व्यवस्था आदि की सिफारिश की।

12.7.3 निर्दिष्ट जनजाति की शिक्षा (Education of Denotified Tribes)

इन्हें अपराधशील अथवा जरायम पेशा जनजाति भी कहा जाता है। ये जनजाति भी अनुसूचित जनजाति की भांति सुदूर पहाड़ी, जंगली, रेगिस्तानी आदि क्षेत्रों में बसने वाली जाति हैं। इस जाति के लोग पहले चोरी, डकैती तथा अपराध करते थे। स्वाधीनता के पश्चात् इन्हें वह शैक्षिक सुविधाएँ प्राप्त हो रही हैं जो अनुसूचित जाति/ जनजाति को प्राप्त हैं। सरकारी नौकरियों में आरक्षण होने के कारण ये जातियाँ अपराधी प्रवृत्ति त्याग चुकी हैं। इसीलिए इन्हें जरायम पेशा या अपराधशील जनजाति न पुकार कर निर्दिष्ट जनजाति कहना प्रारम्भ कर दिया है।

12.7.4 भ्रमणशील जनजाति की शिक्षा (Education of Nomadic Tribes)

अनुसूचित जाति अथवा जनजाति की तुलना में भ्रमणशील अथवा खानाबदोश जनजाति सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से अधिक पिछड़ी रही है। जैसे बंजारे, गाडोलिया लुहार आदि का कोई स्थायी निवास नहीं होता। ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहते हैं। ऐसे बच्चों की शिक्षा व्यवस्था होना बहुत कठिन हैं। इन्हें सरकार की ओर से अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं फिर भी ये घुमक्कड़ जीवन नहीं छोड़ते। ऐसे लोगों के लिए भ्रमणशील पाठशालाएं, दूरस्थ शिक्षा, मुक्त विद्यालय, आदि ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. वंचित वर्ग के लिए संविधान में क्या –क्या प्रावधान दिये गए है?
2. 'न्याय'एवं 'समता' के मूल्य वंचित वर्ग को कैसे ऊपर उठा सकते हैं?
3. आदिवासी जाति एवं जनजाति के लिए क्या सुविधाएँ स्वीकृत की गयी हैं|

12.8 वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए सुझाव (Suggestion for Education of Deprived Group)

12.8.1 शैक्षिक सुविधाओं की सुलभता (Availability of Educational Facilities)

स्वतन्त्रता के पश्चात् शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार होता ही रहा है। तथापि ऐसे अंश जहां पर वंचित वर्ग की जनसंख्या की बहुलता हो–विशेष ध्यान देकर अधिक सुविधाएँ उपलब्ध करवाना आवश्यक है जिससे वे सामाजिक–आर्थिक लाभों को ध्यान में रखते हुए अपने बच्चों को शाला में भेजने के लिए आकर्षित हों। यदि समीप ही सुविधा हो तो अवसर का लाभ लेने की सम्भावना बढ़ जाती है। भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत श्याम पट्ट संचालन (Operation Black Board) नाम से कार्यक्रम भी चलाया है। उच्च शिक्षा विशेष रूप से व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था भी ऐसे क्षेत्रों में हो तो वंचित वर्ग लाभान्वित हो सकेगा।

ग्रामीण तकनीकी (Rural Technology), ग्रामीण अर्थशास्त्र (Rural Economics), ग्रामीण प्रबन्धन (Rural Management) आदि के पाठ्यक्रमों हेतु विशेष प्रोत्साहन होने पर बालक स्वयं के गाँव के लिए अधिक उपयोगी हो पायेगा। इसके लिए विशेष आर्थिक सहयोग दिया जाना चाहिए।

12.8.2 अंशकालिक एवं दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था (Part time and Distance Education)

आर्थिक परिस्थितियों, पारिवारिक कार्यो अथवा उत्तरदायित्वों, घर वालों की शिक्षा के प्रति उदासीनता अथवा किन्हीं सामाजिक असमानताओं आदि के कारण अनेक बच्चे बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं। इन परिस्थितियों के कारण अनेक छात्रों को तो पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा प्रारम्भ करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। ऐसे छात्रों की शैक्षिक असमानता दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि अंशकालिक तथा दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था हो जो औपाचारिक शिक्षा के बन्धनों से मुक्त हो। जहाँ प्राथमिक विद्यालय होते हुए भी अनेक बच्चे विद्यालय में नहीं आ सकते अथवा विद्यालय बीच में छोड़ देते हैं उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की व्यवस्था की गई है। केन्द्र सरकार ने 1979–80 में यह योजना शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों में प्रारम्भ की थी। इसके अन्तर्गत नागरिक बस्तियों, पर्वतीय, मरूस्थलीय तथा जनजातीय क्षेत्रों के बच्चों व कार्यरत बच्चों के लिए भी इस प्रकार के केन्द्र चलाये जा रहे हैं। शिक्षा नीति 1986 में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम को एक कार्यक्रम के रूप में संचालित करने का संकल्प किया गया है। इन अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में बच्चों की सुविधा को दृष्टिगत रखते हुए स्थान एवं लगभग 2 घण्टे का समय निश्चित कर ग्राम अथवा मुहल्ले के किसी शिक्षित व्यक्ति जिसे अनुदेशक कहते है द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है और यह लक्ष्य रखा जाता है कि 2 वर्ष की अवधि में छात्र प्राथमिक स्तर का पाठ्यक्रम पूर्ण कर औपचारिक शिक्षा की धारा में सम्मिलित हो जायें। रेडियों एवं दूरदर्शन के कार्यकम द्वारा भी इन बच्चों को शिक्षित करने की व्यवस्था की गई है। केन्द्र के सहायता अनुदान से इस प्रकार के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र राज्य सरकारों द्वारा भी संचालित किये जा रहे हैं।

प्राथमिक स्तर के समान ही माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भी अंश–कालिक शिक्षा एवं साथ ही दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था की गई है। माध्यमिक स्तर पर खुला विद्यालय (Open School) दिल्ली में सन् 1979 से कार्य कर रहा है इसके अन्तर्गत प्रवेश हेतु अवस्था और शैक्षिक योग्यता सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यह मुख्य रूप से एक पत्राचार पाठ्यक्रम संचालित करता है जो वास्तव में दूरस्थ शिक्षा है। इसके साथ ही यह स्वैच्छिक आधार पर

सम्पर्क कक्षाओं (Contact Classes) अथवा आमने–सामने की शिक्षा (Face–to–Face) की व्यवस्था करता है। यह भी उल्लेखनीय है कि खुला–विद्यालय अब +2 स्तरपर पाठ्यकम प्रारम्भ कर रहा है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनेक विश्व–विद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर एवं उपाधि (Diploma) स्तर के पाठ्यक्रम चला रहे हैं। यह पत्राचार के साथ–साथ सम्पर्क कक्षाओं अथवा आमने–सामने की शिक्षा व्यवस्था भी करते हैं। देश में इस समय विभिन्न विश्वविद्यालय ऐसे भी हैं जो खुले विश्वविद्यालय के रूप में कार्य कर रहे हैं। ऑध्रप्रदेश खुला विश्वविद्यालय(1982) इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय(1965) और कोटा खुला विश्वविद्यालय (1987) पत्राचार पाठ्यकम द्वारा यह दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था करते हैं एवं विशिष्ट स्थानों पर महाविद्यालयों में अध्ययन केन्द्र स्थापित कर सम्पर्क कक्षाओं, मुद्रित सामग्री के वितरण, परामर्श आदि की व्यवस्था भी करते हैं। इन खुले विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में रेडियो एवं दूरदर्शन का उपयोग किया जा रहा है। खुले विश्वविद्यालय में जो छात्र स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश लेते हैं उन्हें किसी शैक्षिक अर्हता (Educational Qualifications) की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यदि +2 परीक्षा उत्तीर्ण नहीं हैं तो उन्हें एक प्रवेश परीक्षा देनी पड़ती है और उसमें उत्तीर्ण होने पर ही उनका प्रवेश हो पाता है। इन प्रयासों के प्रभावों को बढ़ाने की आवश्यकता है।

12.8.3 सहयोगी शिक्षा (Supportive Education)

सहयोगी शिक्षा का अर्थ है ऐसी विशिष्ट प्रशिक्षण सुविधाओं और प्रोत्साहनों का प्रावधान जो सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछडे अथवा सांस्कृतिक रूप से वंचित वर्गो के बच्चों की प्रारम्भिक जीवन में होने वाली असुविधाओं अथवा हीनताओं की क्षतिपूर्ति कर दे। स्पष्ट है कि निर्धनता अथवा आर्थिक असमानता, घर के वातावरण, सामाजिक स्तर की हीनता तथा योनि अन्तर के कारण उत्पन्न होने वाली शैक्षिक अवसरों की असमानताओं को सहयोगी शिक्षा के द्वारा कम किया जा सकता है। सहयोगी शिक्षा के कुछ प्रावधानों जैसे निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, छात्रवृत्तियॉ, बिना मूल्य के पुस्तकें, कागज, कॉपी, पेन्सिल आदि के वितरण की व्यवस्था तथा अनौपचारिक शिक्षा, केन्द्रों, खुले विद्यालय तथा खुले विश्वविद्यालय की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन–जातियों के लिए संविधान के अन्तर्गत कमश: 15 प्रतिशत एवं 7.5 प्रतिशत आरक्षण शिक्षा संस्थाओं एवं नौकरियों में किया गया है।

साथ ही हरिजन छात्रावासों की व्यवस्था की गई है एवं जिला मुख्यालयों पर सामान्य छात्रावासों में अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए सुविधायें प्रदान की गई है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के युवकों को सार्वजनिक सेवाओं में चयन से सम्बनिधत प्रतियोगिताओं के हेतु तैयार करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। देश के प्रमुख नगरों में यह योजना चल रही है। स्त्रियों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए कन्या विद्यालय आधिकारिक संख्या में खोले जा रहे हैं तथा महिला शिक्षकों की अधिकाधिक एवं वरीयता के आधार पर नियुक्ति की जा रही है। स्त्रियों को तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त करने पर तथा परम्परागत धन्धों में लगाये जाने हेतु प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

चालकीय डचलचजद्ध बाधाओं और सामान्य बाधाओं से ग्रस्त बच्चों की शिक्षा जहॉ तक सम्मव है, अन्य बच्चों के समान तथा इसके साथ ही एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत की जा रही। इस नीति पर आगे चलने की घोषणा नीति में भी गई है।

जिन्हे अपने प्रारम्मिक जीवन में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं मिल सका उनके लिए प्रोढ़ शिक्षा की व्यवस्था स्वतन्त्रता पूर्व से ही की जा रही है।

प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकम में रेडियो, दूरदर्शन और चल–चित्रों का पूर्ण सहयोग लिया जायेगा। साथ ही अधिगमकर्ताओं (सीखने वालों) की रूचियों को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के अनौपचारिक कार्यक्रम वृहत स्तर पर आयोजित किये जायेंगे।

12.8.4 शिक्षक की भूमिका (Role of a Teacher)

शिक्षा व्यवस्था में असमानता को दूर करने, वंचित वर्ग को पूर्ण सुविधा देने की प्रकिया में शिक्षक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यदि संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में शिक्षक सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करना चाहते हैं तो व्यक्तिगत सोच को विस्तार दे कर सामान्य हित में कार्य करें। भारतीय दर्शन तथा सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करते हुए सांवैधानिक प्रावधानों को सही सन्दर्भ में समझे। क्योंकि समाज के समस्त वर्गभेद को मिटाने के लिए संविधान में दिये गये प्रावधान मात्र दिखावा नहीं है, केवल सैद्धान्तिक नहीं है वरन् समाज की परिवर्तनशील स्थितियों में समाज के संरक्षण के व्यावहारिक निर्देश है। अत: शिक्षकों के प्रशिक्षण के दौरान इनके मूल तत्व को समझते हुए शिक्षकों को संवेदनशील होना चाहिए।

दार्शनिक अर्थ में न्याय, स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्दुत्व अन्तर्सम्बन्धित हैं एवं एक–दूसरे पर निर्भर है। अत: इन्हें अलग–अलग भी समझना होता है। न्याय में शिक्षक को समझना होगा कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक किसी भी आधार पर भेद–भाव न करते हुए छात्र जो भी योग्यता रखते हैं उसके अनुसार व्यवहार करना होगा। समाज के वंचित वर्ग के लिए आरक्षण के नियम की पालना करनी चाहिए। अत: दूसरे शब्दों में शिक्षक को छात्रों के साथ समान व्यवहार तो करना ही चाहिए साथ ही छात्रों को भी सामाजिक न्याय की माँग करने के लिए जागृत करना चाहिए। इससे समाज जागृत होगा। शिक्षकों को यह समझना होगा कि अन्याय होता रहे तथा समाज का एक वर्ग सुविधा सम्पन्न हो। इससे राष्ट्र में शान्ति कभी नहीं रह सकती। न ही विकास हो सकता है। अत: सामाजिक मूल्य के रूप में 'न्याय' की शिक्षा दी जानी चाहिए।

इसी प्रकार स्वतन्त्रता का अर्थ बन्धनों से मुक्ति है। किन्तु समाज में मान्यताओं, आदर्शो एवं संस्कारों के बन्धन में रहना होता है। तभी स्वतन्त्रता समाज के लिए हितकारी होती है। प्रशिक्षणार्थी को महाविद्यालय के समस्त नियमों की पालना करनी चाहिए तथा इसे अपने व्यवहार का अंग बनाना चाहिए। जिससे स्वानुशासित जीवन जी कर खाज में एक व्यवस्था स्थापित की जा सके। इससे प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित होने का पूरा अवसर मिलेगा। राष्ट्र के लिए एक जिम्मेदार सुनागरिक के रूप में सभी का विकास हो सकेगा। यही शिक्षक को स्वयं भी समझाना पड़ेगा कि स्वतन्त्रता का अर्थ निर्बाध स्वच्छन्दता नहीं होता। समाज एवं राज्य द्वारा निर्धारित नैतिक सीमाओं के अन्तर्गत व्यवहार करना होगा। अत: स्वानुशासन के साथ स्वतन्त्रता के अधिकार का उपयोग शिक्षकों को सीखना एवं सीखाना होगा।

समानता का अर्थ व्यवहार में शुद्धता से होता है। वैसे प्राकृतिक, भौतिक, वंशानुगत, जैविक एवं इसी प्रकार की अन्य असमानताओं के लिए शिक्षक कुछ नहीं कर सकता। किन्तु

समाज द्वारा रखी गई असमानताओं को कम करने में पर्याप्त सहयोग दे सकता है। शिक्षक–शिक्षा द्वारा इसका प्रावधान किया जा कर समाज की विसंगतियों को दूर किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि अशक्त एवं वंचित वर्ग के लिए विशेष सुविधाएं विकसित की जायें। जिससे वे भी बेहतर जीवन जी सकें। हमारे देश में राज्य द्वारा विभिन्न प्रकार के संरक्षण, सहयोग एवं सुविधाऐं प्रदान की जा रही है।

12.8.5 शिक्षण में सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Cultural Perspective in Teaching)

'विविधता में एकता' के विचार में काफी अन्तर आता जा रहा है। क्षेत्रीयता जातिवाद, वर्ग एवं विभिन्न समुदायों में इतनी मतभिन्नता हो गई है कि राष्ट्र की एकता में खतरा सा अनुभव होने लगा है। ".....Social harmony and brotherhood,the feeling of associative living and neighbourhood have received a set back.Social solidarity and cohesion are being gradually replaced by a fractured society caste identities are turning into caste conflict.From a social category caste has become a political force and recieved political overtone and value .....The "Curriculum Framework of Teacher Education"(1998)suggested certain concrete steps to be taken by teacher education,....."(NCTE,2004,36)

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का यह मानना रहा है सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। जनजाति क्षेत्र के बालक एवं शहरी क्षेत्र के बालक की पृष्ठभूमि एवं अनुभव अलग है। अत: एक ही तरीके से पढ़ाना उपयुक्त होता। "It is this context that special mention may be made of some cultural practices such as story telling ,dramatics and aesthetics which should become a strong basis for our pedagogy rather than one uniform,mechanistic way of student learning."(NCTE,1996,14)

12.8.6 वंचित वर्ग के बालकों को प्रोत्साहन हेतु गतिविधियों (Activities for Encourage ment of Deprived Children)

वंचित वर्ग की शिक्षा पर ध्यान देने के लिए कक्षा–कक्ष शिक्षण के अतिरिक्त भी कई गतिविधियॉ सुझाई गई है। जिससे शाला–समुदाय सम्बन्धों में वृद्धि हो सके। जैसे :–

- छात्रों के जन्मदिन का आयोजन
- अभिभावक दिवसों का आयोजन
- अभिभावक शिक्षक संघ को सक्रिय बनाना
- सामुदायिक खेल–कूद एवं अन्य प्रतियोगिताएँ
- सामुदायिक संसाधनों का प्रयोग
- छात्रों की पृष्ठभूमि को जानना/समझना
- राष्ट्रीय दिवसों के आयोजन में सभी समुदायों की सहभागिता
- पर्यावरण शिक्षा में सक्रियता
- सामाजिक वानिकी एवं पौधारोपण में सहयोग

- विद्यालय विकास में समुदाय का सहयोग
- स्वास्थ्य चेतना केम्पों का आयोजन
- समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) करना
- सांस्कृतिक मूल्य (Cultural Specific Value) का संपोषण करना।

उक्त समस्त गतिविधियों में शिक्षक–शिक्षा में ऐसी व्यवस्था की जाये कि वंचित वर्ग स्वयं को सबके साथ महसूस करे। उनमें आत्म विश्वास जागत हो। इसके लिए कहा गया है, Teacher Education has twin responsibility in this regard, first to evolve a new pedagogy of education for children coming from the neglected rections like this and second, to develop positive attitudes among teachers for its success.(NCTE–2004,39).

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् ने शिक्षक शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं, उनमें प्रथम उद्देश्य है :

".....to promote capabilities for inculcating national values and goals as enshrined in the constitution of India."(NCTE–1928,24).

Curriculum Framework for Teacher Education–2004 के दस्तावेज में स्पष्ट लिखा गया कि"Teacher need to be sensitized in the provisions of Indian condtitution regarding underprivilkeged groups like scheduled castes,scheduled tribes, other backward classes,woman etc.on one hand and justice,liberty,equality of status and opportunity on the other.(Pg.10).

12.9 सारांश (Summary)

समाज में होने वाले विभिन्न प्रकार के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों से एक बड़े समूह के व्यक्ति शैक्षिक व्यवस्थाओं व उन्नति के अवसरों से वंचित रह जाते हैं। समाज दो वर्गो में विभाजित होता जा रहा है। समाज में हीन स्थिति में रह रहे लोग वंचित वर्ग के लोग कहे जाते हैं। इसमें विशेष रूप से आदिवासी जाति,आदिवासी जनजाति निर्दिष्ट जनजाति एवं भ्रमणशील जनजाति वाले लोग सम्मिलित हैं। भारतीय संविधान में न्याय, समानता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व– चार मूल्य ऐसे दिये गये हैं जो समाज में होने वाली विभिन्न गतिविधियों में मानव मात्र को समान अवसर प्रदान करें। इसमें वंचित वर्ग के लिए विशेष सजगता भी सम्मिलित हैं । संविधान की विभिन्न धाराओं में इसके लिए विशेष प्रावधान दिये गये हैं। वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए विशेष सुझाव है–शैक्षिक सुविधाओं की सुलभता, अंशकालीन एवं दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था, क्षतिपूर्ति शिक्षा आदि के साथ यह भी बताया गया है कि शिक्षण में स्थानीय एवं सांस्कृतिक शैली को आधार बनाया जाये। शिक्षक–शिक्षा के द्वारा शिक्षकों को अधिक संवेदनशील बनाया जाये। जिससे शिक्षक की भूमिका सशक्त बने। वंचित वर्ग को ध्यान में रखते हुए प्रेरक गतिविधियों को उपयुका स्थान भी देना चाहिए।

12.10 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Questions)

1. वंचित वर्ग के लिए संविधान में क्या शैक्षिक प्रावधान दिये गये हैं।
   What educational Provisions are given in the Constitution for the deprived class?
2. वर्तमान में वंचित वर्ग की शिक्षा के लिए मुख्य सुझाव दीजिये।
   Give important suggestions for the education of deprived class.

12.11 सन्दर्भ साहित्य (References)

1. विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।
2. डी. एस.एस. माथुर, शिक्षा के दार्शनिक सामाजिक आधार, 1995, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. Some Specific Issues and Concerns of Teacher Eduction, 2004, N.C.T.E, New Delhi.
4. Curriculum Framework For Teacher Education(1996)–NCTE,New Delhi.
5. Curriculum Framework For Quality Teacher Education(1998),NCTE,New Delhi.
6. Curriculum Framework For Teacher Education,2004,NCTE,New Delhi.
7. Sinha, Tripathi and Mishra, Deprivation (1982), Concept Publishing Company, New Delhi.
8. Tqwards Meeting a Commitment–Achievements Under Education for All: A Statuse paper–dept. of Education, MHRD, Govt.of India, July, 1995.

12.12 BIBLIOGRAPHY:

1. Sharma,R.A.(1994),Distance Education:Theory,Practice and Research,Loyal Book Depot,Meerut.
2. Reddy,G.Ram(1984,'OpenEducation System in India Its Place and Potential Hyderabad':Andhra Pradesh Open University.
3. Parmaji,S.C.(Ed.)(1984),Distance Education,New Delhi,Sterling publishers.
4. Lewis,B.N.(1974): Educational Technology at the Open University. An Approach to the problem of Quality in British Journal of E.T.
5. Keegan,Desmond(1986):The Foundation of Distance Education,London,croom Helm.,
6. Foks,J (1987): Towards Open Learning,in P.Smith and m.kelly (eds.) Distance Education and the Mainstream, London Croom helm.
7. Cunningham (1987) : Openness and Learning to Learn. Beyomd distance teaching towards Open Learning, Open University Press.

इकाई–13

स्त्री शिक्षा एवं भारत में लैंगिक असमानता

(Women Education and Gender Inequality in India)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

13.1 इकाई के उद्देश्य

13.2 स्त्री शिक्षा की आवश्यकता

13.3 भारत में स्त्री शिक्षा का विकास

13.3.1 प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा

13.3.2 ब्रिटिश काल में स्त्री शिक्षा

13.3.3 स्वतंत्र भारत में स्त्री शिक्षा

13.3.4 वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा

13.4 स्त्री शिक्षा की समस्याएँ

13.5 स्त्री शिक्षा के विकास हेतु किये जा रहे प्रयास

13.5.1 अनौपचारिक शिक्षा

13.5.2 महिला समाख्या–महिला समानता हेतु शिक्षा महिला संघ

13.5.3 महिला संघ

13.5.4 ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड

13.5.5 जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम

13.5.6 सर्वशिक्षा अभियान

13.6 भविष्य के लिए योजनाऐ

13.7 सार–संक्षेप

13.8 प्रगति का मूल्यांकन

13.9 सन्दर्भ पुस्तकें

13.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई की सम्प्राप्ति के पश्चात् आपको इस योग्य होना चाहिये कि

- स्त्री शिक्षा के अर्थ को भली–भांति बता सकें।
- स्त्री शिक्षा के ऐतिहासिक स्वरूप को समझ सकें।
- स्त्री शिक्षा की सांस्कृतिक व क्षेत्रीयता के आधार पर विभिन्नताओं और उसके पीछे आधारभूत कारणों को समझ सकें।
- छात्राध्यापक इस पाठ को पढ़कर इस बात से अवगत हो सकेंगे कि स्त्री शिक्षा के विकास के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे हैं और इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिलने के पीछे क्या कारण हैं?
- इस इकाई के अध्ययन से छात्राध्यापक स्त्री शिक्षा के महत्व से अवगत हो सकेंगे और साथ ही प्रजातांत्रिक युग में स्त्री शिक्षा की महत्ती भूमिका से अवगत हो सकेंगे।

– इस इकाई के अध्ययन से छात्राध्यापक अपनी ओर से भी स्त्री शिक्षा के विकास हेतु आवश्यक सुझाव दे सकेंगे।

13.2 स्त्री शिक्षा की आवश्यकता (Need of the Education)

आधुनिक युग में ही नहीं वरन् प्राचीनकाल में भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया था। प्राचीन काल में अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम पढ़ने को मिलते हैं। लेकिन धीरे–धीरे स्त्रियों की समानता व शिक्षा को अस्वीकार किया जाने लगा। वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को स्वीकार किया जाने लगा है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने स्त्री शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि एक लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है, किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भी स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया और लिखा शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित लोग नहीं हो सकते हैं। यदि सामान्य शिक्षा को स्त्रियों अथवा पुरूषों तक सीमित करने का प्रश्न हो तो यह अवसर स्त्रियों को देना चाहिए क्योंकि तब यह शिक्षा निश्चित रूप से भावी सन्तान तक पहुँचेगी।

राष्ट्र की उन्नति में पुरूषों के योगदान के साथ–साथ स्त्रियों का भी योगदान मिले, इस दृश्टि से भी, स्त्री शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया है। आज स्त्रियॉ– शिक्षा, चिकित्सा, नर्सिंग, कानून, न्याय आदि क्षेत्रों में ही नहीं वरन् इंजीनियरिंग, वायुयान संचालन, सुरक्षा संबंधी कार्य आदि सभी स्रोतों में पुरूषों के समान ही सेवा कर रही हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत के विकास में स्त्री के महत्व को महसूस किया गया है। संविधान के द्वारा स्त्री व पुरूष दोनों को सभी क्षेत्रों में समान माना गया और यह कहा गया कि लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेज–भाव नहीं किया जायेगा। 1962 में श्रीमती हंसा मेहता समिति ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा था कि यदि भारत में प्रजातांत्रिक समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण करना है तो स्त्रियों को प्रभावशाली ढंग से पुरूषों के समान अवसर दिये बिना यह कार्य सम्भव नहीं है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बने सभी शिक्षा आयोगों ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया। 1964–66 के शिक्षा आयोग ने भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए लिखा था कि पुरूषों की तुलना में स्त्री शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि स्त्री शिक्षा के बिना मानवीय संसाधनों का पूर्ण विकास संभव नहीं है और घरों का सुधार शिक्षित महिलाओं द्वारा ही संभव है। स्त्री शिक्षा का शैशव काल में बालकों के चरित्र निर्माण और प्रजनन दर घटाने पर विशेष प्रभाव पड़ता है। मुगल व ब्रिटिश काल में हमारे देश में स्त्रियों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बना कर अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। प्रजातांत्रिक भारत में आधा मताधिकार स्त्रियों के पास है। अत: यह महसूस किया गया कि शिक्षित स्त्रियों द्वारा मताधिकार का उचित एवं अधिकाधिक प्रयोग किया जा सकेगा। इन सभी कारणों से स्त्री शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई।

13.3 भारत में स्त्री शिक्षा का विकास (Development of Women Education in India)

भारतीय संस्कृति में स्त्री शिक्षा का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। इसके विकास को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं -

13.3.1 प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा (Women Education in Ancient India)

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा को हम वैदिक काल से देख सकते हैं। उस समय की स्त्रियों को पुरूषों के समान ही शिक्षा दी जाती थीं। शिक्षा प्राप्त करने एवं यज्ञ करने में स्त्री–पुरूषों की समान स्थिति थी। उस समय अनेक स्त्रियों ने अनेक सूक्तों की रचना की। उन स्त्रियों को ऋषिका कहा जाता था। स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार होता था और वे वेदों का अध्ययन एवं गायत्री मंत्र का जाप करती थीं। उस समय में हमें अपाल इन्द्राणी, उर्वषी, धोसा, जरिता जुहू, यमी, रोमशा, देवयामी, पोलोमी लोपामुद्रा, बागम्भृणी, विश्वधारा क्षार्गा, श्रद्धा–कामायनी, सावित्री, नोधा, गोपायना सिक्ता–निवावरी आदि ऋषिकाओं के नाम मिलते हैं। मनुस्मृति में यह कहा गया है "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में यह भी लिखा है कि राजा का कर्तव्य है कि वह सभी लड़कों व लड़कियों के लिए नियत समय तक ब्रहमचर्य आश्रम में रहने की व्यवस्था करें

उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की वह स्थिति नहीं रही। इससे उनकी शिक्षा की ओर उतना ध्यान नहीं रहा। उस समय स्त्रियों को निम्न व शूद्र के रूप में माना जाने लगा। लेकिन उस समय की कादम्बरी की कथा में भी स्त्रियों के लिए यज्ञोंपवीत धारण करना आवश्यक बताया था। महाकवि कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा ने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में हराया था लेकिन इन स्त्रियों को अपवाद के रूप में देखा जा सकता है।

उत्तर वैदिक काल के बाद बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति व शिक्षा में काफी सुधार हुआ। स्त्रियों की शिक्षा के लिए पृथक संघ स्थापित किये गये। बौद्ध बिहारों में भिक्षु–भिक्षुणियां रहा करते थे और उनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था होती थी। इसके बावजूद भी स्त्रियों को पुरूषों के समान नहीं समझा जाता था। उस समय यह नियम था कि सौ वर्ष की भिक्षुणी भी नये भिक्षुक का आदर करती थी।

मुस्लिम काल को तो स्त्री शिक्षा के अंधकार युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। मुसलमानों की पर्दाप्रथा व स्त्री शिक्षा को गौण समझने की भावना हिन्दुओं में भी आ गई। इसके साथ ही बाल–विवाह, सती प्रथा, अंध विश्वास आदि ने भी स्त्री शिक्षा के मार्ग को अवरूद्ध किया। यद्यपि मुस्लिम राजपरिवारों में स्त्री शिक्षा प्रचलित थी| इसी प्रकार हिन्दु व मुस्लिम उच्च परिवारों में भी स्त्री शिक्षा की व्यवस्था घर पर होती थी।

13.3.2 ब्रिटिश काल में स्त्री शिक्षा (Women Education in British Period)

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में भी स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता ही रही। इसका कारण यह था कि कम्पनी का उद्देश्य कुछ बालकों को शिक्षा देकर क्लर्क बनाना मात्र था। इसलिए

ही **एडम्स** महोदय ने अपने प्रतिवेदन में उस समय की शिक्षा के संदर्भ में लिखा "समस्त स्थापित शिक्षण संस्थाएं पुरूषों के लाभार्थ है, समस्त महिला जगत अज्ञानता के अंधकार में भटक रहा हैं ' लेकिन ईसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार के लिए शिक्षा का सहारा लिया और विशेषकर स्त्री शिक्षा के द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार किया। 1820 में बालिकाओं के लिए कलकत्ता में डेणिहेयर ने पहली पाठशाला स्थापित की। बंगाल की शिक्षा परिषद् के प्रधान **जे.ई.बेत्यून** ने 1849 में अपने आय से बालिका विद्यालय की स्थापना की। इस समय तक मद्रास में 150, बम्बई में 56 व बंगाल में 188 बालिकाओं के विद्यालय स्थापित हो गये थे।

1854 के बुड घोषणा पत्र में भी स्त्री शिक्षा के विकास पर जोर दिया गया और इसके बाद बालिकाओं के लिए अनेक विद्यालय स्थापित हुए। 1870 में इंगलैण्ड की समाज सुधारक **मेरी कारपेण्टर** ने भारत में आकर प्रथम महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना की।1882 में **हण्टर आयोग** ने भी स्त्री शिक्षा की स्थिति को दयनीय मानते हुए लिखा "यह स्पष्ट है कि स्त्री शिक्षा अभी तक अत्यधिक पिछड़ी दशा में है। इस बात की आवश्यकता है कि हर प्रकार से इसकी प्रगति के लिए प्रयास किये जायें।

इस काल में स्त्री शिक्षा के लिए राजकीय प्रयासों की तुलना में निजी प्रयासों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। उस समय चिकित्सा व्यवसाय में भी बालिकाओं ने प्रवेश लेना प्रारम्भ कर दिया था।

इसी दौरान भारत में सांस्कृतिक जागृति प्रारम्भ हुई। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा के लिए काफी कार्य किया। स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और इस संस्था ने स्त्री कल्याण के लिए अनेक कार्य अपने हाथ में लिया। बंगाल में रामकृष्ण मिशन ने स्त्री शिक्षा के लिए काफी कार्य किया। इन सभी के साथ राष्ट्रीय आदोलन व स्वतंत्रता आदोलन के दौरान स्त्री शिक्षा व जागृति को प्रेरणा मिली। भारतीय महिलाओं में राष्ट्र प्रेम व भक्ति की भावना का संचार हुआ और उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में काफी सक्रिय सहयोग दिया।

1947 में बालिका विद्यालय व बालिकाओं की संख्या –

क्र. स.	स्तर	संख्या	बालिकाओं की संख्या
1	प्राथमिक विद्यालय	21,479	34,75,165
2	माध्यमिक विद्यालय	2,370	6,02,280
3	महाविद्यालय	59	20,340

13.3.2 स्वतंत्र भारत में स्त्री शिक्षा (Women Education in Free India)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान द्वारा सभी नागरिकों को समान माना गया है। स्त्री के सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर में स्वतंत्रता के बाद काफी प्रगति हुई है। लेकिन इस प्रगति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के संदर्भ में दिये गये सुझावों को देखना भी हमारे लिए आवश्यक है।

सबसे पहले 1948–49 में विश्वविद्यालय आयोग ने स्त्री शिक्षा के संदर्भ में अग्रलिखित सिफारिशें की –

(1). स्त्रियों के लिए शिक्षा सम्बन्धी अवसरों में वृद्धि करना।

(2). अध्यापिकाओं को समान कार्य के लिए अध्यापकों के समान ही वेतन मिलना चाहिये।

(3). स्त्रियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्त हो जिससे कि वे अच्छी माता व गृहणी बन सकें।

(4). गृह विज्ञान व प्रबंध के प्रति विशेष भावना दूर करने के लिए शैक्षिक परामर्श की व्यवस्था हो।

(5). नये सह–शिक्षा कॉलेज खोजते समय यह ध्यान रखा जाये कि वे सही अर्थो में सह–शिक्षा कॉलेज के रूप में कार्य करें।

इसके पश्चात् 1952 में नियुक्त माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी लड़कियों के लिए अलग से विद्यालय खोलने एवं गृह विज्ञान की विशेष व्यवस्था पर बल दिया।

स्त्री शिक्षा के लिए पहली बार राष्ट्रीय समिति 1958 में श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख की अध्यक्षता में गठित की गई। इसने 1959 में अपनी सिफारिशें इस प्रकार प्रस्तुत की –

(1). स्त्री शिक्षा को मुख्य समस्या मानते हुए उसके विकास कार्य को प्राथमिकता दी जाये।

(2). स्त्री शिक्षा के प्रबंध के लिए अलग से मशीनरी का प्रबंध किया जाये – जैसे शिक्षा के लिए राष्ट्रीय संस्थान, स्त्री शिक्षा के लिए प्रान्तीय संस्थान आदि निर्मित हों।

(3). स्त्री शिक्षा का सम्पूर्ण भार केन्द्रीय सरकार वहन करें।

इन सिफारिशों के आधार पर 1959 में नेशनल काउंसिल ऑफ वीमेन एजूकेशन की स्थापना की गई।

इसके बाद 1962 में श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में स्त्री शिक्षा के लिए एक समिति गठित की गई। इस समिति ने मुख्य रूप से यह सिफारिश की कि लिंग के आधार पर पाठ्यकम में विभेद करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि शिक्षा का संबंध वैयक्तिक रूचि व समझ से होता है। प्राथमिक स्तर तक एक समान पाठ्यक्रम हो और मिडिल स्तर पर गृह विज्ञान मूल विषय के रूप में लड़के–लड़कियों के लिए होना चाहिए। यहा अध्यापक–अध्यापिकाओं का सम्मिलित स्टाफ होना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर विविध पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया जाये। लड़कियों के प्रिय विषयों–संगीत व चित्रकला के लिए विशेष व्यवस्था की जाये। योग्य व अनुभवी अध्यापकों द्वारा यौन शिक्षा की व्यवस्था की जाये। गणित व विज्ञान का अध्ययन करने वाले लड़कियों को प्रोत्साहन दिया जाये।

इसके पश्चात् 1963 में भक्तवत्सलम् की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति का स्त्री शिक्षा में सार्वजनिक समर्थन के कारणों को जानने के लिए गठन किया गया। इस समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि विद्यालय भवन के निर्माण, मरम्मत, आवास आदि में समाज का सहयोग लिया जाये और अध्यापकों में सह–शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाये। स्कूल सुधार समारोह मनाकर, गोष्ठी का आयोजन करके, नामांकन अभियान चलाकर, आकाशवाणी व पत्र–पत्रिकाओं द्वारा इसके पक्ष में लोकमत जागृत करना चाहिए। प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं की ही नियुक्ति की जाये और इनकी नियुक्ति के नियमों में उदारता बरती जाये।

1964वें शिक्षा आयोग ने अपनी सिफारिशों में देशमुख समिति, हंसा मेहता समिति व भक्तवत्सलमू समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया। इसके साथ ही कुछ और सुझाव भी दिये। आयोग ने कहा कि स्त्री–पुरूषों की शिक्षा के मध्य अन्तर समाप्त किया जाये, स्त्री शिक्षा के

प्रसार के लिए आर्थिक सहायता अधिकतम दी जाये, आठवीं कक्षा तक गृह विज्ञान की शिक्षा दी जाये लेकिन उच्च माध्यमिक स्तर पर गह विज्ञान को वैकल्पिक विषय के रूप में रखा जाये। उक्त शिक्षा के अध्ययन हेतु छात्राओं के लिए सस्ते छात्रावासों की व्यवस्था की जाये।

1970 में स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय समिति ने भी अपने सुझावों में कहा कि देश के विकास के लिए स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। स्त्री शिक्षा और राष्ट्रीय विकास पुनर्निर्माण कार्यक्रम दोनों को एक साथ जोड़ा जाये। लड़कियों के विद्यालयों में उन अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाये जो गाँवों में जाने को तैयार हों। इस समिति ने भी लड़कियों की शिक्षा के लिए विशेष आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता पर जोर दिया और छात्र–छात्राओं की शिक्षा के अन्तर को कम करने पर बल दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) के सुझाव

शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) में अनेक सुझाव दिये गये। प्रमुख सुझाव निम्न हैं –

(1). शिक्षा के अन्तर्गत व्याप्त क्षेत्रीय असमानता को दूर करना। ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा की अच्छी सुविधायें उपलब्ध कराना।

(2). सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए "कॉमन स्कूल सिस्टम" (Common School System) प्रणाली लागू करना, सामान्य विद्यालयों के शैक्षिक स्तर का उन्नयन करना, पब्लिक विद्यालयों में प्रवेश की शर्त छात्र की योग्यता के अनुसार रखना तथा कमजोर वर्ग के छात्रों को निःशुल्क शिक्षा की सुविधायें प्रदान करना।

(3). सामाजिक परिवर्तन के लिए बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।

(4). पिछड़े वर्गो (विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियाँ) की शिक्षा के प्रसार पर सर्वाधिक बल प्रदान करना।

(5). मानसिक एवं शारीरिक रूप रो विकलांग बालकों की शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है कि "लाभ उठाने से अब तक वंचित वर्ग को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप शैक्षिक अवसरों की समानता उपलब्ध कराकर विषमताओं के उन्मूलन पर बल दिया जाएगा। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है –

(1). महिलायें

(2). अनुसूचित जाति

(3). अनुसूचित जनजातियाँ

(4). अल्पसंख्यक वर्ग

(5). शारीरिक विकलांग

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1988) के अन्तर्गत उपर्युक्त पाँच वर्गो में शैक्षिक अवसरों की समानता लाने पर विशेष बल दिया गया हैं|

महिलाओं को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने के लिए निम्नांकित प्रावधान किये गये हैं –

(1). महिलाओं की निरक्षरता का उन्मूलन करना।

(2). तकनीकी और व्यावसायिक कार्यो में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना।

(3). बालक–बालिकाओं की शिक्षा में कोई भेदभाव न करना।

(4). महिलाओं के प्रति दुराग्रह वाले अंशों को पाठ्यकम से निष्कासित करना।

(5). अनुसंधान कार्यो में महिलाओं को प्रोत्साहित करना।

13.3.4 वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा (Women Education at present)

स्त्री शिक्षा के इतिहास को देखने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इसमें निरन्तर सुधार हो रहा है लेकिन अपेक्षित स्तर का नहीं। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है। हमारे देश में आज स्त्रियों की साक्षरता सभी स्थानों पर पुरूषों की साक्षरता से कम है। इसी प्रकार नगरीय स्त्री साक्षरता से ग्रामीण स्त्री साक्षरता कम है।भारत में स्त्री साक्षरता सबसे अधिक केरल में 73.39 प्रतिशत है और न्यूनतम स्त्री साक्षरता राजस्थान में 13.36 प्रतिशत है। गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, पश्चिमी बंगाल एवं तमिलनाडु में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत 30से 40 के मध्य है और शेष अन्य राज्यों में स्त्री साक्षरता 15 से 30 प्रतिशत के मध्य है। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की संस्तुति पर भारत सरकार ने स्त्री शिक्षा पर एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की है। इस समिति ने यह सुझाव दिया कि कक्षा 1 से 12 तक की छात्राओं के शिक्षा शुल्क को सरकार देगी।

भारत में स्त्री–पुरूष साक्षरता (प्रतिशत मे)

वर्ष	स्त्री	पुरुष
1901	0.6	9.83
1911	1.05	10.56
1921	1.81	12.20
1931	2.93	15.59
1941	7.30	24.90
1951	7.93	24.95
1961	12.95	34.44
1971	16.89	34.95
1981	24.82	46.89
1991	39.29	64.13
2001	54.16	75.85

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट हो जाता है कि पुरूष साक्षरता की तुलना में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत बहुत ही कम है।1981 में स्त्री साक्षरता से पुरूष साक्षरता लगभग दुगुनी है और शेष वर्षो में दुगुनी से लेकर दस गुनी अधिक रही है। इस सारणी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 1901 से 1981 तक पुरूष साक्षरता में हुई प्रतिशत वृद्धि से स्त्री साक्षरता में वृद्धि बहुत अधिक हुई है

स्त्री पुरूष साक्षरता देखने के बाद स्त्री साक्षरता में ग्रामीण व नगरीय स्त्री साक्षरता की तुलना आवश्यक है।

सारणी में आये वर्ग के अनुसार ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में स्त्री साक्षरता प्रतिशत में 2001 के अनुसार

आयु वर्ग	**समस्त**	**ग्रामीण**	**नगरीय**
5–9	25.79	19.63	48.38
10–14	44.85	36.44	73.39
15–19	43.28	33.66	70.40
20–24	37.18	27.16	65.16
25–29	28.96	19.64	56.98
35 और ऊपर	14.44	8.62	35.91
सभी आयु	24.82	17.46	47.82

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत नगरीय स्त्रियों की साक्षरता की तुलना में बहुत कम है। अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री साक्षरता में वृद्धि में तेजी लाई जाये और विशेष कर ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियों में साक्षरता के लिए विशेष व्यवस्था की जाये। अत: हमारे देश की स्त्री शिक्षा की वर्तमान स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती।

13.3.5 बालिका शिक्षा की मुख्य चुनौतियाँ

प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी के मार्ग में अनेक अवरोध है। डी.पी.ई.पी. योजनान्तर्गत विशेष शोध अध्ययनों के माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी में बाधा उत्पन्न करने वाले मुख्य कारणों की पहचान करने हेतु एक सुनियोजित कार्य योजना बनाई गई। इन कारकों में सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक कारक मुख्य रूप से चिहनांकित किये गए यह कारक विद्यालयी वातावरण में भी जड़ जमाए हुए थे। शोध अध्ययन के अनुसार बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक इस प्रकार है।

13.4 स्त्री शिक्षा की समस्याएँ (Problems of Women Education)

स्त्री शिक्षा की स्थिति देखने और विभिन्न समितियों व आयोगों के सुझावों को देखने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री शिक्षा की अपनी बहुत समस्याएँ हैं यद्यपि सरकार इस दिशा में जागरूक है और प्रत्येक दिशा में प्रयत्नशील है। लेकिन कुछ समस्याएं ऐसी हैं, जिनके कारण स्त्री शिक्षा का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है।

1. पक्षपातपूर्ण धारणा – स्त्री शिक्षा के प्रति समाज की उचित धारणा नहीं है। समाज के निम्न व गरीब तबके और विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री शिक्षा को अनावश्यक व विलासिता के रूप में देखते हैं इसके साथ ही बाल विवाह, दहेज प्रथा व पर्दा प्रथा आदि कुप्रथाओं ने भी स्त्री शिक्षा में बाधा डाली है।

2. निर्धनता – परिवार की आर्थिक कठिनाइयाँ भी स्त्री शिक्षा में बाधक हैं। लड़कियों की पढ़ाई पर खर्च करने के बदले उस पैसे को उनके दहेज में देना लोग अधिक अच्छा मानते हैं।

3. प्रशासन – स्त्री शिक्षा का विकास कुशल प्रशासन के अभाव के कारण नहीं हो पा रहा है। बालिका विद्यालयों के निरीक्षण व प्रशासन हेतु ठीक प्रकार की व्यवस्था नहीं की गई। इसके लिए पृथक व्यवस्था का अभाव है। योग्य प्रधानाध्यापिकाओ का अभाव है। स्त्री शिक्षा के विकास की गलत योजनाओं के कारण भी इसका विकास नहीं हो पाया है|

4. अध्यापिकाओं की कमी – अध्यापिकाओं की कमी भी स्त्री शिक्षा में एक बहुत बड़ी बाधा है। विशेषकर ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में अध्यापिकाओं का अभाव है। इसका कारण वहाँ आवास, यातायात, विद्युत आदि सुविधाओं का अभाव होना है।

5. अपव्यय की समस्या – स्त्री शिक्षा में फिजूलखर्ची की समस्या भी है। कुछ स्त्रियाँ अध्ययन करने के बाद घर बैठी रहती है। हमारे यहां स्त्री अध्यापिकाओं की कमी है लेकिन कुछ स्त्रियाँ काम नहीं कर रहीं। इसका कारण उनके माता–पिता या पति की अनिच्छा अथवा सुविधाओं के अभाव के कारण काम नहीं कर पाना है। इसके साथ ही विभिन्न कारणों से लड़कियों का अपने अध्ययन के बीच में ही पढ़ाई छोड़ देना भी अपव्यय ही है।

6. पृथक बालिका विद्यालयों का अभाव – ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका विद्यालयों का बहुत अभाव है। शहरों में भी आवश्यकतानुसार पृथक बालिका विद्यालयों का अभाव है। ग्रामीण व पुराने विचारों के अभिभावक अपनी बालिकाओं को सहशिक्षा दिलवाने के पक्ष में नहीं होते। इसलिए प्राय: प्राथमिक शिक्षा के बाद अभिभावक अपनी बालिकाओं को अध्ययन करने से रोक लेते हैं।

7. पाठ्यक्रम सम्बन्धी दोष – विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों के अनुसार पाठ्यक्रम में सुधार हेतु सुझाव दिये गये। छात्र–छात्राओं के लिए समान पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। उसमें छात्रों का तुलनात्मक रूप से अधिक ध्यान रखा गया है। छात्राओं से संबंधित विषय अनिवार्य के स्थान पर वैकल्पिक विषय के रूप में रखे गए हैं। जैसे संगीत गृह विज्ञान आदि। प्रचलित पाठ्यक्रम में, सैद्धान्तिकता अधिक है, व्यावहारिकता कम। इसलिए यह पारिवारिक व सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

8. शोध का अभाव – स्त्री शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त शोध कार्य नहीं हुआ। लड़के व लड़कियों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक आवश्यकताओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

स्व–मूल्यांकन–1

1. भारत में स्त्री शिक्षा क्यों आवश्यक हैं?
2. प्राचीन भारत में ज्ञानी स्त्रियॉं का नाम बताएं|
3. 1882 में कौनसा आयोग स्थापित हुआ?
4 .विश्वविद्यालय आयोग ने स्त्री शिक्षा के लिए क्या सिफ़ारिशें की?
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में किस बात पर बल दिया हैं?

13.5 स्त्री शिक्षा के विकास हेतु किये जा रहे प्रयास

बालिकाओं एवं महिलाओं के शैक्षिक उन्नयन हेतु राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अनेक कार्यकमों के माध्यम से प्रयास किए गए, जो बालिका एवं महिला शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुए। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

13.5.1 अनौपचारिक शिक्षा

केन्द्र प्रायोजित योजनान्तर्गत 6–14 वय वर्ग के विद्यालय न जाने वाले बच्चों के लिए वर्ष 1979–80 से मार्च 31,2001 तक अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया। शिक्षा के दायरे से छूट रहे कामकाजी बच्चों एवं एक बड़ी संख्या में बालिकाओं को चिहनाकित करते हुए अनौपचारिक शिक्षा योजना के अन्तर्गत विकेन्द्रित प्रबंधन व्यवस्था द्वारा आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम की संबद्धता एवं अधिगम क्रियाओ में विविधता को अपनाकर सभी तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु छूट प्रदान की गई है। इस योजनान्तर्गत आवासीय क्षेत्रों तक शिक्षा सुविधा की पहुच सुनिश्चित करने हेतु लचीली कार्य योजनाओं हेतु आवासीय शिविर विद्यालय वापिस चलो शिविर सेतु पाठ्यक्रम इत्यादि का प्रावधान है। इस योजना का यह नवीन रूप इन केन्द्रों को सामुदायिक प्रबंधन व्यवस्था हेतु आदेशित करता है।

13.5.2 महिला समाख्या : महिला समानता हेतु शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों को मूल रूप में क्रियान्वयन स्तर पर लाने हेतु महिला समाख्या योजना के अन्तर्गत शैक्षिक वातावरण सृजन कर ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा हेतु प्रेरित कर संगठित किया गया। वर्ष 1989 में इस योजना का विस्तार कुछ राज्यों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम की सहायता से किया गया। वर्तमान में देश के इस राज्यों में लगभग 9000 से ऊपर गांवों में इस योजना का क्रियान्वयन चल रहा है।

13.5.3 महिला संघ

महिला समाख्या योजनान्तर्गत प्रत्येक गाँव मे महिलाओं की बैठक हेतु जगह देने का प्रावधान है जहॉ पर महिलाएं मिलकर सामूहिक रूप से समस्याओं पर प्रकाश डाल सकें, प्रश्न कर सकें, भयमुक्त होकर अपनी–अपनी बात कह सकें, विचार कर सकें, समीक्षा कर सकें, एवं सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आत्मविश्वास से अपनी आवश्यकताओं के बारे में विचार–विमर्श कर अपनी बात कह सकें। महिलाओं द्वारा उजागर की गई आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर शैक्षिक अनुसमर्थन प्रदान करने हेतु प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, अनुसमर्थन सेवाएं, महिला शिक्षण केन्द्र और पूर्व बाल्यकाल एवं परिचर्या केन्द्रों क चरणबद्ध तरीके से स्थापना की गई।

13.5.4 ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड

वर्ष 1987–88 में प्राथमिक विद्यालयों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना सुनिश्चित करने हेतु ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड की योजना प्रारम्भ की गई। वर्तमान में इसे सर्व शिक्षा अभियान में सम्मिलित कर लिया गया है। ऐसे विकास खण्ड जहाँ महिला साक्षरता दर कम है वही पर इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों के क्षमता संवर्द्धन में अतिरिक्त महिला शिक्षक एवं

शिक्षण अधिगम सामग्री की व्यवस्था करने का प्रावधान है। इस योजनान्तर्गत मुख्य रूप से महिला शिक्षकों की नियुक्ति पर जोर दिया गया इसके लिए वर्ष 1993–94 में योजना को पुन: संशोधित कर यह प्रावधान किया गया कि कम से कम 50 प्रतिशत शिक्षक महिलाऐ होनी चाहिए।

13.5.5 जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (DPEP)

कार्यक्रम योजना के समस्त पहलू लैंगिक और समानता पर मुख्य रूप से केन्द्रित हैं। यह कार्यक्रम कम–महिला–साक्षरता दर वाले जिलों में लागू किया गया| यद्यपि, डी.पी.ई.पी. के अन्तर्गत क्रमबद्ध परिवर्तन हेतु प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत लैंगिक असमानता को दूर करने हेतु समेकित प्रयास किए गए, जैसे– योजना का नियोजन एवं प्रबंधन, बाल–शिक्षण विद्या में सुधार, बालिका शिक्षा हेतु विशेष प्रयास एवं सामुदायिक जागरूकता एवं भागीदारी हेतु कार्य योजना का निर्माण एवं प्रबंधन इत्यादि।

परियोजना निर्माण, क्रियान्वयन और अनुश्रवण की सम्पूर्ण प्रक्रिया लैगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में की गई। वार्षिक कार्य योजनाओं में लैंगिक–आधारित–कार्यक्रम स्पष्ट रूप से उल्लिखित किए गए। कार्यक्रम के अन्तर्गत लैगिक असमानता के पहलू को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया, राज्य एवं जिला स्तर पर लैंगिक–समन्वयक की नियुक्ति की गई। कुछ राज्यों में ग्रामीण स्तर पर, ग्राम शिक्षा समिति में महिला प्रतिनिधि का होना अनिवार्य रूप से प्राविधानित किया गया। सभी कार्यकर्ताओं का लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम एम मुख्य एवं लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक सुविधा उन्नयन के अन्तर्गत, बस्ती के निकट नवीन विद्यालय की स्थापना, पेयजल एवं शौचालय सुविधा की व्यवस्था करना इत्यादि से बालिका नामांकन एवं ठहराव पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

13.5.6 सर्व शिक्षा अभियान

प्रारम्मिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु देशव्यापी कार्यक्रम के रूप में सर्व शिक्षा अभियान के राष्ट्रीय कार्यक्रम के द्वारा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमों को सफलता प्राप्त हुई है।वर्ष 2007 तक सभी बच्चे पाँच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर सकें एवं लैंगिक असमानता दूर हो जाए। वर्ष 2010 तक सभी बच्चों को आठ वर्ष की प्रारम्मिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक स्तर तक पूरी करने का लक्ष्य है।

शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों (देश के लगभग एक तिहाई ब्लॉक) में से विशेष रूप से महिला शिक्षा के क्षेत्र के रूप में चिहनांकित किए गए विकास खण्डों के लिए एक विशेष पैकेज का निर्माण किया गया जिसमें बालिका शिक्षा पर विशेष बल देते हुए विशेष सामुदायिक जागरूकता एवं स्थानीय आवश्यकतानुसार प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत विद्यालय वातावरण, अनुसमर्थन सेवाएं जैसे–पूर्व बाल्यकाल परिचर्या केन्द्र एवं सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्मिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यकम के रूप में विशेष प्रयास किए गए।

13.6 भविष्य के लिए योजनाएँ

राष्ट्रीय कार्य योजना में दो तरफा रणनीति तैयार की गई है जिसके अन्तर्गत लैंगिक आधार को मुख्यधारा में लाना एवं विशेष योजनान्तर्गत बालिका और महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करना। प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु सर्व शिक्षा अभियान एवं इसके अन्य भाग, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम, लोक जुम्बिश कार्यकम, मध्यान्तर भोजन योजना के अन्तर्गत

बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित करने का प्रावधान किया गया है। इन कार्यक्रमों के मुख्य क्षेत्र इस प्रकार है:

- बालिका शिक्षा को समर्थन प्रदान करने में समुदाय की सक्रियता सुनिश्चित करना, विशेष रूप से गाँव एवं विद्यालय में प्रगति का नियमित अनुश्रवण कर, शैक्षिक वातावरण तैयार करना।
- योजना तैयार करने वालों, शिक्षकों और शैक्षिक प्रबन्धकों का प्रशिक्षण एवं लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम का आयोजन। इस कार्यक्रम में बालिका शिक्षा के क्षेत्र पर विशेष बल दिया जाएगा।
- कक्षा–कक्षों, पाठ्य–पुस्तकों एवं शिक्षण–अधिगम सामग्री को बालिका हेतु मित्रवत् बनाना।
- विशेष प्रयासों की व्यवस्था करना।

महिला एवं बालिका शिक्षा हेतु निर्धारित किये गए उपर्युक्त प्रस्तावित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु तीन कार्यक्रम चलाये जा रहें है, महिला समाख्या कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर बालिका शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम और कस्तुरबा गॉधी स्वतंत्र विद्यालय योजना। इन तीन योजनाओं के अतिरिक्त, माध्यमिक स्तर पर नवीन मुक्त बालिका शिक्षा योजना प्रस्तावित की गई। इस योजनान्तर्गत, निम्नांकित प्रावधान किये गए है :–

- शैक्षिक रूप से पिछड़े 500विकास खण्डों को चिहनांकित कर माध्यमिक एवं उच्चर माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण करना। इसके लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि हेतु इस कार्य हेतु 5000 मिलियन रूपये की धनराशि का प्रावधान, 100 मिलियन रूपये प्रति विद्यालय की दर से किया गया है।
- शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की कक्षा IX एव X की बालिकाओं हेतु, दसवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत 6577.76 मिलियन रूपये लागत की निःशुल्क पाठ्य–पुस्तकें वितरित करने का प्रावधान है।

इन दो कार्य योजनाओं के समन्वय से लैंगिक असमानता को कम करने में किये गए प्रयासों से न केवल नामांकन, ठहराव एवं सम्प्राप्ति में ही अन्तर आएगा, बल्कि विद्यालय का वातावरण भी लैंगिक समानता एवं संवेदनशीलता से युक्त होगा।

स्व–मूल्यांकन–2

1. स्त्री शिक्षा की पाँच प्रमुख चुनौतियाँ बताएँ|
2. 'महिला समाख्या क्या हैं?
3. महिला शिक्षा के प्रमुख तीन कार्यक्रम लिखें|
4. सर्व शिक्षा अभियान क्या हैं?

13.7 सार–संक्षेप

आधुनिक काल में ही नहीं वरन् प्राचीनकाल में भी स्त्री शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को स्वीकार किया गया था। प्राचीनकाल में अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम पढ़ने को मिलते हैं।

लेकिन धीरे–धीरे स्त्रियों की समानता व शिक्षा को अस्वीकार किया जाने लगा था। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गई। उत्तर वैदिक युग के बाद बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ। मुस्लिम काल को स्त्री शिक्षा की दृष्टि से अन्धकार युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ब्रिटिश काल में भी सरकार स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीन ही रही। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों के सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर में काफी प्रगति हुई। स्वतंत्रता के बाद बने सभी शिक्षा आयोगों ने अपनी अनुशंसाओं में स्त्री शिक्षा पर बल दिया और उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए अपने–अपने सुझाव दिये।

स्त्री शिक्षा के लिए 1958 में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में, 1962 में श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में और 1963 में भक्तवत्सलम् की अध्यक्षता में समितियाँ गठित की गई। इन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए गम्भीर चिन्तन करके अपने सुझाव दिये। स्त्री शिक्षा की साक्षरता को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों की साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि अधिक हुई है। स्वतंत्र भारत में स्त्री शिक्षा की अनेक समस्याएँ हैं– जैसे स्त्री शिक्षा के प्रति पक्षपातपूर्ण धारणा, निर्धनता, अध्यापिकाओं की कमी, प्रशासन, अपव्यय, पाठ्यक्रम सम्बन्धी दोष, पृथक् बालिका विद्यालयों का अभाव, शोध का अभाव आदि। इन समस्याओं के समाधान के लिए भी सुझाव दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत पृथक बालिका विद्यालयों की स्थापना, पर्याप्त धन की व्यवस्था, अध्यापिकाओं की नियुक्ति, अलग निदेशालय, व प्रशासन की व्यवस्था करने, स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास, पाठ्यक्रम एवं प्रशासन में सुधार करना आदि मुख्य हैं। स्त्री शिक्षा की धीमी प्रगति के बावजूद भी इसमें और प्रगति की सम्भावनाएं काफी बढ़ती जा रही है। सरकार इसके लिये विशेष प्रयास कर रही है। नई शिक्षा नीति में भी स्त्री शिक्षा व साक्षरता पर अधिक बल दिया गया है।

13.8 प्रगति का मूल्यांकन

1. प्राचीन कालीन पाँच ऋषिकाओं के नाम लिखिये।
   Write down the names of five learned women of ancient India..
2. किस युग को स्त्री शिक्षा की दृष्टि से अन्धकार का युग कहा जाता है?
   Which period wos dark period from education point of view of women?
3. बालिकाओं के लिए सबसे पहले किसने पाठशाला स्थापित की?
   Who established the first school for girls?
4. भारत में प्रथम महिला शिक्षक–प्रशिक्षण की स्थापना किसने की?
   Who founded the first Women Teachers Training Colleg in India?
5. स्त्री शिक्षा के लिए पहली बार राष्ट्रीय समिति की स्थापना किसकी अध्यक्षता में हुई?
   In whose chairmanship the first national committee for women education was established?
6. स्त्री शिक्षा के महत्व के पाँच कारण लिखिए।
   Write down five points for importance of women education.
7. स्त्री शिक्षा की क्या समस्याएँ हैं? इनके निवारण के लिए क्या कदम उठाये गये हैं?
   What are the problems of Women Education in India?What measures are being taken to solve it?

8. स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा की प्रगति का विवरण लिखिए।
   Write down the development of Women Education in free India.

13.9 सन्दर्भ पुस्तके

1. अग्निहोत्री रवीन्द्र – भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, 1987 रिसर्च, नई दिल्ली।
2. अग्निहोत्री रवीन्द्र– भारतीय शिक्षा : दशा और दिशा, मेरठ, 1975
3. अग्रवाल, जे.सी. – स्वतंत्र भारत में शिक्षा का विकास, दिल्ली, 1968
4. अदावल, सुबोध तथा माधवेन्द्र उनियाल – भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथां प्रवृतियॉ उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1975
5. सिंघल, महेशचन्द्र – भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1971
6. रिपोर्ट ऑफ दी सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन, 1952–53
7. रिपोर्ट ऑफ दी एजूकेशन कमीशन, 1964–66
8. योजना मई 16–31,1988, योजना भवन, पार्लियामेण्ट स्ट्रीट, नई दिल्ली।

इकाई–14
मूल्यपरक शिक्षा
(Value Education)

इकाई की संरचना (Outline of the Unit)

14.0 उद्देश्य और लक्ष्य
14.1 मूल्य का अर्थ
14.2 मूल्यपरक शिक्षा का अर्थ
14.3 मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता
14.4 मूल्यपरक शिक्षा की विधियाँ
14.5 मूल्यपरक शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक शैक्षिक व्यवस्थाएं
14.6 सार–संक्षेप
14.7 इकाई का मूल्यांकन
14.8 संदर्भ सामग्री

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ को भली–भाँति पढ़ लेने के उपरांत आप बता सकेंगे कि :–

1. मूल्य (Values) क्या हैं?
2. सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों में अन्तर क्या है?
3. मूल्यपरक शिक्षा का क्या अर्थ है?
4. मूल्यपरक शिक्षा के आन्दोलन की विश्व और भारत में क्या आवश्यकता है?
5. मूल्यपरक शिक्षा की विधियाँ क्या हैं?
6. मूल्यपरक शिक्षा के लिए उपयुक्त शैक्षिक व्यवस्था क्या हो सकती है?
7. भारत में मूल्यपरक शिक्षा के क्या प्रतिरूप (Models) हमारे सामने अब तक आये हैं?
8. मूल्यपरक शिक्षा के बारे में हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति क्या कहती है?
9. मूल्यपरक शिक्षा के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए भारत में क्या–क्या प्रमुख कदम उठाये जा रहे?

14.1 मूल्य का अर्थ (Meaning of Value)

'Value' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Valere' शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है।

मूल्य (Value) की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नांकित हैं:

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार – "मूल्य सार्थकता, उपयोगिता और औचित्य होते है।"

"Value : worth, utility, desirability and the qualities on which these depend."

दार्शनिक आर.बी. पेर्सी के अनुसार – "मूल्य किसी के लिए रूचि की वस्तु होता है, क्योंकि यह रूचि और वस्तु के मध्य के विशेष सम्बन्ध से निकलता है।"

"Value is an object of interest to someone,for it emenates from Particular relation between the interest and its object."

–R.B.Percy

इण्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ एज्यूकेशन के अनुसार – "मूल्य क्या उचित या अनुचित है उसके बारे में विश्वास है।" (Valeues are beliefs about what is desirable of undesirable")

भारतीय समाजशास्त्री प्रो. राधाकमल मुखर्जी के अनुसार – "मूल्य वे सामाजिक रूप से स्वीकृत इच्छाएं और लक्ष्य होते हैं जो कण्डिशनिंग, सीखना या सामाजीकरण की प्रकिया के द्वारा आत्मसात कर लिये जाते हैं और जो व्यक्तिगत पसन्दों, प्रतिमानों और महत्वाकांक्षाओं का स्वरूप धारण कर लेते हैं।

"Value are socially approved desires and goals that are internalized through the process of conditioning,learning or socialization and that become subjective preferences,standards and aspirations."

–Prof R.K.Mukerjee

प्रो. मुखर्जी की उपरोक्त परिभाशा बहुत उपयुक्त है। वास्तव में मूल्य एक समाज में स्वीकप्त व्यक्ति की पसन्द या मान्यता ही होते हैं।

14.1.1 मूल्यों की प्रकृति (Nature of Values)

मूल्य की प्रकृति के बारे में दार्शनिकों के तीन दृष्टिकोण हैं –

(1). **व्यक्तिपरक दृष्टिकोण** (Subjective view) : इस दृष्टिकोण के अनुसार इच्छा, पसन्द, रूचि, प्रयास, कार्य सन्तुष्टि आदि के विविध कारक होते हैं जिन पर मूल्य निर्भर होते हैं। व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में इन अवस्थाओं के परिणाम स्वरूप मूल्यों का अस्तित्व होता है।

(2). **वस्तुपरक दृष्टिकोण** (Objective view) : इस दृष्टिकोण के अनुसार मूल्य व्यक्ति में नहीं होते अपितु वस्तु में होते हैं, जैसे कि रंग, सुगन्ध, तापक्रम, आकार और स्वरूप आदि प्लेटो अरस्तु आर.बी.पेरी जैसे दार्शनिकों का ऐसा ही मत था।

(3). **सापेक्षिक दृष्टिकोण** (Relativistic view) : इस दृष्टिकोण के अनुसार मूल्य एक मूल्यांकन करने वाले (Valuing human being) तथा उसके पर्यावरण (Environment) के बीच का सम्बन्ध होता है। मूल्य को कुछ भावना (feeling) और कुछ तर्क माना जाता है।

इन तीनों दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए ही हम मूल्य की सही प्रकृति को समझ सकते हैं।

14.1.2 मूल्यों का वर्गीकरण (Classification of Values)

मूल्यों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :

(1) **जीवन के विविध पहलुओं के अनुसार मूल्य** (Values in the different spheres of life)

1. शारीरिक मूल्य (Physical Values)
2. सामाजिक मूल्य (Social Values)
3. राजनैतिक मूल्य (Political Values)
4. सौन्दर्यात्मक मूल्य (Aesthetic Values)
5. धार्मिक मूल्य, (Religious Values)
6. आध्यात्मिक मूल्य (Spiritual Values)
7. मानसिक मूल्य (Mental Values)
8. बौद्धिक मूल्य (Intellectual Values)
9. आर्थिक मूल्य (Economic Values)
10. नैतिक मूल्य (Moral Values)
11. सांस्कृतिक मूल्य (Cultural Values)

(2) भारतीय दृष्टिकोण से 'What is desired by man' **के सन्दर्भ में चार पुरूषाथो को स्पष्ट किया गया है:–**

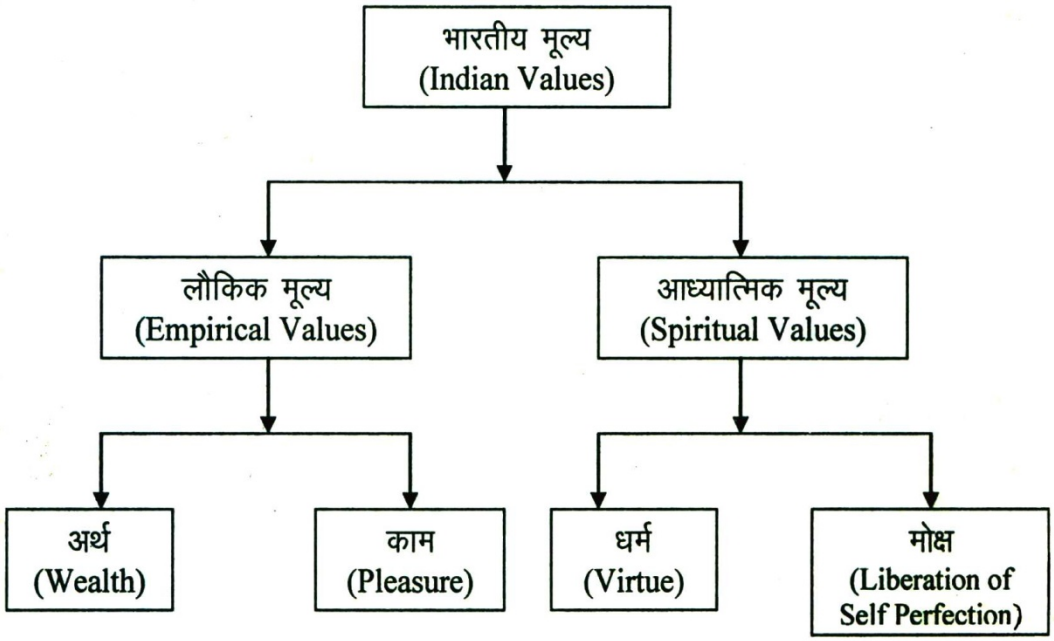

स्व–मूल्यांकन–1

1. मूल्य का क्या अर्थ होता है?
2. मूल्य की दो प्रमुख परिभाषाएँ बताइये|
3. मूल्यों का सामान्य वर्गिकरण कैसे होता है?
4. मूल्यों का भारतीय दृष्टिकोण बताएँ|

14.2 मूल्यपरक शिक्षा का अर्थ (Meaning of Values education)

मूल्यपरक शिक्षा जिसे अंग्रेजी में Value Education या "Value–Oriented Education" कहा जाता है, का अर्थ यह है कि शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थियों में शाश्वत मूल्यों (Universial) तथा देश, काल, मानव कल्याण, व मानव एकता के संदर्भ में आवश्यक व भविष्य में मानवीय आत्मा के उत्थान में सहयोगी, तर्कसंगत वस्तुपरक (Objective) और उचित मूल्यों से अनुप्राणित हो।

"Value Education is that education which is inspired by universal values and the logical,objective and proper value necessary in the context of country,age,human welfare,unity of mankind and upliftment of the spirit of man in future."

मूल्यपरक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को आदर्श मानव बनाना है जो मानवीय आदर्शो, गुणों व व्यवहार के प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करने लगे। योगीराज श्री अरविन्द के शब्दों में –

"मनुष्य जैसा कि वह आज है, उद्विकास का अन्तिम पद नहीं है। एक नये प्रकार की नस्ल का होना न केवल सम्भव है, अपितु आवश्यक है, मनुष्य में भगवान का निर्माण हो रहा है।

"Man as he is can not be the last term of evolution. A new type of man,a new race is not only possible but irressitable as man was in the making to the animal, "God is the making" in the man.

श्री अरविन्द ने अन्यत्र यह लिखा था कि :

मानव मन और जीवन का उद्विकास एक बढ़ती हुई सार्वभौतिकता की ओर अनिवार्यत अग्रसित होना चाहिए।

"The evolution of human maind and life must necessarily lead towards an increasing universality."

…….A life of unity mutuality and harmony born of a deeper and wider truth of our being is the only truth that can successfully replace which is a creation of the mind.

श्री सत्य साई बाबा, जिन्होंने आजकल विश्वभर में मूल्यपरक शिक्षा का जबरदस्त आन्दोलन चला रखा है, ने मूल्यपरक शिक्षा के विषय में यह कहा है –

'शिक्षा को मूलत' आत्मा से प्रकृति की ओर अग्रसित होना चाहिए। इसे यह बतलाना चाहिये कि मानवजाति का दैविक परिवार है। समाज में विद्यमान दैवीत्व व्यक्तियों के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकता है। नम्रता, आदर, दया, सहनशीलता त्याग और इन्द्रिय नियंत्रण गुण है जो सच्ची शिक्षा के परिणाम को बतलाते हैं।"

"Education must proceed primarily from the spirit of nature,it must show that mankind constitutes one divine family.The divinity that is present in the society can be exoerienced only through individuals.

Humility, tolerance, sacrifice and sense control are the qualities which reveal the outcome of the Education.

संक्षेप में हम कह सकते है कि मूल्यपरक शिक्षा ऐसी शिक्षा है जो उचित मूल्यों से अनुप्राणित होती है तथा विद्यार्थी में ऐसे दृष्टिकोण, आस्था तथा संकल्प को विकसित करती है, जिससे वह अपने जीवन के सभी कार्यो व व्यवहारों को उचित मूल्यों की कसौटी पर परखता हुआ तथा मानव कल्याण तथा मानव की आत्मा के उत्थान को सर्वोपरि मानता हुआ करता है।

यह शिक्षा धार्मिक शिक्षा का न तो कोई दूसरा रूप है और न तथाकथित "नैतिक शिक्षा" (Moral Education) है। जिसमें परम्परा तथा आधुनिकता शाश्वत मूल्यों तथ उचित सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पर्यावरण सम्बन्धी मूल्यों और भूत–वर्तमान तथा भविष्य का ऐसा संतुलित मिश्रण होता है जिसमें मानव जीवन में आध्यात्मिक उत्थान तथा विश्व बंधुत्व और सद्भाव का विकास होता है। उसमें आध्यात्मिकता, भौतिक विज्ञानों अथवा विज्ञान एवं नैतिकता का सुन्दर समन्वय है। इसे वस्तुतः "एकीकृत शिक्षा" (Integrated Education) ही समझना चाहिए।

इसका उद्देश्य मानव उत्कृष्टता (Human Excellance) तथा चिर आकाक्षित मूल्यों (Cherished Values) का विकास करना है जो धर्म निरपेक्षता और विश्व के सभी मतों व धर्मो की एकता पर आधारित है।

अपने लेख "Education in Human" Value में श्री सत्य साई बाल विकास ट्रस्ट की कन्वीनर **श्रीमती के. मणि** ने लिखा है कि मूल्य परक शिक्षा के निम्नांकित दो प्रमुख उद्देश्य हैं –

1. चरित्र निर्माण
2. व्यक्तित्व का निर्माण

श्री सत्य साई बाल विकास ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "Curriculum and Methodology for Integrated Human Values in Education :(International Edition)में E.H.V.Movement(Education Human Values Movement) अर्थात् मूल्यपरक शिक्षा का यह अर्थ बताया गया है।

"To enable balanced and wholesome development of all aspects of child's personality namely Physical,Intellectual,Emotional,Psychic and the Spiritual.The present education covers to first two and and partly to the third(emotional)that leaves a wid in the Personality of the child,as has been confirmed by various studies and causes behavioural distortations.

The developments of all the five domains that the E.H.V. attempts is synchronous with inculcation of five basic human values, Righteous with inculcation of five basic human values.Righteous conduct,truth,peace,love and non–violence.These five values represent an integral perfection at all levels of personality.these have further logical correspondence with five ideas of education namely,knowledge skill,balance,insight,and identity.

सारांश यह है कि मूल्यपरक शिक्षा पाँच प्रमुख मानवीय मूल्यों–सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा के विकास पर बल देती है। जिससे कि व्यक्तित्व के सभी स्तरों या पक्षों का संतुलित विकास हो सके।

14.3 मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता (Need of Value Education)

आज विश्वभर में भयंकर अशांति और भय व्याप्त है, अनाचार, अन्याय, हिंसा, अनैतिकता तथा धन की पूजा का ताण्डव नृत्य हो रहा है।

भारत में भी आज भ्रष्टाचार, अन्याय, हिंसा कुत्सित धर्मान्धता, अपराध तथा सभी क्षेत्रों में मानव मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य जंगली पशुओं से भी नीचा गिरता जा रहा है तथा वह अपनी लोभ, हिंसा तथा स्वार्थपरकता की भावना से एक–दूसरे को नष्ट कर देगा ईश्वर तथा समाज का भय तथा सदाचार की मर्यादाएँ आज मानव व्यवहार को नियंत्रित नहीं कर रही है। जहाँ एक ओर मानव ने आज विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त कर ली है, वहीं दूसरी ओर मानव के विचार, आदर्श और कार्य इतने गंदे और भयंकर होते जा रहे हैं कि सम्पूर्ण मानव जाति के नष्ट और पतित होने का भय पैदा हो गया है।

भारतीय शिक्षाशास्त्री **प्रो. वेदमणि मेनुअल** के शब्दों में – "आज हमारा सामाजिक जीवन अनसुलझे तनावों संघर्षो और हिंसा से खोखला हो गया है। झूठे मूल्यों और झूठे नायकों की पूजा ने आज इतना अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है कि नई पीढ़ी के गम्भीर विद्यार्थी विरोधाभासों और मतिभ्रमता के ढेर में खो गये हैं। आज हम भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, गैर–जिम्मेदार व्यापारियों, बेईमान भाषणकर्ताओं, मतलबी लोगों, शराबियों और अनैतिक लोगों को पूर्णता के प्रतिरूप (मॉडल) मानते हुए पूजे जाते हुए देखने के साक्षी है।

कोठारी आयोग (1964–66) के अध्यक्ष **प्रो. दोलत सिंह कोठारी** के शब्दों में – "विज्ञान और तकनीकी का विकास हो रहा है लेकिन बुद्धि का ह्रस्स हो रहा है। ज्ञान फैल रहा है लेकिन मानव व्यक्तित्व सिकुड़ रहा हैं।.....हम आजकल अनेक प्रकार के विचित्र कार्य असन्तुलन विपदाएँ देख रहे हैं, हिंसा के विभिन्न रूप सामने आ गये हैं। लालच घृणा और मतिभ्रम बढ़ रहे हैं। संसार भर के वैज्ञानिको और इंजीनियरों का आधा भाग मानव विनाश के अस्त्रों के निर्माण में लगा हुआ है। जो संसार को आज से और अधिक खराब बनायेंगे।

सुप्रसिद्ध भारतीय समाज वैज्ञानिक **प्रो. एम.एस. गोरे** के शब्दों में – "हमारे यहां समस्यागत शिक्षा संस्थाओं के परिसर (Campus), छिन्न–भिन्न श्रमिक आन्दोलन, असन्तुष्ट

और आक्रन्त किसान लॉबी शहरों में बिगड़ी हुई न्याय और व्यवस्था की स्थिति है। .....हम आतंकवाद (Terrorism) के दृश्य नित्य प्रति दिन देख रहे हैं। .....विकास की प्रकिया रूक गई है। हम बहुत बड़े स्तर पर प्रजातन्त्र को निम्न स्तरों तक (Grass–root level) तक नहीं ले जा पाये हैं। .....राजनैतिक व्यवस्था का पतन राजनैतिक शक्ति को येन–केन प्रकारेण हथियाने की तरकीब के रूप में हो गया है। .....राजनीति में आदर्श और विचारधारा का लोप हो गया है। अर्थव्यवस्था लघु–कालीन तथा लाभ अर्जित करने के उद्देश्य पर आधारित है और बुद्धिजीवी अपना अस्तित्व बचाये रखने में लगे हुए हैं। जबकि उच्च वर्गीय लोग (Elites) निष्कृष्ट प्रकार के उपभोक्तावाद में लगे हुए हैं।

सुप्रसिद्ध भारतीय लेखिका तारा अली ने अपने लेख में Value–old and new(The Hindustan Times,Sept.,16,1989) में लिखा है -"राजनैतिक दलों ने भ्रष्टाचार, धर्म और जाति को राजनैतिक शक्ति पाने की तरकीबों में प्रयुक्त किया है। इससे हिंसा और साम्प्रदायिकता भड़की है और इससे 1947 से अब तक 3000 साम्प्रदायिक दंगे भारत में हुए है। .....जनता कुकर्मी, पशुवत व्यवहारों और भ्रष्टाचार के दैनिक वर्णनों से उकता गई है।

प्रसिद्ध भारतीय विधिशास्त्र **एल.के. पालकीवाला** के शब्दों में –"चार दशकों की स्वतंत्रता के बाद.....हो गया है और मनुष्य बर्बरता की ओर ही जा रहा है।

इस संकट से मानवमात्र को उबारने का महत्वपूर्ण समाधान मूल्यपरक शिक्षा है इसीलिये तो संसार भर के धर्मगुरू, महान शिक्षा विचारक, प्रमुख चिन्तक इस प्रकार की शिक्षा का.....कर रहें हैं। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय, एनसीईआरटी. स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाली शिक्षा संस्थाओं जैसे दार्शनिक, साधु बाबा पासवान, श्री सत्य साई बाबा, चिन्मयानन्द मिशन, अरबिन्द आश्रम कई ईसाई संगठनों व भारतीय विद्या भवन की शिक्षा संस्थाओं में मूल्यपरक शिक्षा के कार्यकम को बहुत उत्साह और लगन से उठाया गया है।

14.3 मूल्यपरक शिक्षा की विधियॉ

प्रो. किरीट जोशी ने अपनी उत्कृश्ट लेख "An Outline Programme of Value Oriented Education" मैं बहुत सुन्दर बात लिखी है

'मूल्यों की शिक्षा देने का रहस्य है विद्यार्थियों में स्वयं के चरित्र और ज्ञान के अधिकार के उद्धरण द्वारा खोज की भावना को प्रज्जलित करना स्वयं में मूल्यों को आत्मज्ञान करके ही विद्यार्थियों में मूल्य प्रकाशित कर सकते है। मूल्य–अनुस्थापित (Value Orienceted) शिक्षा को 'करो या 'मत करो की एक श्रंखला के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए।

स्पश्ट है मूल्यपरक शिक्षा देने वाले शिक्षक या वयस्क का स्वयं का चरित्र आदर्श होना चाहिये तथा उसे स्वयं उन मूल्यों से अनुप्राणित हो कर कार्य करना चाहिये जिन्हें वह विद्यार्थियों में फूँकना चाहता है।

मूल्य परक शिक्षा की प्रमुख विधियाँ निम्नांकित है :–

1. उपदेश आदर्श विधि (Precept ideal method)
2. प्रभावित करने की प्रतिविधि (Influencential Method.)
3. पहचान विधि (Identification Method)
4. सहचर्य विधि (Association Method)

5. वेण्टीलेशन विधि (Ventilation Method)
6. साक्षात्कार विधि (Interview Method)
7. कहानी कहने की विधि (Story telling method)
8. (Proble Method)
9. मनोविज्ञान अभिनय विधि (Psychological–Drama Method)
10. भूमिका निर्वाह विधि (Role Plaing Method)

पाठशाला स्तर पर भाषण विधि, अथवा उपदेश देने की प्रवृत्ति अनुपयोगी है। विद्यार्थियों में, विशेषकर छोटी कक्षाओं में, कहानियों द्वारा सही प्रकार के मूल्यों को विकसित करना चाहिए। ऊँची कक्षाओं में सेमीनार या विचार गोष्ठियाँ होनी चाहिए। सभी स्तरों पर विविध विधियों का प्रयोग करके विषय को रोचक बनाना चाहिए। उपयुक्त प्रकार की शिक्षा सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के पाठ्योत्तर कार्यकलापों तथा खेलों, अभिनय, श्रमदान, ग्राम सर्वेक्षण, नारायण सेवा (निर्धनों को भोजन कराना), भजन, सामूहिक गान व नृत्य, वाद–विवाद प्रतियोगिता, आदि के द्वारा उत्तम प्रकार की मूल्यपरक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

विद्यालयेत्तर परिस्थितियों पर जब तक अनुकूल नियन्त्रण न हो, विद्यालय की भूमिका छात्र–छात्राओं में मानवीय मूल्यों के विकास में लाभप्रद नहीं हो सकती। मूल्यों के इस संक्रमण काल में भी विद्यालयी शिक्षा को यह उत्तरदायित्व वहन करना ही होगा कि छात्र–छात्राओं की नई पीढ़ी को संस्कारित करें और इसके लिये (भारतीय सांस्कृतिक मूल्य विकास हेतु) पर्याप्त विद्यालयी पर्यावरण प्रस्तुत करें। शिष्टाचार, सदाचार जैसे मानवीय मूल्यों का विकास केवल भाषणों के द्वारा सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि प्राय: यह भी देखा गया है कि हम अपने भाषणों में जिन मूल्यों के स्थापन, पुनर्स्थापन करने की व्याख्या करते हैं, अपने जीवन में उन्हीं मूल्यों की प्राय: अवहेलना करते हैं। मूल्यों को जीवन का एक व्यावहारिक अंग के रूप में चरितार्थ करने वाले शिक्षकों की आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

इन सब विपरीत परिस्थितियों में भी विद्यालयों में ऐसा वातावरण प्रशस्त करना होगा जिसमें छात्र–छात्राएं स्वयं ही भारतीय मूल्यों को आत्मसात् कर सकें। विद्यालयों में आयोजित विविध पाठ्य–सहगामी प्रवृत्तियाँ इस उद्देश्य की पूर्ति में विशेष सहायक होती हैं। वस्तुत: हमें यह स्वीकार कर शिक्षण करना चाहिये कि मानवीय मूल्य या शिष्टाचार शिक्षक के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष आचरण से ही ग्रहण किये जा सकते हैं। इनका औपचारिक शिक्षण इतना लाभप्रद नहीं रहता। विद्यालय का समस्त वातावरण ही ऐसा स्वस्थ व अनुकरणीय हो कि छात्र–छात्राएँ स्वयं सदाचरण की ओर प्रवृत्त रहें। समय–समय पर सांस्कृतिक कार्यकमों में शिक्षाप्रद झलकियों का प्रदर्शन किया जाए इससे एकता, सहयोग एवं आवश्यकता पड़ने पर एक–दूसरे की सहायता करने के साथ–साथ अन्य गुण भी विकसित हो सकें । शैक्षिक शिविर एवं भ्रमणों से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

विद्यालय अपने प्रयत्न और अभिभावकों के सहयोग से छात्र–छात्राओं में जिन वांछित आदतों का विकास करने की पहल कर सकता है उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं –

1. सम्मान एवं अभिवादन करना

(1). मिलने पर बड़ों का अभिवादन करना।

(2). छोटों के प्रति स्नेह प्रदर्शित करना।

2. बोलने सम्बन्धित आदतें :–

(1). नम्रता से बोलना।

(2). कक्षा में अपनी बात नम्रता से कहना।

(3). आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करना।

(4). गाली–गलोच तथा तू तकार से नहीं बोलना।

(5). चिल्लाकर नहीं बोलना।

3. समय की पाबन्दी –

(1). समय पर विद्यालय जाना।

(2). खेल के समय खेलना एवं पढ़ने के समय पढ़ना।

(3). समय पर गृहकार्य करना।

(4). घर के कामों को समय पर करना।

4. स्वच्छता –

(1). स्थान की सफाई

- विद्यालय परिसर की सफाई
- पढ़ने के स्थान की सफाई
- कक्षा की सफाई

(2). वस्त्रों की सफाई

- अपने वस्त्रों की धुलाई स्वयं करना।
- उन्हें तहकर रखना।
- बटन टूटने पर स्वयं लगाना।
- वस्त्रों को गन्दे होने से बचाना।
- जूते मोजे साफ रखना|

(3). शारीरिक सफाई

- समय पर शौच जाना एवं स्नान करना।
- नाखून समय पर काटना।

(4). काम में आने वाली चीजों की सफाई

- पुस्तकों–कॉपियो पर कवर लगाकर रखना।
- पेन बस्ते, साइकिल आदि को साफ रखना।
- पढ़ने की मेज, स्थान को व्यवस्थित रखना।
- भोजन करने के बर्तनों की सफाई करना।

5. अनुशासन एबं शान्ति बनाये रखना

(1). बैठकों, सभाओं में तथा कक्षाओं में शान्ति एवं अनुशासन रखना।

(2). बड़ी सभाओं में निर्धारित स्थान पर बैठना।

(3). सभा के नियमों का पालन करना।

(4). घर में व्यवहार करते समय नम्रता व शान्ति रखना।

6. अपनी बारी की प्रतीक्षा करना(धैर्य)

(1). उपस्थिति बोलते समय

(2). बस में चढ़ते समय

(3). टिकिट लेते समय

(4). विद्यालय में पानी पीते समय

7. भोजन सम्बन्धी आदतें

(1). हाथ सम्बन्धी आदतें ।

(2). जूठन नहीं छोड़ना।

(3). भोजन करने के बर्तनों को यथा स्थान रखना।

(4). स्थान की सफाई करना।

8. खेल सम्बन्धी

(1). खेल में जानबूझ कर दूसरों को चोट न पहुंचाना।

(2). विपक्षी की जीत पर उसे बधाई देना।

(3). निर्णायक के आदेश को मानना।

(4). खेल में ईमानदारी रखना।

9. कुछ विशिष्ट आदतें

(1). पहल करना

(2). काम में नेतृत्व प्रदान करना

(3). कार्य आरम्भ कर बीच में नही छोडना

(4). मित्रों के काम में सहयोग देना

(5). मित्रों और भई–बहनों के साथ मिल बैठ कर और बांट कर खाना।

अगर इस प्रकार छात्र–छात्राओं में कुछ आदतों का निर्माण होगा तो उनमें निम्नांकित जीवन मूल्य स्वत: ही विकसित होंगे :–

(1) सहयोग, (2) साहस, (3) सफाई, (4) ध्रण निश्चय, (5) आत्मविशवास, (6) परोपकार, (7) कर्तव्य परायणता, (8) ईमानदारी, (9) विनम्रता, (1०) श्रम में निश्ठा, (11) त्याग की भावना, (12) विनम्रता, (13) प्रेम, (14) दया, (15) सहानुभूति, (16) सहिश्णुता (17) धैर्य (18) क्षमा, (19) दूसरों का आदर, (20) तत्परता, (21) मित्रता, (22) दूसरों का आदर करना, (23) निर्भीकता, (24) स्वावलम्बन, (25) अनुषासन, (26) देष भक्ति।

किसी एक विद्यालय वातावरण की अनुकूलता / प्रतिकूलता के अनुपात में ही उस विद्यालय की छात्र–छात्राओं में स्वस्थ मानवीय मूल्यों का निर्माण व विकास होता है। इस तथ्य परक सत्य की ओर यदि आज का षिक्षक वर्ग ध्यान दे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवपीढ़ी के छात्र–छात्राओं का अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन कर उन्हें संस्कारित किया जा सकता है। जो आज की विशम सामाजिक स्थिति में अत्यावष्यक है।

14.6 सार–संक्षेप (Summary)

मूल्य मानव के उचित व्यवहार का प्रतीक होती हैं। जो समाज द्वारा स्वीकृत हैं। ये व्यक्तिपरक, वस्तुपरक एवं सापेक्षिक प्रकृति के होते हैं। मूल्यों के प्रकार को मुख्य रूप से दो प्रकार से देखा गया है। प्रथम–जीवन के विभिन्न आयोमो के अनुसार मूल्य–शारीरिक, सामाजिक, राजनैतिक, सौन्दर्यात्मक, धार्मिक, आध्यात्मिक, मानसिक, बौद्धिक आर्थिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक

प्रकार के बताये गये हैं। भारतीय चिन्तन में मूल्यों को दार्शनिक दृष्टि से लौकिक एवं आध्यात्मिक दो प्रकार से विभाजित किया गया है – इसमें काम, अर्थ, धर्म एवं मोक्ष आते हैं।

मूल्यपरक शिक्षा उस शिक्षा को कहते हैं जो विद्यार्थियों में स्वस्थ दृष्टिकोण, आस्था तथा संकल्प को विकसित करती है। यह धार्मिक शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा भिन्न किन्तु एकीकृत होती है। पाँच प्रमुख मानवीय मूल्य सत्य, धर्म शान्ति, प्रेम और अहिंसा के विकास पर बल देती है। मूल्यपरक शिक्षा की अनेक विधियाँ है। छोटे स्तर पर भाषण के स्थान पर सहगामी प्रवृत्तियों की सहायता से मूल्यों का विकास करना उत्तम रहता है। इसके लिए विद्यालय का वातावरण प्रभावी होना चाहिए। विभिन्न प्रकार की स्वस्थ आदतों का विकास हो सकेगा।

14.5 इकाई का मूल्यांकन (Evaluation of the Unit)

1. मूल्य से आप क्या समझते है?
   What do you understand for values?
2. मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता क्यों हैं?
   What is the need of Value Oriented Education?
3. मूल्यपरक शिक्षा को प्रदान करने की विधियाँ क्या हैं
   What are the methods of teaching value education?
4. मूल्य सिखाये नहीं जा सकते बल्कि पकड़े जाते हैं ।
   "Values are not to be taught but to be caught"Explain it.

14.9 सन्दर्भ सामग्री

1. Ruhela S.P.(Ed.),**Human Values and Education,New Delhi**,Sterling Publishers,1989.
2. **Ruhela S.P. "Education in Humjan Values**",: a "Synotic View" University News, July 13,1987, P.P.3–8.
3. **Curriculum and Methodology for Intergrating Human Values in Education** (International Edition), Prasnthi Moyam Sri Sathya Sai Bal Vikas Education Trust.
4. "**National Symposium on Value Orientation in Hither Education**" University News, Oct.22, 1987.
5. **Downay,M & Kelly,A.V.Moral Education : Theory and Practice, London, Harper & Raw**,1978.
6. Durkheim, E. Moral Education, New York, Fee Press of Clencoe, 1953.
7. श्री सत्य साई बाबा, विद्या वाहिनी। दिल्ली, श्री सत्य साई बुक्स एण्ड पब्लिकेशन ट्रस्ट, 1984

8. Prashad Nayaran education for a New Life, Pondicherry, Shri Aurobindo Asram1976.
9. Joshi, Kireet, An Outline Programme of Value Oriented Education and Relevent Pedegogical Suggessions.
10. Sharma, S.K., सांस्कृतिक विरासत एवं शिक्षा, बाल भवन, एंग्लो एकेडेमी, उदयपुर, 2005.

इकाई–15

भारत में राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकीकरण और शिक्षा

National and Emotional Integration in Indian and Education

इकाई की संरचना (Outline of the Unit)

15.1 उद्देश्य

15.2 राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ

15.3 भावात्मक एकीकरण का अर्थ

15.4 शिक्षा का अर्थ

15.5 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता

15.6 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में बाधक तत्व

15.7 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव

15.8 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण और शिक्षा

15.9 सारांश

15.10 प्रगति का स्व–मूल्यांकन

15.11 संदर्भ ग्रन्थ

15.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई की सम्प्राप्ति पर आपको इस योग्य होना चाहिए कि :–

1. आप राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के अर्थ के बारे में बता सकें।
2. आप राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण को अतीत के संदर्भ में देख सकें।
3. राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की विशेष आवश्यकता क्यों है? बता सकें।
4. आप यह समझ सकें कि किस प्रकार से शिक्षा राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के विकास में सहायक होती है और सुव्यवस्थित शिक्षा के अभाव में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता के विकास में बाधा पहुंचती है।
5. आप राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के संदर्भ में भारत में शिक्षा सम्बन्धी वांछनीय परिवर्तनों को गिना सकें।
6. आप विद्यार्थियों में भविष्य में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए उपाय बता सकें।
7. आप में विभिन्न सांस्कृतिक जहां क्षेत्रीय विभिन्नताओं सम्बन्धी दृष्टिकोण का विकास हो सके और उनके प्रति श्लाघा उत्पन्न हो सके।

15.2 राष्ट्रीय एकीकरण का अर्थ (Meaning of National Integration)

मानव की महानता उसके मानसिक, चारित्रिक, व आध्यात्मिक गुणों द्वारा होती है और वृक्ष का वैभव उसके पुष्पों की सुगंध एवं माधुर्य तथा काष्ठ की उपयोगिता पर निर्भर है। ठीक इसी प्रकार राष्ट्र का गौरव एवं उसकी महानता राष्ट्रीय एकता से पहचानी जा सकती है। अब प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रीय एकीकरण क्या है?

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में पं. जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एकता को स्पष्ट करते हुए कहा था ' राष्ट्रीय एकता एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सभी लोगों के दिलों में एकता की भावना, समान नागरिकता का अनुभव और राष्ट्र के प्रति निष्ठा और प्रेम की भावना को विकसित किया जाता है । " **ब्रूबेकर** के अनुसार राष्ट्रवाद एक ऐसा शब्द है जो पुनरूत्थान काल और मुख्य रूप से फ़्रासीसी क्रान्ति के बाद काम में आने लगा है। यह सामान्यतया देश की अपेक्षा निष्ठा के एक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करता है। राष्ट्रवाद स्थानगत सम्बन्धों के अतिरिक्त प्रजाति, भाषा, इतिहास, संस्कृति और परम्परा जैसे सम्बन्धों के माध्यम से भी व्यक्त होता है। "राष्ट्रीय एकीकरण की इन परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीयता की भावना से व्यक्ति में संकीर्ण निष्ठाओं से ऊपर उठकर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान बनने की भावना आ जाती है। हमारे देश में धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति आदि सभी की विविधता है। राष्ट्रीयता की भावना में इन विविधताओं की संकीर्णता को नागरिक नहीं मानता" इसमें व्यक्ति राष्ट्रीय अपेक्षाओं व आवश्यकताओं को प्राथमिकता देता है।

15.3 भावात्मक एकीकरण का अर्थ (Meaning of Emotional Integration)

भावात्मक एकीकरण से तात्पर्य भावनाओं से एक होना है। इसमें व्यक्ति की भावनाओं को इस प्रकार से परिवर्तित किया जाता है जिससे कि वह राष्ट्र के प्रति समर्पित हो सके। भावात्मक एकीकरण का सम्बन्ध हृदय से है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार भावात्मक एकीकरण से तात्पर्य भाषा, विचार और भावना में एकता आ जाने से है।

भावात्मक एकीकरण के लिए **डॉ. सम्पूर्णानन्द** की अध्यक्षता में गठित समिति के अनुसार भावात्मक एकीकरण–भ्रातृत्व एवं राष्ट्रीयता की प्रबल भावना है जो देश के सभी निवासियों को विचार एवं कार्य के समस्त क्षेत्रों में प्रेरणा प्रदान करती है और उनको अपनी सब विभिन्नताओं (धार्मिक, वैयक्तिक, स्थानीय या भाषा सम्बन्धी) का विस्मरण एवं बहिष्कार करने में मदद देती है। "हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार "भावात्मक एकता से मेरा तात्पर्य अपने मस्तिष्क एवं हृदय के समन्वय तथा पृथक्त्व की भावनाओं के दमन से है। हमें अनुदार, संकीर्ण, साम्प्रदायिकता, प्रातीयतावादी व जातिवादी नहीं बनना चाहिए क्योंकि हमें एक बड़ा मिशन पूरा करना है। राजनीतिक एकीकरण एक सीमा तक हो चुका है। मैं जिस बात की चर्चा कर रहा हूं वह इसी काफी गहरी चीज है– भारतीय लोगों का भावात्मक एकीकरण, ताकि हम सब एक बन सकें, एक शक्तिशाली राष्ट्रीय इकाई बन सकें साथ ही अपनी अद्भुत विविधता को भी बनाये रखें।"

15.4 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता (Need of National and Emotional Integration)

हम यदि अपने देश की इतिहास को उठाकर देखें तो राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट हो जायेगी। हमने देखा कि हमारे देश में एकता का अभाव रहा और एकता के अभाव के कारण ही हम विदेशियों से पराजित होते रहे। प्राचीन एवं मध्यकाल में भारत अनेक छोटे–छोटे राज्य में विभाजित रहा और ये सभी राज्य परस्पर तो झगड़ा करते ही थे, साथ ही विदेशी आक्रमणकारी को भी अपने ही देश में दूसरे राज्य के विरूद्ध सहायता देते थे। इससे देश का बहुत पतन हुआ। इन सबके बावजूद भी भारत में भौगोलिक व सांस्कृतिक एकता बनी रही। लेकिन ब्रिटिश शासन काल में हमारी राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता को समात्त करने का बहुत प्रयास किया गया क्योंकि अंग्रेजों की "फूट डालो और राज्य करो" की नीति थी। उन्होंने हममें विभिन्न संकीर्णताओं को जन्म दिया। हम सभी में ही परस्पर जाति, धर्म, संस्कृति, आर्थिक स्तर आदि के आधार पर दीवार खड़ी कर दी। हमारे देश का विभाजन अंग्रेज अधिकारियों के प्रोत्साहन एवं पक्षपात के कारण हुआ। भारत में अल्पसंख्यकों में भय एवं शोषण की भावना भर दी। इसका आज भी असर विद्यमान है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक के इतिहास का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि अनेक अवसर ऐसे आये है, जब कि छोटी सी बात को लेकर राष्ट्रीयता एवं भावात्मक एकीकरण का अभाव प्रकट हुआ। 1962 के समय चीन के आकमण और 1965 व 1971 में पाकिस्तान के आक्रमण के समय हमारे देशवासियों ने राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अत: हमारे देश की विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि देशहित में यही राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता की बहुत आवश्यकता है। जैसा कि पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था " कि मेरे जीवन का मुख्य कार्य भारत का एकीकरण हैं|"

स्व–मूल्यांकन–1

1. राष्ट्रीय एकीकरण से नागरिक में किस प्रवृति का विकास होगा?
2. हमारे देश में किस संकट के समय राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण देखने को मिला?
3. हमारे देश में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता क्या हैं

15.5 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में बाधक तत्व (Problems in National and Emotional Integration)

हमारे देश की राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता में आज भी अनेक बाधक तत्व है। जैसा कि **प्रो. श्रीनिवास** ने लिखा है कि विभाजनकारी प्रवृितयॉ आज भी अस्तित्व में है" और भविष्य में कई वर्षो तक बनी रहेगी। देश की अधिकांश जनता के लिए "भारत" एक नई कल्पना है और इस कल्पना के सत्य रूप होने से कुछ समय लगेगा। हमारे देश में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के मार्ग में मुख्य रूप से निम्नलिखित बाधाएँ हैं–

15.5.1 जाति (Caste)

हमारे देश की राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता में सबसे बड़ी बाधा जाति है। हमारे यही कोई भी कहीं रहे, वह जाति के संसार में ही रहता है। हिन्दू जैन, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सभी विभिन्न जातियों में बटे हुए है। उच्च जाति वालों में श्रेष्ठता की भावना है। उच्च व निम्न जाति वालों में तनाव होता रहता है। राजनीतिक दल जातियों में बंटे हुए है। उच्च जाति वालों में श्रेष्ठता की भावना है। उच्च व निम्न जाति वालों में तनाव होता रहता है। राजनीतिक दल जातियों के संगठन का उपयोग चुनाव के समय करते हैं। हमारे अनेक राज्यों में चुनाव के समय जातीय प्रतिद्विन्दता बहुत जबरदस्त दिखाई देती है। बिहार में राजपूति, भूमिहार, व कायस्थ जातियों, तमिलनाडू में ब्राहमण व गैर ब्राहमण, आक में रेड्डी व कम्मा, मैसूर में लिंगायत व वोक्कलिग का संघर्ष सर्वत्र देखने को मिलता है।

15.5.2 साम्प्रदायिकता (Communalism)

हमारे देश के लिए तो साम्प्रदायिकता बहुत हानिकारक प्रवृत्ति सिद्ध हुई है। साम्प्रदायिकता के कारण ही देश का विभाजन हुआ है। स्वतंत्रता के बाद भारत धर्म निरपेक्ष राज्य है लेकिन फिर भी हमारे देश में हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि अनेक सम्प्रदाय है। इन सम्प्रदायों में छोटी–छोटी बातों को लेकर स्वार्थी तत्व विद्वेश फैलाते रहते हैं। साम्प्रदायिक दंगों के कारण पारस्परिक सौहार्द में दरारें उत्पन्न हो जाती है। प्रजातंत्र के कलंक के रूप में साम्प्रदायिकता बनी हुई है। मुरादाबाद, अलीगढ़, जमशेदपुर, मेरठ, भिवंडी, अहमदाबाद आदि स्थानों पर अनेक बार साम्प्रदायिक दंगे हो चुके है।

15.5.3 क्षेत्रीयता (Regionalism)

हमारे देश में क्षेत्रीयता की भावना भी राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक बनी हुई है। हमारे यही कुछ क्षेत्र वाले अलग राज्य की मांग करते हैं और कुछ क्षेत्र तो भारत से अलग होने की ही बात करते हैं। क्षेत्रीयता की भावना से संघ व राज्यों के सम्बन्धों पर तो प्रभाव पड़ता ही है साथ ही विभिन्न राज्यों में भी परस्पर सम्बन्ध खराब हो जाते हैं। इन राज्यों में भी भाषा, सीमा आदि प्रश्नों को लेकर झगड़े होते हैं। तमिलनाडु में डी.एम.के. पार्टी ने अलग से द्रविड स्थान की मांग की। आज भी महाराष्ट्र व कर्नाटक, केरल व कर्नाटक, असम व नागालैण्ड, उत्तर–प्रदेश व बिहार के बीच सीमा विवाद की समस्या है। बंगाल–बंगालियों के लिए, महाराष्ट्र महाराष्ट्रियों के लिए इस प्रकार के संकीर्ण नारे क्षेत्रीयता की भावना को प्रोत्साहित करते है।

15.5.4 भाषा (Language)

एकीकरण में बाधक तत्व भाषा की विविधता भी है। हमारे यहां राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर हुआ है। आंध्र प्रदेश के निर्माण के लिए आक नेता पोट्टी श्री रामलू ने आमरण अनशन करके प्राण त्याग दिये। उसके बाद व्यापक दंगे हुए और आंध्र प्रदेश बना। 1966 से अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को ही पूर्णतया लागू करने की संवैधानिक तिथि पर अहिन्दी क्षेत्रों में बहुत असन्ताष व आन्दोलन हुए, मद्रास में दो द्रमुक नेताओं ने आत्मदाह तक किया। इसके परिणामस्वरूप राज्य भाषा अधिनियम प्रावधान संशोधन पारित किया गया, जिससे वातावरण शांत

हुआ। इसमें यह किया गया कि जब तक एक भी राज्य चाहेगा, केन्द्र में हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजी राज भाषा के रूप में रहेगी|

15.5.5 हिंसात्मक गतिविधियॉ (Voilent Activities)

हमारे देश में हिंसात्मक आन्दोलन बहुत बढ़ते जा रहे हैं। आज अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए असंवैधानिक साधनों का प्रयोग बहुत ज्यादा किया जा रहा है। सार्वजनिक सम्पत्ति को बहुत नुकसान पहुचाया जाता है। वर्तमान में आरक्षण के लिए राजस्थान में जाट आन्दोलन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं इसके अतिरिक्त नक्सलवादियों ने देश में हिंसा का खुलकर प्रयोग किया है। पंजाब व बंगाल में इस समय आतंकवाद अपनी चरम सीमा पर है। इन वर्षो में न जाने कितने व्यक्ति आतंकवाद के शिकार हो चुके हैं। गोरखालैण्ड राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे (जी.एन.एल.एफ) ने भी हिंसा व आतंकवाद का रास्ता अपनाया यद्यपि गोरखालैण्ड की समस्या का शांतिपूर्ण हल निकल आने से हिंसा समाप्त हो गयी है। हिंसा व अराजकता के बढ़ने से सारा वातावरण अशान्त हो गया और राष्ट्रीय एकता को खतरा नजर आने लगा है।

15.5.6 आर्थिक विषमता (Economic Disparities)

हमारे देश के एकीकरण में आर्थिक विषमता सी अत्यधिक बाधक तत्व हैं। वास्तविकता यह है कि अस्सी प्रतिशत पैसा 20 प्रतिशत व्यक्तियों के पास है। गरीबों व मजदूरों में शोषण के विरूद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न होती जा रही है। हमारे विभिन्न राज्यों में भी आर्थिक विषमता है। कुछ राज्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और कुछ राज्य बहुत पिछड़े हुए हैं।

15.6 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण हेतु विभिन्न समितियों के सुझाव (Suggestions of Different Committees for national and Emotional Integration)

हमारे देश में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के लिए अनेक प्रयास हुए। इस संदर्भ में ही विभिन्न समितियों का गठन हुआ। इन विभिन्न समितियों ने अपने–अपने सुझाव दिये।

15.6.1 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग गोष्ठी 1958 (UGC Conference – 1958)

इस गोष्ठी ने यह सुझाव दिया कि भारतीय इतिहास से साम्प्रदायिकता की भावना वाले अंशों को हटाकर इतिहास पुन: लिखा जाये। छात्रावास व छात्रवृत्तियों का आधार जाति, धर्म व सम्प्रदाय नहीं होना चाहिए। साथ ही राष्ट्रीय एकता की वृद्धि करने वाले उत्सवों को विद्यालय में मनाया जाना चाहिये।

15.6.2 सम्पूर्णानन्द समिति 1961 (Sampurnanand Committee – 1961)

डॉ.सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में बनी समिति ने पाठ्यक्रम के पुनर्गठन पर बल दिया। प्राथमिक कक्षाओं में राष्ट्रगान व राष्ट्र प्रेम के गीतों के अभ्यास पर बल दिया गया। समिति के अनुसार भाषा में बाध्यता लागू नहीं की जानी चाहिए अर्थात् किसी भी भाषा को इच्छा के विरूद्ध

न थोपे,राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गान के महत्व व आदर की भावना का विकास करें और राष्ट्रीय दिवसों को अनिवार्य रूप से मनायें। शिक्षा की नीतियाँ अखिल भारतीय स्तर पर लागू हो और उनमें सामाजिक अध्ययन एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं पर बहुत अधिक बल दिया जाना चाहिए क्योंकि इनके माध्यम से राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण लाने में सहायता मिलेगी। प्रार्थना सभा में विद्यार्थियों से राष्ट्र हित की प्रतिज्ञाएं नियमित रूप से करवाई जानी चाहिए।

15.6.3 उपकुलपति सम्मेलन 1961 (Vice Chancellor's Conference – 1961)

दिल्ली में उपकुलपतियों का सम्मेलन 1961 में हुआ। उसमें यह सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालय में सभी राज्यों के छात्रों के प्रवेश की संख्या निश्चित हो। छात्र संघ के स्थान पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दे। साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करके धार्मिक सहिष्णुता का विकास किया जाना चाहिए। साथ ही विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अध्ययन की व्यवस्था विश्वविद्यालय में होनी चाहिए।

15.6.4 राष्ट्रीय एकता परिषद् 1962 (National Unity Council)

इस परिषद् ने राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा पर ही बल दिया। माध्यमिक स्तर तक क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम हो तथा त्रिभाषा सूत्र लागू करने पर बल दिया जाए। शिक्षा के माध्यम से प्रेम, सद्भावना व राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार किया जाना चाहिए। व्यक्तियों के मस्तिष्क व हृदय में पारस्परिक प्रेम व सद्भावना का विकास शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।

15.6.5 कोठारी आयोग 1964–64 (Kothari Commission – 1964 – 66)

कोठारी आयोग ने राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की भूमिका ही अधिक स्वीकार की। शिक्षा के सभी स्तरों पर सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा अनिवार्य हो और माध्यमिक स्तर पर विशेष कार्यक्रम सभी शिक्षण संस्थाएं आयोजित करें। प्रादेशिक भाषा ही उच्च शिक्षा का माध्यम होने चाहिए। इन प्रादेशिक भाषाओं में अच्छे साहित्य का प्रकाशन किया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेजी अनिवार्य हो और सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विकास हो।

15.6.6 राष्ट्रीय एकता समिति 1968 (National Unity Committee–1968)

1968 में राष्ट्रीय एकता समिति का पुनर्गठन किया गया। इस समिति ने भी शिक्षा को राष्ट्रीय एद्धीकरण का प्रबल साधन स्वीकार किया, इसलिए शिक्षा के विकास व शैक्षिक असंतुलन को समाप्त करने पर बल दिया। साम्प्रदायिक सद्भाव वाले अध्यापकों की नियुकि की जाये। प्रदेश में राज्य या क्षेत्रीयता का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। अन्तर्विश्वविद्यालय मिलने व देश के भ्रमण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण स्थापित करने हेतु दिये गये विभिन्न सुझावों के बावजूद भी हमारे देश की यह समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसका कारण यही है कि इन सुझावों के क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान दिया गया है।

15.6.7 'हम एक है' प्रदर्शनी का आयोजन 1979 (Exhibition on "We are one" – 1979)

2 अक्टूबर, 1979 को गांधी जयन्ती के अवसर पर "हम एक हैं" विषय पर प्रदर्शनी का आयोजन, विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय द्वारा किया गया। इसमें यह दिखाया गया कि साम्प्रदायिक दंगों के द्वारा अच्छे नागरिकों व निर्दोष स्त्री पुरूषों व बेसहारा बच्चों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है।

15.7 राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण और शिक्षा (Education and National Education Integrated)

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के लिए गठित विभिन्न आयोगों व समितियों के सुझावों एवं सिफारिशों को यदि हम देखें तो यह स्वत: स्पष्ट हो जायेगा कि सभी ने इस कार्य के लिये शिक्षा को बहुत महत्वपूर्ण एवं आधारभूत रूप में स्वीकार किया है। शिक्षा के द्वारा ही विद्यार्थियों एवं भावी नागरिकों की अभिवृतियो एवं दृष्टिकोणों को विकसित किया जा सकता है। व्यक्ति की संकुचित प्रवृति को हटाकर विस्तृत प्रवृत्ति विकसित करने का कार्य शिक्षा ही ठीक प्रकार से कर सकती है। राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के लिए समुचित शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन की मांग की जाती रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस बात का ध्यान रखा गया है।

प्रो. तीर्थ के अनुसार एकीकरण की दृष्टि से हमारी शिक्षा के उद्देश्यों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों में लोकतांत्रिक जीवन से सम्बन्धित विश्वास व व्यवहार उत्पन्न हो सके और अल्पसंख्यकों व बहुसंख्यकों में तारतम्य स्थापित हो सकें। अध्यापकों व विद्यार्थियों में अपने संविधान के आदर्शो व मूल्यों की प्राप्ति और विभिन्न सांस्कृतिक विभिन्नताओं के प्रति श्लाघा उत्पन्न हो सके।

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार के पाठ्यक्रम को हटा दिया जाना चाहिए जिनसे आपसी फूट, धर्मान्धता व क्षेत्रवाद को बल मिलता हो। इसके स्थान पर ऐसे मूल्यों व आदर्शो को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो सर्वसम्मत हो जैसे प्रजातंत्र, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, बंधुत्व, सामाजिक न्याय, समानता, स्वतन्त्रता आदि। सम्पूर्णानन्द समिति की सिफारिशों के अनुसार सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में आमूलचूल परिवर्तन करके उनके भारतीय महापुरूषों, देशभक्तों, साहित्यकारों, समाज धारकों आदि को महत्वपूर्ण स्थान देकर उनके क्रिया कलापों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए। इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण सम्बन्धी पाठ्यक्रम केवल सामाजिक अध्ययन विषय तक ही सीमित न रखा जाये। हमने देखा कि राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में नैतिक शिक्षा का भी बहुत प्रभाव होता है। इसलिए नैतिक शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थानं दिया जाना आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में नैतिक शिक्षा पर इसलिए बहुत बल दिया गया है| इसके माध्यम से मानव धर्म का ज्ञान दिया जा सकता है। जिसमें सभी धर्मो की अच्छाइयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर भी अधिक बल दिया जाना चाहिए। इन क्रियाओं में राष्ट्रीय कार्यकमों का आयोजन किया जाना चाहिए। ये क्रियाएं विभिन्न राज्यों में आयोजित करके विद्यार्थियों को विभिन्न राज्यों में भेजा जा सकता है। इसके साथ ही वाद–विवाद प्रतियोगिता, एकांकी, नाटक आदि आयोजित किये जा सकते हैं। राष्ट्रीय प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की जा सकती हैं।

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में अध्यापकों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। अध्यापकों की विचारों एवं दृष्टिकोणों का छात्रों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अत: यदि अध्यापकों का दृष्टिकोण व्यापक हुआ तो छात्रों के दृष्टिकोण को भी व्यापक बनाने में अधिक कठिनाई नहीं आयेगी। **के.एल.श्रीमाली** ने भी शिक्षकों के विशाल हृदय, दृष्टिकोण व राष्ट्र के प्रति उनकी समग्रता की दृष्टि को महत्वपूर्ण स्वीकार किया है। शिक्षक प्रशिक्षण में भी राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण पर अधिक बल दिया जाना आवश्यक है। इसके लिए **प्रो. तीर्थ** ने शिक्षकों की समूह–शिक्षण विधि पर बहुत अधिक बल दिया है। इसमें सामूहिक क्रियाओं, चिन्तन, विचार विमर्श आदि के माध्यम से सीखने–सीखाने की प्रक्रिया पर बल दिया जाना चाहिए।

हम दूरदर्शन पर कई ऐसे सीरियल देखते रहे हैं। जिससे कि राष्ट्रीय एकता आये। उदाहरण के लिए अमीर खुसरों नामक सीरियल में औरंगजेब के लिये यह कहा गया कि वह हिन्दूओं के लिए ही आक्रमक नहीं था वरन् अपने भाइयों, बहनों व पिता को भी नहीं छोड़ा अत: उसे हमकों आक्रामक के रूप में ही देखना चाहिए। इस प्रकार के अन्य कार्यक्रम रेडियों, टीवी. आदि संचार माध्यमों के द्वारा दिये जाने चाहिए, जिससे कि राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता आ सकें।

15.8 सारांश (Summary)

राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण से यह तात्पर्य है कि हम विभिन्न संकीर्णताओं से दूर रहकर अपने आपकों अन्य कुछ (जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि) मानने से पूर्व भारतीय स्वीकार करें। हमारे देश के इतिहास व वर्तमान परिस्थितियों को देखने पर राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की आवश्यकता स्वत: स्पष्ट हो जाती है। हमारे परस्पर फूट का विदेशी ताकतों ने बहुत पहले से ही लाभ उठाया है। हमारे राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में जाति, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भाषावाद, हिंसात्मक साधन, आर्थिक विषमता आदि अनेक बाधक तत्व हैं। इनके आधार पर भारतीयों में फूट डालना व इससे लाभ उठाना राष्ट्र विरोधियों के लिए बहुत आसान है। राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण हेतु विभिन्न समितियां व आयोगों ने अपने सुझावों में शिक्षा पर ही बहुत अधिक बल दिया। अत: शिक्षा को अपने उद्देश्यों, – शिक्षण विधि, शिक्षक की भूमिका आदि सभी विषय इस प्रकार निश्चित करने होंगे जिससे कि भारतीयों में राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण की भावना उत्पन्न एवं विकसित हो सकें।

15.8 प्रगति का स्व–मूल्यांकन (Evaluation of Unit)

1. निम्न में से कौन -कौन से कथन आपके विचारानुसार भारत की भावी शिक्षा के सम्बन्ध में ठीक होंगे| उनके सामने सही का चिहन अंकित करें।
   (अ) भारत की शिक्षा में भाषा का विशेष महत्व नहीं होगा।
   (ब) हमारे देश में धार्मिक शिक्षा का महत्व नहीं होगा।

(स) राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण प्रधान पाठ्यक्रम होगा।

(द) पाठ्यक्रम–सहगामी प्रवृत्तियाँ शिक्षा में नहीं रहेंगी।

2. राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के अर्थ को स्पष्ट कीजिये।
3. राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण में शिक्षा की भूमिका लिखिये।
4. राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण हेतु विभिन्न समितियों ने क्या सुझाव दिये है?
5. राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकीकरण के मार्ग में मुख्य बाधाएँ क्या हैं? संक्षेप में लिखे।

1. Out of following statement,which statements are true from futuristics point of views of education?Tick the correct statement:
   A. Inguage will not have specific importance in Indian Education.
   B. Religeous education will not have any importance in our contry.
   C. National and Emotional Integration based curriculum will prevail.
   D. There will be no co–curricular activities in education.
2. Explain the meaning of National and Emotional Integration.
3. Write down the role of National and Emotional Integration.
4. What suggestions are given by different committees for National and Emotional Inregration?
5. What are themain problems in National and Emotional Integration?Write in short.

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference book)

1. कुप्पुस्वामी, बी, सोशल चेन्ज इन इण्डिया, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1972
2. कोठारी, रजनी, पॉलिटिक्स इन इण्डिया'।
3. 'द रिपोर्ट ऑफ द एजूकेशन कमीशन 1964–66 भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
4. कुलदीप नायर, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, द किटिकल इयर्स, विकास पब्लिकेशन्स, 1971
5. द रिपोर्ट ऑफ द सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन 1952 –53 भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
6. नेहरू, जे.एल. 'स्पीचेज', तृतीय खण्ड।
7. द रिपोर्ट ऑफ यूनिवर्सिटी कमीशन 1948–49 भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
8. सिंघल, डी. एम.सी. भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, राजस्थान हिन्द मन्थ अकादमी ।
9. श्रीमाली के.एल., एजुकेशन इन चेंजिंग इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई ।
10. तीर्थ, एन.बी. नेशनल इंटीग्रेशन, यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स, जालधर, 1988

इकाई 16

खुला अधिगम समाज,उसकी विशेषताएँ एवं खुली अधिगम प्रणाली

Open Learning Society,its Features and Open Learning System

इकाई की रूपरेखा (Out Line of the Unit)

16.1 इकाई शीर्षक (Unit Title)

16.2 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

16.3 प्रस्तावना (Introduction)

16.4 खुला अधिगम समाज का उद्गम/उद्भव (The Emergence of Open Learning Society)

16.4.1 तकनीकी एवं ज्ञान अर्थव्यवस्था (Technology and knowledge economy)

16.4.2 वैश्वीकरण एवं ज्ञान अर्थव्यवस्था (Globalization and Knowledge Economy)

16.4.3 रोजगार एवं नवीन श्रमिक बाजार (Employment and the new labour market)

16.4.4 खुला अधिगम समाज में बदलते जीवन प्रतिमान (Changing life patterns in Open Learning Society)

16.5 जीवन पर्यन्त अधिगम एवं अधिगम समाज (Life Long Learning and The Learning Society)

16.5.1 अधिगम अवस्था–शिक्षा नीति के विचार (Learning Age–Educational Policy Issues)

16.5.2 अधिगम समाज – मुख्य विशेषताऐ (The Learning Society–Characteristics Features)

16.6 खुला अधिगम प्रणाली (Open Learning Systems)

16.6.1 परिवर्तन को चुनौती–विश्वविद्यालय नवीनीकरण हेतु केस (Challenge of Change–case for University Renewal)

16.6.2 शैक्षिक प्रणाली में तकनीकी भविष्य के प्रति दृष्टि (Vision of the Technological Future in Educational System)

16.6.3 दृष्टि को वास्तविकता में परिवर्तित करने हेतु पूर्व आवश्यकताएँ/पूर्वकांक्षा (Prerequisites for Translating from Vision to Reality)

16.6.4 उच्च शिक्षा में अवसर एवं चुनौतियॉ (Challenges and Opportunities for higher Education)

16.7 ज्ञान युग का जन्म – शैक्षिक सिद्धान्त एवं अभ्यास में परिवर्तन (Birth of Knowledge Era–changes in Educational Theory and Practice)
16.8 निष्कर्ष (Conclusion)
16.9 सारांश (Summary)
16.10 इकाई का मूल्यांकन (Evaluation of the Unit)
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

16.2 अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

- खुला अधिगम समाज के सम्प्रत्यय को परिभाषित करना एवं अवबोध विकसित करना।
- खुला अधिगम समाज की प्रकिया के उद्भव की खोज करना।
- खुला अधिगम समाज के निर्माण में अग्रणी कारकों की पहचान करना।
- खुला अधिगम समाज की विशेषताओं का पता लगाना (विभेदित)।
- खुला अधिगम प्रणाली को परिभाषित करना एवं अवबोध उत्पन्न करना।
- खुला अधिगम प्रणाली के समक्ष आने वाली चुनौतियों की पहचान करना।

16.3 प्रस्तावना (Introduction)

20वी शताब्दी के मध्य में, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य एवं मित्र देशों द्वारा भविष्य में अन्य विश्व युद्ध को रोकने के लिए कुछ आव्यूह अपना गए। उनमें से पहला था नागरिकों की दृष्टि से तकनीकी विकास में सभी शोध एवं विकास को अनुप्रेषित करना। इससे तकनीकी में तीव्र गति से विकास हुआ जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा इनमें भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा सूचना सम्प्रेषण तकनीकी का विकास।

इसके पीछे आधारभूत भावना यह थी कि अधिक से अधिक राष्ट्रों, राज्यों व उनके नागरिकों को आर्थिक उत्पादकता व सामाजिक रचनात्मक गतिविधियों में कुछ इस प्रकार लगाया जाय कि भविष्य में युद्ध विचार भी न कर पाए। लोकतंत्र को विश्वव्यापी बनाने की नीति के तहत इसी उद्देश्य से कार्य किया गया।

सूचना तकनीकी के प्रवेश से सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया को गति मिली और विश्व संकुचित हो गया। तकनीकी ज्ञान तेजी से बदल रहा है। सकारात्मकता इसी में आ रही है। अब ज्ञान को ज्यादा महत्व दिया जाने लगा जो कि प्रयोगशाला तक सीमित न रहकर कार्यक्षेत्र तक पहुँच रहा है। नये प्रतिफल देने वाले पाठ्यक्रम सभी स्तरों पर प्रारम्म किए जा रहे है। कक्षा के बिना अधिगम के नए तरीकों की खोज की जा रही है, पूर्व अनुभवजन्य अधिगम के हस्तान्तरण को स्वीकृत किया गया है। वस्तुत: अधिगम के सिद्धान्त स्वत: ही बदल रहे हैं और अनुभवजन्य बन रहे हैं।

तेजी से बढ़ते हुए विकास व सूचना तकनीकी के विस्तार से, यह अधिक आश्चर्य की बात नहीं है कि संस्थाएँ शिक्षा व प्रशिक्षण भी उसी प्रकार दे रही हैं।

21 वीं सदी में मानव के लिए बहुविध चुनौतियॉ अपेक्षित हैं। भौतिक संसाधनों के अभाव के कारण भौतिक वातावरण का उन्नयन सम्भव नहीं होगा अत: यह विश्व के शिक्षाविदों पर

निर्भर होगा कि प्रत्येक व्यक्ति कौशलों एवं बुद्धि के असीमित क्षेत्रों में अपनी क्षमताओं का विकास कर सके। विकासशील विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या को शिक्षा व प्रशिक्षण देना अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती है। परन्तु यह आवश्यक भी है क्योंकि मानव की सम्पूर्ण सुरक्षा इस पर निर्भर करती है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विश्व की 50 प्रतिशत जनसंख्या 20 वर्ष से कम उम्र की है। विकासशील देशों में इसका अनुपात बढ़कर पैलेस्टीन में 70प्रतिशत व दक्षिण अफीका में 80 प्रतिशत है। यदि इस दिशा में शीघ्र ही सक्रीय रूप से हस्तक्षेप न किया गया तो इसमें से बहुत बड़ा युवा वर्ग बेरोजगार, अस्थिर एवं एकांगी रह जाएगा। अत: कार्य के लिए समूह प्रशिक्षण व रोजगार के उपयुक्त अवसर ही एक मात्र समाधान है। साथ ही साथ व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह स्व–नियंत्रित होने के लिए अपने आदर्शो व मूल्यों को अर्जित करे। जबकि नवीनतम सम्प्रेषण ने इसे अत्यन्त जटिल बना दिया है। अत: शिक्षा व प्रशिक्षण ही जिम्मेदार नागरिक बनाने के लिए बेहतरीन तरीके साबित हो सकते हैं।

16.4 खुले अधिगम समाज का उद्गम /उद्भव (The Emergence of Open Learning Society)

खुला अधिगम समाज का उद्गम वैश्वीकरण एवं ज्ञान के विस्फोट के परिणामस्वरूप हुआ। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारे चिन्तन में परिवर्तन आया है। अब हमारा ध्यान कौशल अर्जित करने तथा ज्ञान के प्रबन्धन पर केन्द्रित हो गया है। इससे बड़ी संख्या में व्यक्ति बाजार की अर्थव्यवस्था में सक्रिय भागीदार हो सकते हैं। ज्ञान समाज में अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करने हेतु शिक्षा एक उपकरण के रूप में कार्य करती है। आर्थिक रूचि के नवीनीकरण के साथ 'अधिगम' कई देशों की शिक्षा नीति का केन्द्र बिन्दु बन गया है। शिक्षा को वर्तमान में निवेश के रूप में माना जाता है। जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक पूंजी के मूल्य में वृद्धि करती है।

16.4.1 तकनीकी एवं विवेकपूर्ण अर्थव्यवस्था (Technology and knowledge Economy)

ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में औद्योगिक अर्थव्यवस्था को परिवर्तित कर दिया है। यह विश्वास हो गया है कि ज्ञान के गणना से वस्तु के मूल्य बन रहे हैं निर्मित वस्तुओं से नहीं। उदाहरण के लिये प्राचीन अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु के उत्पादन में निर्यात की भूमिका महत्वपूर्ण हुआ करती थी किन्तु लागत मूल्य कच्चे माल एवं श्रम से निर्धारित होती थी। किन्तु वर्तमान समय में जैसे कम्प्यूटर के निर्माण में कच्चा माल एवं श्रम अत्यधिक कम है किन्तु लागत में इसके आकार–प्रकार इसकी मशीन एवं कार्यक्रम को तैयार करने में लगाये गये चिन्तन व समय, मस्तिष्कीय किया एवं ज्ञान की गणना महत्वपूर्ण हो जाती है। इसको काम में लेने सम्बन्धी प्रशिक्षण और भी अधिक महंगा हो जाता है।

इस प्रकार तकनीकी परिवर्तन ने ज्ञान की अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है।

ICT ने सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा आदि क्षेत्रों को बहुत सुदृढ़ किया है, इससे सम्प्रेषण में बहुत तीव्रता आयी है । पुरानी व नयी अर्थव्यवस्था में तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि पुरानी अर्थव्यवस्था में सूचनाओं का अभाव रहता था लेकिन नयी अर्थव्यवस्था में सूचनाएं तो

बहुत अधिक उपलब्ध होती हैं लेकिन मुख्य बिन्दु यह है कि किस प्रकार इन सूचनाओं का चयन कर उनका प्रबन्धन किया जाए जिससे वो स्वयं तथा उपभोक्ताओं के लिए अधिक मूल्यवान बन सके। इसके लिए मानवीय श्रम की अपेक्षा बौद्धिक कौशल की आवश्यकता होती है। साथ ही साथ बौद्धिक लचीलापन तथा स्थानान्तरण योग्य कौशल का सम्मिश्रण बहुत आवश्यक है।

तकनीकी परिवर्तन का मुख्य प्रभाव यह हुआ है कि अर्थव्यवस्था में अधिक कौशलयुक्त व्यवसायों में वृद्धि हुई है। काम–कौशल वाले व्यवसायों में अवसर न्यूनतम हो गये हैं। इस कारण औद्योगिक फर्मो को लाभ अधिक होने लगा है।

Rich (1993) ने श्रमिक बाजार (Labour market) में आने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए एक नये प्रभावी सामाजिक वर्ग के बारे में बताया जिसका मुख्य व्यवसाय ज्ञान का विनिमय एवं प्रबन्धन करना है। इस वर्ग को प्रतिकात्मक विश्लेषक कहा गया। वर्तमान अर्थव्यवस्था में उत्पन्न निम्न तीन वर्गो को लेकर रिच ने चिन्ता अभिव्यक्त की है –

1. प्रतिकात्मक विश्लेशक (Symbolic Analyst)
2. सेवा वर्ग (Service Class)
3. अस्थिर आर्थिक भूमिका वाले व्यकियों का बड़ा समूह (A large group of people with no stable economic role)

स्व–मूल्यांकन(Self Evaluation)

1. तकनीकी, ज्ञान, आर्थिक विकास चक्र को स्पष्ट कीजिये|
2. तकनीकी में होने वाले परिवर्तन कार्य स्थल को किस प्रकार प्रभावित करते हैं|

क्योंकि एक बड़े समूह के रूप में बेरोजगार व्यक्तियों का होना किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा नहीं होगा।

16.4.2 समाज का उद्गमू /उद्भव(Origin of Open Learning Society)

भविष्य में होने वाले विश्व युद्धों को रोकने की प्रकिया के रूप में आर्थिक एवं राजनैतिक मुद्दों को लेकर वैश्वीकरण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। खुली आर्थिक वैश्वीकरण ने अनेक देशों की आर्थिक स्थिति, सामाजिक अन्तःक्रिया एवं संरचना की प्रकृति को परिवर्तित कर दिया। इससे शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की आवश्यकताओं में परिवर्तन आ रहा है। इससे किसी विशेष शिक्षा एवं प्रशिक्षण दाताओं की प्रतिस्पर्द्धा भी बदल रही है।

सम्प्रेषण में सुगमता तथा कौशल का प्रयास वैश्विक आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम है। इससे आर्थिक गतिविधि में बहुत तीव्र गति से वृद्धि हुई तथा राष्ट्र की सीमाओं से परे भी गतिविधियाँ चल रही हैं।

ऐसे परिदृश्य में राष्ट्रों के पास निम्न मूल्य, निम्न कौशल तथा निम्न दत्त उत्पादन (Low paid production) अथवा उच्च मूल्य, उच्च कौशल तथा उच्च प्रदत्त कार्यो में से किसी एक को अपनाने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। भारत जैसे देश में दोनों प्रकार की

मानव शक्ति बहुतायत में है अत: एक नवीन व्यूह रचना को अपनाना आवश्यक है। इसकी छवि ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना में उच्च एवं व्यावसायिक शिक्षा को महत्व देने से स्पष्ट हो जाती है। राष्ट्रीय ज्ञान कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में इसकी आधारभूत संरचना (Infra Structure) में वृद्धि हेतु सुझाव प्रस्तुत किए।

वैश्वीकरण एक सामाजिक शक्ति भी है। किसी भी राष्ट्र अथवा समुदाय के लिए अपनी पहचान और मूल्यों को स्थापित करने का प्राथमिक तरीका शिक्षा है। धीरे–धीरे सम्प्रेषण की सुविधा विकसित हो गई।

दूररथा शिक्षा एवं कम्प्यूटर द्वारा शिक्षा का बहुत प्रसार हो रहा है। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का प्रचलन बढ़ा है|

16.4.3 रोजगार तथा नवीन श्रमिक बाजार (Employment and the new labour market)

बड़े उत्पादन संगठन, औद्योगिक विकास के लिए आधार के रूप में कार्य कर रहे हैं। उत्पाद एवं सेवाओं के समन्वय से ये संगठन स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर कार्य का विस्तार कर रहे है।

नवीन तकनीकी के आगमन के कारण कल–कारखानों के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। इससे बहुत बड़ी मात्रा में एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो सका। नवीन तकनीकी के कारण व्यक्तिगत इलेक्ट्रॉनिक समाचार पत्रों का उपयोग भी सम्भव हो सका। इसमें सूचनाओ को पढ़ने वाला विशिष्ट सूचनाओं को छांट सकता है, उन्हें अपने कम्प्यूटर पर स्थानान्तरित कर सकता है। इस परिवर्तन के कारण श्रमिकों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण के तकनीकी शान में परिवर्तन आया। रोजगार के अवसरों के अनुरूप ही शिक्षण–दीक्षण आवश्यक हो गया।

तकनीकी के कारण दो संस्थाओं के सम्बन्धों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। सम्प्रेषण में तीव्रता के कारण समय पर वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो सका है। तकनीकी के कारण उपभोक्ताओं को प्रतिद्वन्दी उत्पाद के बारे में अधिक सूचनाएँ आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। इस कारण उत्पादन पर उच्च गुणवता तथा समय पर वस्तुओं की पूर्ति हेतु दबाव बढ़ गया। इन समस्त औद्योगिक परिवर्तनों से दो प्रकार के प्रभाव हुए। एक ओर तो श्रमिकों को आवश्यकतानुसार कौशलों के प्रशिक्षण होने की आवश्यकता हुई जो कि तीव्र गति से बदलती रहती है दूसरी ओर सूचनाओं को समझना, संग्रहित करना तथा उसका व्यवस्थापन करना अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया। अत: उच्च एवं कौशलयुक्त शिक्षा का महत्व बढ़ गया है|

16.4.4 खुले अधिगम समाज में बदलती जीवन शैली (Changing life patterns in Open Learning Society)

वर्तमान में व्यक्ति एवं उसकी जीवन शैली में बहुत परिवर्तन आया है। जीवन में बढ़ती हुई आशाएँ, श्रमिक बाजार में व्यक्ति के प्रवेश की बढ़ती उम्र, महिला शिक्षण एवं रोजगार की में वृद्धि, अन्तर्राष्ट्रीय गतिशीलता तथा जीवन के लिए कार्य करने की भावना में कमी आदि कारक परिवर्तित जीवन शैली के लिए उत्तरदायी हैं। इससे समाज के सम्मुख सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियाँ उभर कर आई। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का अधिकांश भाग उत्पादन कियाओं में लगाता है जिससे समाज के धन में वृद्धि होती है तथा निषक्रीय व्यक्तियों (जैसे सेवानिवृत तथा

बालकों) के उत्पादन की कमी भी पूर्ण हो पाती है। प्रश्न उठता है कि सेवा निवृत्ति क्या है? शारीरिक रूप से स्वस्थ तथा बौद्धिक रूप से सक्षम व्यक्तियों का प्रबन्धन कैसे किया जाए? सेवानिवृत व्यक्ति की सेवा हेतु मांगे बहुत अधिक नहीं होती हैं। अधिकांश व्यक्तियों के लिए यह धन के साथ–साथ पहचान तथा सामाजिक स्तर दिलाती है। कई व्यक्तियों के लिए कार्य स्थल कम स्थायी वातावरण होता है तथा कुछ व्यक्ति अपनी सेवानिवृति तक्र एक ही संस्था में कार्य करते हैं तथा उच्च उड़ान की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों का विकास नियोजन एक व्यवस्था के अनुसार होता है। (वाट्स 1999) मध्यम वर्ग में इस प्रकार की विशेषताऐ सर्वाधिक होती हैं।

OECD's के कार्य अध्ययन (1994) में पाया गया कि विकसित विश्व में औसत रूप से व्यक्ति को अपने जीवन में पाँच प्रकार के अलग–अलग कार्य करता है जिनमें से प्रत्येक के लिए विशेष प्रशिक्षण आवश्यक होता है। इसके परिणामस्वरूप अपने कार्य स्थल पर स्वयं के कार्य जीवन के प्रबन्धन कौशल के विकास एवं स्वयं की प्रतिभा का नये तरीकों से उपयोग करने में व्यक्ति बहुत अनिश्चितता की स्थिति में होता है।

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय भाग में महिलाओं के कार्य में प्रवेश से परिवर्तन आया। यद्यपि उनकी कुल आय पुरूषों की तुलना में निम्न होने पर कार्य क्षेत्र में भी संख्यात्मक दृष्टि से आगे है। महिलाओं का शैक्षिक स्तर पुरूषों की तुलना में उच्च होने के कारण वे आसानी से व्यवसाय प्राप्त कर लेती हैं। श्रम बाजार में उनके आगमन के कारण कार्याभ्यास तथा कार्य के घण्टों में परिवर्तन हेतु दबाव बना है। इसके अतिरिक्त कुछ पारम्परिक व्यवसाय जो पुरूषों द्वारा ही किए जाते थे उन क्षेत्रों में भी महिलाओं के आगमन के कारण पुरूषों को सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

उपर्युक्त परिवर्तनों के लिए दो मुख्य कारक उत्तरदायी हैं–पहला बेरोजगारी एवं रोजगार की सीमाओं का धुंधला होना। एक बड़ा वर्ग अंशकालीन कार्य करता है। कुछ कार्यकर्ता अंशकालीन ही सेवानिवृत हो जाते हैं तथा दूसरा वह संरचना, जो व्यक्ति को जीवनपर्यन्त रोजगार देती थी उसका कमजोर होना। अतः वर्तमान समय में स्व प्रबन्धन हेतु परिवर्तन का पूर्वानुमान, समायोजन एवं सबसे ऊपर एक अच्छा विद्यार्थी बने रहने के लिए कुशलताओं का विकास आवश्यक हैं।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)

1. आर्थिक वैश्वीकरण को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए|
2. वैश्वीकरण के कारण शिक्षा में किस प्रकार के परिवर्तन रहे हैं|
3. वैश्वीकरण के कारण विभिन्न संगठनों में आने वाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए|
4. खुला बाजार अर्थ व्यवस्था के कारण जीवन शैली में होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए तथा शैक्षिक वातावरण एवं अधिगम इससे किस प्रकार प्रभावित हुआ|

16.5 जीवन पर्यन्त शिक्षा एवं अधिगम समाज (Life Long Learning and The Learning Society)

जीवन पर्यन्त शिक्षा के सम्प्रत्यय का उदय अमेरिका में ड्यूवी के इस कथन से "The Melination to learn from itself and to make the condition of life such that all will learn in the process of living in the finest product of schooling." से हुआ। इसका मुख्य प्रभाव तब पड़ा जब UNESCO ने अपनी रिपार्ट में इसे स्वीकार किया जिसे डेलर्स रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इस रिपोर्ट ने जीवन पर्यन्त शिक्षा के सम्भावित प्रभावों का दावा करते हुए बताया कि शिक्षा सार्वभौमिक तथा जीवन पर्यन्त होनी चाहिए जिससे न केवल व्यक्ति आर्थिक विकास हेतु तैयार हो वरन् वह भविष्य के समाज के लिए भी तैयार रहें।

शोन (Schon, 1971) द्वारा प्रतिपादित "अधिगम समाज" के निर्माण को ध्यान में रखते हुए जीवन पर्यन्त शिक्षा की बात कही गयी।

रानसन (1998:2) ने अधिगम समाज को ऐसे समाज के रूप में परिभाषित किया जो–

- सम्पूर्ण तथा इसमें होने वाले परिवर्तनों के बारे में सीखे।
- सीखने के तरीके में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करें।
- जिसके सभी सदस्य सीखने वाले हों।
- जो अधिगम की परिस्थितियों में प्रजातांत्रिक तरीके से परिवर्तन लाना सीखे।

जीवन पर्यन्त शिक्षा तथा अधिगम समाज कई देशों में चर्चा में है यद्यपि उनकी गति व समय में भिन्नता है। 1980 के मध्य में कई पाश्चात्य देशों की अर्थव्यवस्था में धीमें आर्थिक विकास के कारण सरकार की रूचि जीवन पर्यन्त शिक्षा में जागत हुई। 1983 के प्रारम्भ में कौशलों में गिरावट अनुभव की गयी जिससे शैक्षिक सुधार की आवश्यकता महसूस की गयी। शिक्षा में गुणवता हेतु निर्मित राष्ट्रीय कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में तर्क दिया कि शैक्षिक सुधार का मुख्य लक्ष्य अधिगम समाज का निर्माण होना चाहिए तथा शिक्षा सार्वभौमिक एवं जीवन पर्यन्त होनी चाहिए।

1998 में UK सरकार ने ग्रीन पेपर "अधिगम अवस्था" प्रकाशित किया। अधिगम अवस्था का वास्तविक अर्थ पर चर्चा एवं वाद–विवाद हुए। विकसित राष्ट्रों में अधिगम आयु, अधिगम समाज तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा आदि शब्द मीडिया में बहुत सामान्य हैं। जहॉ सरकार अपने कार्यो को वहां के नागरिकों के सन्दर्भ में पुनर्परिभाषित कर रही है वही इन शब्दों का उपयोग किया जाता है।

वर्तमान में पुराने समय की अपेक्षा जटिलताओं में काफी वृद्धि हुई है। अत: नई सदी के प्रारम्म में स्व–मूल्यांकन का महत्व बढ़ गया है। हम स्वयं को स्पष्ट रूप से सीखने की अवस्था में पाते हैं वही बार–बार प्रश्न उभरते है। जैसे यह कि शिक्षा क्या करती है या करे और शिक्षा है क्या? यह किसके लिए है? इसके अन्तर्गत क्या समाविष्ट किया जाए? शिक्षाविद् किसके प्रति उत्तरदायी है?

स्व–मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)

1. 1972 तथा 1996 की यूनेस्को की रिपोर्ट को प्रभावित करने वाली प्रमुख वैश्विक घटनाओं को स्पष्ट कीजिए।
2. जीवन पर्यन्त शिक्षा से सम्बन्धित मुख्यनीतियों का वर्णन कीजिए।

16.5.1 अधिगम अवस्था एवं शिक्षा नीति (Learning Age and Educational Policy)

यूरोपियन तथा यूरोपियन समुदाय से परे देशों में अधिगम समाज, ज्ञान समाज तथा अधिगम संगठन आदि सम्प्रत्यय शिक्षा व्यवस्था के मुख्य विषय हैं। वर्तमान अधिगम बाजार में शिक्षा व्यापार की एक वस्तु हो गई है। अत: इसका परम्परागत अर्थ को भय उत्पन्न हो गया है। अब अधिगम एक प्रतिस्पर्धा का विषय है तथा कार्य जगत द्वारा अधिगृहित कर लिया गया है।

स्वीडन में लगभग आधे वयस्क व्यक्ति संगठित अधिगम क्रियाओ में संविलीन रहते हैं| 1996 में यूरोपियन–जीवन पर्यन्त अधिगम के घोषणा पत्र से इस विचार का बहुत महत्व प्रदर्शित होता है।

1995 में यूरोपीयन कमीशन ने एक श्वेत पत्र शिक्षण एवं अधिगम : अधिगम समाज की ओर" प्रकाशित किया जिसका मुख्य उद्देश्य यूरोप को सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए ज्ञान आधारित समाज के निर्माण के लिए प्रेरित करना था। इस पत्र में समाज को अस्थिर करने वाले तीन प्रभावी कारकों पर प्रकाश डाला गया–

1. सूचना समाज का प्रभाव
2. औद्योगीकरण का प्रभाव
3. वैज्ञानिक एवं तकनीकी विश्व का प्रभाव

इसके लिए द्वि–सूत्री समाधान भी इस पत्र में प्रस्तुत किया गया–

1. सक्रीय नागरिकों के निर्माण में महत्व को पुन: सम्मिलित करवाना।
2. रोजगार की योग्यता का सृजन।

आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों में आजीवन सीखने(Life time Learning) को महत्वपूर्ण माना। इससे कार्यक्षेत्र में गतिशीलता आती है तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। अधिगम एक देश को दूसरे देश के व्यापार तथा एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से प्रतिस्पर्द्धा को सहारा देते हुए उत्पादक समुदाय के निर्माण में सहायक होता है। वृद्ध व्यक्ति भी जो सतत् रूप से अधिगम से जुड़े रहते हैं। वे लम्बे समय तक आर्थिक एवं सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करते हैं।

अधिगम समाज, सभी नागरिकों में सामाजिक सम्बद्धता, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक उन्नति के लिए प्रयासरत रहता है।

स्कॉटलेण्ड में अधिगम समाज को परिभाषित करते हुए Scotlish Community Co Education Council ने लिखा है– “A Society Whose Citizens value, support are engage in learning,as a matter of course,in all areas of activity” इनके अतिरिक्त इसमें सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कारक जो प्रजातांत्रिक प्रक्रिया,

समीक्षात्मक जागरूकता, पर्यावरण संरक्षण तथा स्कूलों में सुधार हेतु भी ऐसे नागरिक सजग रहते हैं।

केनेडी रिपोर्ट ने अधिगम समाज को महत्वपूर्ण मानते हुए लिखा है कि अधिगम समाज के स्वास्थ्य तथा आर्थिक प्रगति के लिए केन्द्रीय स्थान पर रहता है। इनका यह मानना है कि आर्थिक उद्देश्य एवं सामाजिक सम्बद्धता एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। अधिगम से जुड़ाव (Interwining) के कारण व्यक्ति व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में प्रगति करते हैं।

केनेडी रिपोर्ट में इस विषय पर भी चर्चा की गयी कि तकनीकी नवाचार के कारण कार्य जगत में बहुत तीव्र गति से परिवर्तन आ रहे हैं तथा इन परिवर्तनों में स्वयं को टिकाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे कौशल में परिवर्तन किया जाए।

अधिगम समाज के अधिकांश सिद्धान्त सार्वभौमिक अधिगम के पक्ष में तर्क देते हैं। रानसन (1998,163–67) के अनुसार "Developing the capacity of everyone to contribute to and benefit from the economic,personal,social and cultural dimensions of their lives is central to achieveing the whole range of goals we set ourselves as a nation."

टॉनी ब्लेयर के अनुसार शिक्षा हमारे पास हमारे सर्वोत्तम आर्थिक नीति है। डेविड ब्लन्केट्स (David Blunkett's) के अनुसार सीखना सम्पन्नता की कुंजी है– व्यक्ति केरूप में हम सबके लिए एवं समग्र केरूप में सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए, 21वी सदी की ज्ञान आधारित वैश्विक अर्थव्यवस्था में मानवीय पूंजी में निवेश करना सफलता का अधिकार बनाना होगा। अत: सरकार भी शिक्षा को केन्द्र बिन्दु मानती है। शिक्षा कौशल अर्जन करने, सक्रिय नागरिकों के निर्माण तथा स्वयं की सहायता हेतु प्रेरित करती है।

स्व–मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)

1– What are the dilemmas facing the Educational system in the life long learning age.

16.5.2 अधिगम समाज – मुख्य विशेषताऐ (The Learning Society – Characteristics Features)

"जीवन पर्यन्त सिखते रहना" आज के औद्योगिक जगत की शब्दावली का अभिन्न हिस्सा बन गया है। लोगों के जीवन शिक्षण व प्रशिक्षण सिखने की आवश्यकता है क्योकि परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों एवं विकासशील समाज में एकाधिक व्यवसाय कार्य करने होंगे। "सिखने वाला' शब्द अब व्यक्ति के स्थान पर भूमिका से अर्थ रखता है। प्रशिक्षण का आर्थिक लाभ बेरोजगार व्यक्ति के लिए विशेष नहीं होता है। यदि कार्य में रहते हुए व्यक्ति प्रशिक्षित करें तो उत्पादन एवं मजदूरी में उन्नति (विकास) होती है। (Economists, 1963) इसके अलावा ऐसे प्रमाण हैं कि जिन बच्चों के माता–पिता भी सीखते हैं उनके वे बच्चे परिश्रम अधिक करते हैं। ऐसे साक्ष्य हैं।

16.6 खुली अधिगम प्रणाली (Open Learning System)

वर्तमान समय में सीखते रहने की आवष्यकता के अनुरूप सतत् सिखते रहने के लिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अपर्याप्त साबित हो रही है। दूरस्थ शिक्षा का तरीका वर्तमान व भविष्य की बढ़ती हुई मांग व आवश्यकता पूर्ति हेतु है। विज्ञान व तकनीकी ज्ञान महत्वपूर्ण ताकत साबित हो रहे हैं। यह सिर्फ आर्थिक विकास हेतु ही नहीं बल्कि मानव कार्यो के हर क्षेत्र में आवश्यक है। विकसित राष्ट्रों के बीच खाई पाटने हेतु दूरस्थ शिक्षा (DE) की आवश्यकता है।

दूरस्थ शिक्षा तीस साल पूर्व प्रारम्भ हुई है और अपनी युवावस्था में है। यह एशिया में ही नहीं बल्कि पश्चिमी यूरोप संयुक्त राज्य तथा कनाडा में वरदान सिद्ध हो रही है। बहु माध्यमी शिक्षा की राष्ट्रीय जापानी संस्था द्वारा किए अध्ययन के अनुसार एशिया ही नहीं वरन् यू.के. एवं अफ्रीका, लेटिन अमेरिका एवं तीसरी दुनिया में आजीवन शिक्षा के लिए दूरस्थ शिक्षा को निरन्तर रखना बहुत आवश्यक है।

क्योंकि उन राष्ट्रों में अपने विकास हेतु नयी तकनीक को शामिल किया है। विश्वस्तरीय प्रतियोगिता हेतु विकसित दक्षता तथा नये ज्ञान को पकड़ना आवश्यक है। उपरोक्त समस्याओं के समाधान एवं आर्थिक चुनौतियों का सामना करने हेतु विकसित उच्च शिक्षा के लिए पूर्व में स्थापित विश्वविद्यालयों को विगत पच्चीस वर्षो में नये प्रकार के विश्वविद्यालय में परिवर्तित किये गये हैं ऐसे विश्वविद्यालय दूसरे विश्वविद्यालयों के मुकाबले बहुत कम लागत में शिक्षण कार्य होता है। ऐसे विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को उनकी सुविधानुसार– कहा व कब अध्ययन करना है इसके लिए चयन करने की स्वतंत्रता देते हैं।

वर्तमान अनुभव यह है कि तकनीकी ज्ञान एवं व्यक्ति के सम्बन्धों में गुणात्मक परिवर्तन करता है। ज्ञान के प्रभावी उपयोग के लिए सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता रहती है। जोन डेनियम के अनुसार उपरोक्त परिवर्तनों का मुकाबला करने के लिए कम लागत तथा शिक्षण देने का प्रभावी तरीके की आवश्यकता है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि वृत व अनियोजित लोगों को सुधारात्मक प्रशिक्षण देने की अपेक्षा नौजवानों को नियोजन के लिए शिक्षा व निपुणता का ज्ञान देना ज्यादा प्रभावी है। उच्च शिक्षा अकेले विद्यार्थी को एवं सामूहिक रूप से सभी विद्यार्थियों को लाभ देती है।

कई देशों में यह पाया गया कि वहां की सरकारें युवा के प्रशिक्षण व प्राथमिकी व सैकण्डरी शिक्षण के सार्वभौमिक एवं प्रभावी बनाने के लिए सीमित लोक संसाधनों पर का बहुत ध्यान देती है।

उपरोक्त पालिसी लोकतान्त्रिक समाज एवं बाजार की अर्थव्यवस्था हेतु उपयुक्त है। कई विश्वविद्यालयों ने प्रौढ़ व्यक्तियों की बढ़ती संख्या के लिए जीवनपर्यन्त शिक्षण का विरोध नये प्रोग्राम व सेवाओं के लिए किया है। लेकिन पूर्ण कालिक शिक्षण व्यवस्था स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के लिए पूर्ववत चालू रहेगी। उनके अनुसार दूरस्थ शिक्षा से समस्त समस्याओं का समाधान सम्मवन नहीं है।

16.6.1 परिवर्तन की चुनौती–विश्वविद्यालय नवीनीकरण हेतु केस (Challenge of Change–case for University Renewal)

नई मिलेनियम के बदलते परिवेश में विश्वविद्यालयों के लिए वास्तविक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। विगत हजारों वर्ष के वैज्ञानिक, तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन में मुख्य सहयोगी रहे हैं। तथापि वे परिवर्तन में असफल रहे है।

यह कहना सुरक्षित है कि जीवनपर्यन्त शिक्षण की फैलती संस्कृति युवाओं के अनिवार्य शिक्षण के बाद दृष्टिकोण में परिवर्तन लायेगी। यदि अध्ययन एवं कार्य दोनों जीवन भर साथ–साथ रहें तो क्यों नहीं प्रारम्भ में ही साथ–साथ किये जावें ताकि पार्ट टाइम डिग्री भी ले सकें व काम भी मिल सके। वर्तमान समय में रोजगार प्राप्त करना कठिन है बनिस्पत डिग्रियाँ लेने के। रोजगार के लिए अनुभव का भी होना जरूरी है। अत: नौजवानों के लिए डिग्री एवं कार्य का गठजोड़ आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को नवीनीकृत करने का उद्देश्य लोगों को जीवन पर्यन्त शिक्षण के अवसर उपलब्ध कराना है।

कई विश्वविद्यालयों ने अपने सही अर्थ में तकनीकी का प्रयोग कर लागत व पहुंच की चुनौतियों का सामना किया है। बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों ने दूरस्थ शिक्षा से लाखों विद्यार्थियों को सेवा देकर सफलता प्राप्त करती है।

16.6.2 शैक्षिक प्रणाली में तकनीकी भविष्य के प्रति दृष्टि(Vision of the Technological future in Educational system)

विश्वविद्यालयों के नवसंस्करण में प्रमुख विषय अकादमिक गुणवत्ता से जुड़ा है। इस विषय की आपूर्ति की क्रियान्विति के लिए तकनीकी सहयोग पर चिन्तन किया जा रहा है। विकासशील देशों मै उच्च शिक्षा की अधिक मॉग के कारण इसमें नवीनीकरण की आवश्यकता हो गई है। औद्योगिकृत देशों में इसमें विविधता की भी आवश्यकता है। उच्च शिक्षा के नवीनीकरण एवं विविधता के परिवर्तन में गुणात्मकता पर ध्यान बनाये ही रखना होगा। इस सम्बन्ध में तकनीक का अर्थ होता है उच्च गुणात्मकता सामान्यतया उच्च तकनीक को लागत प्रभावी (Cost Effective) माना जाता है। बशर्ते वह गुणात्मक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न विचारों से अलग रहे–

1. एक संस्था की आयु एवं प्रतिष्ठा में सशक्त सह–सम्बन्ध होता है।
2. विशिष्टता एवं गुणात्मकता समान बात है।
3. भरपूर संसाधनों वाले विश्वविद्यालय बेहतर होते हैं।
4. छोटी कक्षाएं एवं पर्याप्त अन्तःक्रिया वाली शिक्षा व्यवस्थाएं बेहतर होती हैं।
5. अध्यापक एवं छात्रों के मध्य सम्पर्को की प्रगाढ़ता गुणात्मकता का प्रतीक है।

तकनीकी के नये आविष्कार "The Media", गणना, सम्प्रेषण एवं संज्ञानात्मक विज्ञान की क्रियान्विति से परिणाम प्राप्त होते हैं। शिक्षा के विभिन्न रूपों का नवसंस्करण होता है। इसमें नयी तकनीकी व गुणात्मकता समीप आते हैं|

16.6.3 लक्ष्य को वास्तविकता में परिवर्तित करने हेतु पूर्व आवश्यकताएँ (Prerequisites for translating from vision to reality)

वर्तमान युग तकनीकी का युग है। कुछ संस्थाओं का यह मानना है कि तकनीकी भविष्य में उनकी प्रतिस्पर्द्धा पर प्रभाव डालेगी। जन–मानस का यह सुझाव है कि नयी शिक्षा, तकनीकी पर आधारित है तथा सभी व्यक्तियों के साथ मिलने हेतु तैयार है। लेकिन विकासशील देशों में यह स्थिति सत्य से बहुत परे है। यही तक कि औद्योगिक देशों में भी तकनीकी से शिक्षा का प्रसार सम्भव नहीं हो पाया है। ऐसी कौनसी परिस्थितियॉ है जो इसको प्रभावित कर रही है? इस हेतु सिंगल (1995:10) ने 7 पूर्वाकांक्षाए सुझायी।

1. सर्वव्यापी प्रणाली (Universal System) : प्रत्येक घर में कम्प्यूटर ब्राड बेण्ड से जुड़ा होना आवश्यक है।

2. जीवन पर्यन्त अधिगम (Life Long Learning): तकनीकी ने अधिगम एवं कार्य को एक बिन्दु पर मिला दिया। इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति जीवन पर्यन्त सीखने हेतु तैयार रहे।

3. अधिगम केन्द्रित चिन्तन (Learner Centered Thinking) : मिंग (1995:13) ने प्रचलित शिक्षण अधिगम प्रतिमान पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वर्तमान में अध्यापक से कठिन परिश्रम की आशा की जाती है जबकि विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते हैं वे इस परिस्थिति को उलट देना चाहते हैं।

जोनस्टोन (1995) ने इसी से सम्बन्धित विचार व्यक्त करते हुए एक नया शब्द दिया "अधिगम उत्पादकता" जिसका अधिप्राय है विद्यार्थी अधिगम के लिए स्वयं जिम्मेदारी लें, अपना ध्यान उद्देश्यों पर केन्द्रित करें, स्वयं समय सारणी बनाएं तथा अध्यापकों की भूमिका मात्र मध्यस्थ की तरह हो।

4. पुन: अभियान्त्रिकी वितरण प्रणाली (Re–engineered delivery system) : विश्वविद्यालयी शिक्षा को अधिगम–केन्द्रित बनाना एक बड़ी चुनौती है क्योंकि संकाय सदस्य तकनीकी को प्रचलित प्रणाली का पूरक मानते है अत: उसके लिए अतिरिक्त लागत लगती है। मिंगल के अनुसार अवबोध पुन: अभियांत्रिकी शिक्षा के प्रतिपादन हेतु नयी प्रकार की संस्थाओं की आवश्यकता पड़ेगी।

5. बौद्धिक सम्पदा (Intellectul assets) : अधिगमक केन्द्रित प्रणाली के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता अच्छी बुद्धि की होती है जिससे छात्र सीखें।

6. प्रतिफल प्राप्ति (Productivity gains) :विलियम्स (1996–V) के अनुसार शिक्षण अधिगम परिस्थितियों को पुन: संगठित कर, प्रबन्धन में सुधार कर तथा कॉलेज व विश्वविद्यालयों के मिलने की बहुत आवश्यकता है ताकि भविष्य में आने वाले दबावों से निपटा जा सके।

7. कोष नियमन एवं मूल्यांकन (Funding, Regulation and Accrediation) : हाल ही के वर्षो में सरकार का यह प्रयास रहा है कि वह विश्वविद्यालयी कार्यों पर नियन्त्रण रखे

लेकिन तकनीक आधारित डिलिवरी प्रणाली से इस नीति के क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न होगी। सरकार द्वारा नवीन नीति निर्धारण से विश्वविद्यालयों के समक्ष कोश एवं नियमन से सम्बन्धित समस्या उत्पन्न हो जाएगी।

तकनीकी आधारित शिक्षण द्वारा नयी शैक्षिक प्रणाली का सृजन होगा जो भौगोलिक एवं अधिकारिक बाधाओं को पार कर शैक्षिक एवं वास्तविक जगत में समन्वय कर सकेगा। इससे विद्यार्थियों को विस्तृत एवं सुविधाजनक चयन में आसानी होगी।

16.6.4 सारांश : उच्च शिक्षा में अवसर एवं चुनौतियॉ (Summary: Challenges and Opportunities for higher Education)

संक्षेप में वर्तमान में केम्पस विश्वविद्यालय के समक्ष कई चुनौतियाँ एवं अवसर आते हैं –

1. अधिकांश व्यक्ति जो भविष्य में विश्वविद्यालयी शिक्षा की आकांक्षा रखते हैं उनके लिए उच्च शिक्षा की लागत बहुत अधिक है।
2. यदि आर्थिक संसाधन उपलब्ध हो जाए तब भी प्रशिक्षित अकादमिक स्टाफ के अभाव में यह सम्भव नहीं हो पाएगा।
3. व्यक्ति जीवन पर्यन्त सीखने वाले होने चाहिए।
4. ऐसे विद्यार्थी जो कार्य एवं अध्ययन एक साथ करना चाहते हैं वे उपाधि प्राप्त करने का लचीला अवसर तलाशते हैं जिसका प्रभाव उच्च शिक्षा पर पड़ता है।
5. विश्व जनसंख्या में बड़े शहरोंमें रहने वाली जनंसख्या का अनुपात बढ़ रहा है जहाँ यात्रा अपेक्षाकृत धीमी तथा टेलीफोनिक वार्तालाप तीव्र गति से सम्भव हो सकता है।
6. व्यक्ति उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को अपनाएगा तथा व्यक्तिगत रूप से शिक्षण एवं प्रशिक्षण की अपेक्षा करेंगे।
7. उच्च शिक्षा का सार तत्व व्यक्तियों को अधिगम समुदाय से जोड़ना है।

चुनौतियों एवं अवसरों में सम्बन्ध बहुत आसान है लेकिन प्रश्न यह उठता है कि परिवर्तन के समक्ष कौनसी बधाएं उपस्थित हो रही हैं तथा क्या अवसर मिल रहे हैं?

स्व–मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)

1. तकनीकी किस प्रकार विश्वविद्यालय के लिए प्रतिस्पर्द्धा के विचार में सहायता करती है?

16.7 ज्ञान युग का जन्म : शैक्षिक सिद्धान्त एवं व्यवहार में परिवर्तन (Birth of knowledge era–changes in educational theory and practices)

चुनौतियों का सामना करने के सम्बन्ध में हमारी कक्षा–कक्ष व्यवस्था बहुत अपर्याप्त है इसलिए सार्व भोमिक शिक्षा, सतत तथा शैक्षिक अवसरो की समानता का समप्रत्य सर्वत्र सुनाई देता है

प्रारम्भ में शिक्षा बच्चों एवं वयस्कों को साक्षर बनाने के उद्देश्य से दी जाती थी लेकिन अब वैज्ञानिक आविष्कार व्यक्तियों को इस बिन्दु के लिए जागरूक कर रहे हैं कि वे अपनी शिक्षा एवं प्रशिक्षण विद्यालय एवं विश्वविद्यालय के बाद भी जारी रखें। अग्रिम प्रशिक्षण, सेवारत प्रशिक्षण, सतत शिक्षा एवं कई अन्य समान प्रत्यय का उद्भव हो रहा है। हॉल (Houle 1961) ने बताया कि वयस्क स्व–निर्देशित अधिगमक होते हैं। ज्ञान में इतनी तीव्रता से होने वाले परिवर्तन के अनुरूप शिक्षा के सभी स्तरों में भी परिवर्तन आवश्यक है।

केट et al, (1973) ने सुझाव दिया कि शिक्षा औद्योगीकरण का मुख्य बिन्दु है। उपर्युक्त वर्णित क्षेत्रों में प्रतिमान स्थानान्तरण निम्न प्रकार से हुआ।

1. बाल्यावस्था एवं वयस्क अवस्था से जीवन पर्यन्त शिक्षा।
2. अध्यापक केन्द्रित शिक्षा के स्थान पर छात्र केन्द्रित शिक्षा।
3. शास्त्रीय पाठ्यचर्या से विचित्र (Romantic) पाठ्यचर्या से कार्यक्रम।
4. ज्ञान का परिवर्तनीय स्तर (The Changing Status of Knowledge)
5. स्मृति अधिगम से अनुभव आधारित व प्रतिच्छाया अधिगम (from rote learning to learning as experiemental and Reflection)
6. आमने–सामने से दूर तक (From face to face to distance)
7. कुछ से बहुत तक (From few to the many)
8. स्वतंत्र विचारों से व्यवसाय पर बल (From emphasis on the libral to the vocational)
9. सैद्धान्तिक से प्रायोगिक (From theoretical to practical)
10. समन्वित शान हेतु एक विषयी से अन्तर्विषयी, अन्तर्विषयी से ज्ञान का समन्वय (From Single discipline to multidisciplinary to integrated knowledge).
11. कल्याण की आवश्यकता से बाजार की माँग तक (From welfare needs to market demands)
12. शिक्षा एवं प्रशिक्षण से अधिगम की ओर (From Education and Training to learning)

स्व–मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. नवीन अधिगम आयु में शिक्षा के सैद्धान्तिक एवं प्रयोगिक कार्य में होने वाले किन्ही 5 परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए|
2. ज्ञान युग में शिक्षा की डिलिवरी में आने वाली बाधाओं की संक्षेप में व्याख्या कीजिये |

16.8 निष्कर्ष (Conclusion)

व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, अधिगम सामग्री की पहुंच विश्वव्यापी हो गयी है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के सीखने की गति तथा उपलब्ध समय के अनुसार स्वयं के परिवेश के अनुरूप सीख सकता है। यह अधिगम आयु का प्रारम्भ है।

पूरे विश्व में विशेषतया औद्योगिक समाजों में अमूल्य प्रशिक्षित होते हैं और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था (Free Market Economy) के कारण अधिकांश देश यह महसूस करते हैं कि उच्च शिक्षा, सामान्य दर पर उपलब्ध होनी चाहिए जिससे सर्व साधारण भी ऐसी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण दाता अधिगम हेतु एक नवीन रास्ता तलाश करें। शिक्षाविदों को इस प्रकार की योजना बनानी चाहिए जिससे सामुदायिक व्यवस्था (Community Setting) एवं कार्य स्थल पर अधिगम में समन्वय किया जा सके।

उपर्युक्त उद्देश्यों व समय की मांग की पूर्ति हेतु दूरस्थ शिक्षा का उद्भव हुआ जिससे बहुत अधिक संख्या में लोगों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था हो सकी।

16.9 सारांश (Summary)

तकनीकी के इस युग में जब प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानप्राप्त करना चाहता है, अधिगम सामग्री की पहुंच विश्वव्यापी हो गयी है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के सीखने की गति तथा उपलब्ध समय के अनुसार स्वयं के परिवेश के अनुरूप सीख सकता है। यह अधिगम आयु का प्रारम्भ है।

पूरे विश्व में विशेषतया औद्योगिक समाजों में प्रशिक्षित व्यक्ति मूल्यवान होते हैं और खुला बाजार अर्थव्यवस्था; (Free Market Economy) के कारण अधिकांश देश यह महसूस करते हैं कि उच्च शिक्षा, सामान्य दर पर उपलब्ध होनी चाहिए जिससे सर्वसाधारण भी ऐसी शिक्षा प्राप्त कर सके।

इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षण दाता अधिगम हेतु एक नवीन रास्ता तलाश करें । शिक्षाविदों को इस प्रकार की योजना बनानी चाहिए जिससे समुदाय व्यवस्था (Community Setting) एवं कार्य स्थल पर अधिगम में समन्वय किया जा सके।

उपर्युक्त उद्देश्यों व समय की मांग की पूर्ति हेतु दूरस्थ शिक्षा का उद्भव हुआ जिससे बहुत अधिक संख्या में लोगों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था हो सकी।

इकाई–17

शिक्षा और भविष्य का भारतीय समाज

(Education and the future of the Indian Society)

इकाई की रूपरेखा (Outline of the Unit)

17.0 उद्देश्य और लक्ष्य

17.1 भविष्यशास्त्र

17.2 भविष्य के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने का महत्व

17.3 भविष्य चेतना कैसे विकसित करें?

17.4 भविष्य चेतना विकसित करने में शिक्षा की भूमिका

17.5 भविष्य का भारतीय समाज कैसा होगा?

17.6 भविष्य की भारतीय शिक्षा संस्थाएँ कैसी हों?

17.7 भविष्य के भारतीय शिक्षक कैसे हों?

17.8 भविष्य में क्या नए, शैक्षिक परिवर्तन आवश्यक होंगे?

17.9 सारांश

17.10 मूल शब्द और सम्प्रत्यय

17.11 प्रगति का मूल्यांकन

17.12 संदर्भ साहित्य

17.0 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई की समाप्ति पर आप इस योग्य होने चाहिए कि –

- भविष्यशास्त्र के आन्दोलन के प्रवर्तकों के बारे में बता सकें,
- भविष्यशास्त्र की परिभाषा बता सकेंगे।
- भविष्य के विभिन्न प्रकार बता सकेंगे
- शाला के विद्यार्थियों में भविष्य के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने के लिए उपाय बता सकें।
- भविष्य चेतना विकसित करने में शिक्षा की भूमिका बता सकेंगे।
- भविष्य में भारतीय समाज का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत की भावी शिक्षण संस्थाएं, शिक्षक एवं आवश्यक शैक्षिक परिवर्तन बता सकेंगे।

17.1 भविष्यशास्त्र (Futurology)

(I) भविष्यशास्त्र का आन्दोलन –

पिछले बीस वर्षो में अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों में "भविष्यशास्त्र (Futurology) अथवा Futuristics तेजी से विकसित हो रहा है। विकासशील देशों में भी अब इस आन्दोलन के प्रति गहरी दिलचस्पी देखने में आ रही है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि आज सम्पूर्ण विश्व में भविष्यशास्त्र के प्रति बहुत आकर्षण देखने में आ रहा है। लोग भविष्य में क्या–क्या परिवर्तन होंगे उनके बारे में बहुत गंभीरतापूर्वक चिंतन करने लगे हैं।

भविष्यशास्त्र के प्रमुख आराम्भिक विचारकों में हम अमेरिका के एलविन टोफलर (Alvin Toffler) डब्ल्यू.एल. जैगलर (W.L.Zeigler), डी.बैल (F.Bell), बिलि रोजास (Billy Rojas), एच.ब्रूस फेंकलिन (H.Bruce Franklin), आर्थर सी.क्लार्क (Arthur C.Clarks), पोलक फ्रेड (Polak Fred) आदि अनेक महत्वपूर्ण विद्वानों के नामों का उल्लेख कर सकते हैं।

इन सब में एलिन टोफलर सबसे अधिक प्रभावशाली व बहु चर्चित विचारक और लेखक हैं। उनकी निम्न पुस्तकें है जो भविष्य की बात करती है –

(i) Future Shock (1970)

(ii) Learning for Tomarrow (1974)

(iii) The Third Wave (1980)

(iv) Power Shift

आपकी पहली पुस्तक "Future Shock" ने संसार भर के लोगों के मस्तिष्कों को झकझोर दिया है। उन्होंने यह बतलाया है कि भविष्य में ऐसे अप्रत्याशित औद्योगिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन बहु त तेजी से होने जा रहे हैं। जिनसे उन लोगों को जो उनके लिए पहले से मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार नहीं होंगे गम्भीर झटका लगेगा।

टोरस्टेन हयुसेन (Torsten Husen) जो कोडिनेविया के एक प्रमुख शिक्षाविद हैं, ने एक बहु त महत्वपूर्ण प्रतिवेदन "Education in the year 2000" (1971) में तैयार किया था। उनकी गणना भी प्रमुख विदेशी भविष्यशास्त्रियो में होती है।

भारत में **एस.सी.सेठ** (S.C.Seth), **प्रो.जे.एन.कपूर** (J.N.Kapur), **प्रो. लेमकोम आदिशैषैया** (Malcom Adisheshiah) आदि प्रमुख भविष्यशास्त्री हैं।

इन विदेशी तथा भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त आज विभिन्न ज्ञान–विज्ञानों में असंख्य विद्वान भविष्यशास्त्र के आदोलन में सम्मिलित हो रहे हैं।

इस नये क्षेत्र को बैंडल बैल (Wendell Bell) ने इन शब्दों में भली–भांति परिभाषित किया है–

भविष्यशास्त्र की परिभाषा (Definition of the Futurology)

"भविष्यशास्त्र का प्रमुख केन्द बिन्दु न तो केवल मात्र वर्णन करना है और न व्याख्या करना है, और न यह मूलत: भविष्यवाणी करना ही है। यह नव–परिवर्तन और मार्ग दर्शन है। इसके अन्तर्गत मूल्यों और लक्ष्यों की व्याख्या और मूल्याकंन, गतिविधियों का विवरण, विकल्प, भविष्यों के बारे में दृष्टि तथा अर्निभरताओं के वर्तमान क्रमों का विवरण आता है।"

भविष्यशास्त्र एक अन्तर्विषयी अध्ययन क्षेत्र है। यद्यपि इसे समाजशास्त्र का एक उपविषय माना जाता है तथापि इसका संबंध इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, भूगोल, पर्यावरण विज्ञान अन्य सामाजिक व प्राकृतिक विज्ञानों, प्रौद्योगिकी और शिक्षा से भी है। मानव जीवन के भविष्य से संबंधित होने के कारण जीवन के प्रत्येक पहलू में इसकी रूचि होती है।

यहां प्रश्न खड़ा होता है. किस प्रकार की भविष्य में भविष्यशास्त्रियों की रूचि होती है?

(B) **भविष्यों के प्रकार** (Types of Future)

भविष्य तीन प्रकार के हो सकते हैं :–

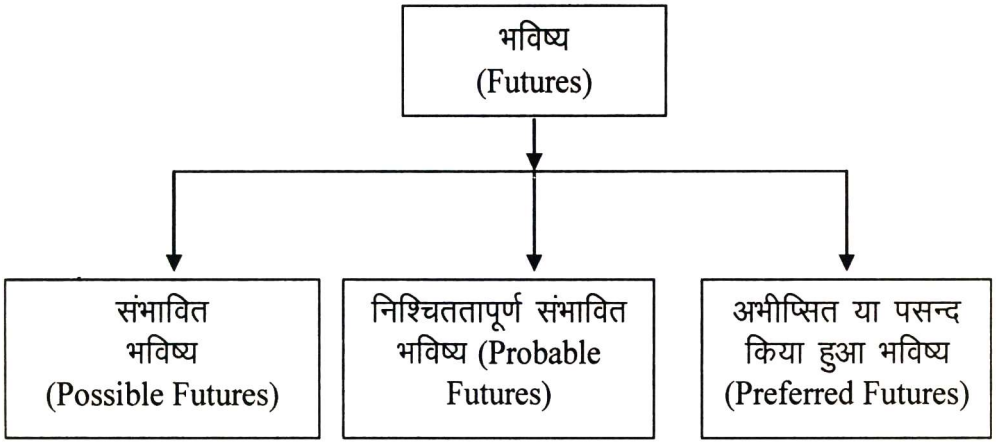

1. संभावित भविष्य : ऐसे भविष्य होते हैं जो घटित हो सकते हैं परन्तु ऐसा होना कोई आवष्यक नहीं है। हमारी बहुत सी कल्पनाएं इस श्रेणी के भविष्यों में आयेगी ।
2. निश्चिततापूर्ण संभावित भविष्य : ये ऐसे भविष्य होते हैं जिनके घटित होने की किन्हीं तर्कपूर्ण आधारों पर बहुत कुछ संभावना की जा सकती है । ऐसे भविष्य बिल्कुल निराधार या बिना सिर–पैर की कल्पनाओं पर आधारित नहीं होते ।
3. पसन्द किये गए भविष्य : ये ऐसे भविष्य होते हैं जिन्हें हम पसन्द करते हैं, जिनको साकार बनाने के लिए हम न केवल बहुत लालायित होते हैं अपितु बहुत कुछ प्रयास भी करने को तैयार होना चाहते हैं।

भविष्यशास्त्र न केवल विषय–वस्तु पर बल देता है बल्कि उससे भी अधिक भविष्य के प्रति झुकाव, रूझान या दृष्टिकोण रखने व भविष्य के प्रति चेतनता या सजगता विकसित करने पर बल देता है । भविष्यशास्त्र पसन्द किये हुए "भविष्यों (Preferred future) में अधिक दिलचस्पी रखता है ।

बिलि रोजार्स का यह कथन पूर्णत: सत्य और हम सबके लिये विचारणीय है –

"भविष्य स्वत: ही घटित नहीं हो जाता, हम इसे बनाते हैं और हम इसका उपयोग कर सकते हैं । यह अनुभूति कि हम भविष्य को पहले से ही देख सकते हैं तथा हम आने वाले कल के मूल्यों, परिवार की संरचनाओं, प्रौद्योगिकियों, नगर या पाठशाला के स्वरूपों की सार्थक पूर्व कल्पना कर सकते हैं, का अर्थ यही है कि भविष्य एक सीखने की सामग्री (Lrarning Resourse) है ।"

वास्तव में हम सबको अब यह महसूस करने की बड़ी जबरदस्त जरूरत है कि हम यह सोचना आरम्भ करें कि भविष्य में क्या–क्या विकल्प (Alternatives) हो सकते हैं, उनमें से कौन से हमें चुनने हैं तथा कैसे भविष्य के अप्रत्याशित झटके (Future Shock) से हमें अपनी आगामी पीढ़ियों और समाज को बचाना है ।

स्व– मूल्यांकन प्रश्न 1

1. बतलाइये इनमें से कौन कौन से कथन आपके विचारानुसार भारत की अभीप्सित भविष्य (Preferred Future) को इंगित करने वाले है ।

(1). भारत कृषि प्रधान देश नहीं रह पायेगा, यह तो प्राय: औद्योगिक समाज ही बनकर रहेगा।.....

(2). भारत में युवक–युवतियों को डेनमार्क और स्केडिनेविया जैसे देशों की भांति पूर्ण यौन सम्बन्धों में स्वतंत्रता होगी ।.....

(3). भविष्य के भारत में परम्परागत मूल्यों तथा नये मूल्यों का एक सही मेल देखने में आयेगा ।.....

(4). भविष्य के भारत में सती प्रथा, कन्यावध, स्त्रियों के प्रति दमनकारी भावना का नामोनिशान तक नहीं होगा । .....

(5). भविष्य के भारत में वह सब कुछ नहीं होगा जो आज की कुत्सित राजनीति में हो रहा है–भ्रष्टाचार, वोटों का खरीदना, जातिवाद व धर्म के आधार पर चुनाव जीतना, मानव मूल्यों की हत्या आदि ।.....

2. भविष्यशास्त्र का मूलभूत झुकाव किस ओर हैं?

17.2 भविष्य के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने का महत्व (Signification of development of sensitivity towards future)

टौफलर ने अपनी पुस्तक "Future Shock" में बहुत विस्तार तथा संतोषजनक ढंग से बतलाया है कि मानव जाति के लिए भविष्य के प्रति संवेदनशील (Sensitive) होना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। यह संसार की एक अत्यन्त बहुचर्चित और भविष्य की गंभीर समस्याओं पर चिन्तन प्रेरित करने वाली अद्वितीय पुस्तक है ।

टौफलर भविष्य के प्रति संवेदनशीलता या सजगता को विकसित करने के पीछे निम्नांकित ठोस तथ्य प्रस्तुत करते हैं –

1. आजकल के सामाजिक परिवर्तन अथवा समकालीन सामाजिक परिवर्तन (Contemporary Social Changes) विश्व के पिछले 200–250 वर्षा, विषेशकर हाल के 50–60 वर्षो में (इसी पीढ़ी के जीवन काल में) बहुत तेजी से होने वाले वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी आविष्कारों व खोजों के फलस्वरूप हो रहे हैं । प्रतिदिन ऐसे आविष्कारों की संख्या दिल को दहला देने वाली तेजी से बढ़ती चली जा रही है जिनसे मानव जीवन के सभी पहलुओं पर गम्भीर प्रभाव पड़ रहे हैं ।
2. आज मनुष्य के सामने मनुष्य ही सीखने के प्रारूप या माडल (Models for Learning) नहीं रहे, बल्कि नित, नयी बने वाली जटिल मशीनें सीखने के मॉडल बनती जा रही हैं ।
3. विज्ञान और प्रौद्योगिकी की खोजें यद्यपि अत्यधिक औद्योगिक (Super Industrial) समाजों में अधिक हो रही हैं, तथापि उनका प्रचलन या उपभोग और उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक प्रभाव सारी दुनिया में देखने में आ रहे हैं। संसार का कोई भी कोना, कोई भी समाज उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता ।

4. अत्यंत दुत गति से होने वाले वैज्ञानिक, यांत्रिक व सामाजिक परिवर्तनों के कारण आज मानव जीवन में अस्थायित्व अथवा निरर्थकता (Transience), पृथकत्व अथवा विलगाव (Alienation) तथा उपभोग करों और फेंक दो' (Throw Away) मनोवृति विकसित हो रही है । कोई भी संबंध, वस्तु या व्यक्ति इस तीव्र गति से चलने वाले वर्तमान में (जो कि भविष्य को बना रहा है आज हमारे लिये स्थायी लगाव की वस्तु नहीं रह गया है । भविष्य में इन प्रवृतियों की गंभीरता और भी भयंकर रूप से बढ़ेगी ।
5. भविष्य की अजीब–अजीब प्रकार की संस्थाओं, समूहों, उप–समूहों, आचरणों के रूप में देखेने में आयेंगे। आज का वर्तमान भविष्य का गंभीर रूप से पूर्वानुमान कर रहा है । विवाह, परिवार, शिक्षा, व्यवसाय, नैतिकता, राजनीति, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में हमें अनजाने में मनचाहे गम्भीर धक्के या झटके लगेंगे ही यदि हमने अभी से उनके लिए स्वयं को तैयार नहीं किया । भारत में हम अभी तक वर्तमान युग की समस्याओं गरीबी, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक धांधलियों, निरक्षरता आदि को भी नहीं हल कर पाये । आगे क्या और कैसे करेंगे? यह तो अभी तक हमने गम्भीरतापूर्वक सोचा नहीं हैं ।
6. न केवल नयी वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी खोजें हमारे जीवन को बहुत दुतगति तथा मनोवैज्ञानिक रूप से असुरक्षित बना देंगी, बल्कि नयी–नयी सामाजिक खोजें और अजीब–अजीब सामाजिक समस्याएँ हमारे जीवन में गम्भीर विघटन उत्पन्न कर देंगी । अभी से ही परखनली में शिशुओं के जन्म किराये पर लिए हुए गर्भाशय में भ्रूण का विकास व शिशु का जन्म, महान् प्रतिभावान् लोगों के वीर्य के बैंक स्थापन तथा उनसे उत्तम नस्ल उत्पन्न करने, कम्प्यूटर व पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञापनों की सहायता से कुछ वर्षो के लिए बच्चे गोद लेने, समलिंगीय विवाहों आदि की चर्चायें जोर पकड़ने लगी हैं, तो भविष्य में क्या–क्या हो सकता है और उनके क्या–क्या अच्छे व बुरे परिणाम निकल सकते हैं, यह अभी से सोचना जरूरी है ।
7. भविष्य में मानव मूल्यों में भयंकर विविधताये और टकराहटें आकर रहेंगी।भविष्य के मानवों की जीवन शैली आज जैसी न हो कर बहुत विविधता, जटिलता तथा गम्भीरता होगी ।
8. **टौफलर** अपनी तीसरी पुस्तक "TheThird Wave" में यह गम्भीर संभावना बताता है कि भविष्य में घर' "इलेक्ट्रोनिक कॉटेज" (Electronic cottages) होंगे और अधिकांश लोग दफ्तरों या काम के स्थानों पर जाने के स्थान पर घरों पर ही रह कर, विद्युत यंत्रों द्वारा अपने दफ्तरों, अन्य कार्यालयों, केन्द्रों, पुस्तकालयों, संस्थाओं, व्यक्तियों से सम्पर्क बनाते हुए, अपनी जीवन साथियों के साथ मिलकर अपना काम करते होंगे ।
9. तीव्र परिवर्तन तथा असंख्य प्रकार के दुतगति वाले उपकरणों से परिपूर्ण भविष्य में टौफलर के अनुसार मानव की पसन्दों में जबरदस्त परिवर्तन आकर रहेगा । उदाहरणार्थ भविष्य का पति ऐसी पत्नी चाहेगा जो न केवल सुन्दर हो अपितु जो मानसिक रूप से बहुत सजग, बहुत शिक्षित, बहुत परिश्रमी, कम्प्यूटर चलाने में जादुई दक्षता रखने वाली ऊंगलियों वाली व अन्यान्य गुणों से युक्त हो । हो सकता है, भविष्य का पति यह प्रेम गीत गाये

"I love your eyes, your cherry lips, the love that always lingers, your ways with words and random blips, skilled computer figures"

स्पष्ट है, इस प्रकार की असंख्य विचित्रताओं, संभावनाओं, जटिलताओं और गम्भीरताओं से भरे अनजान भविष्य में यदि हम अपना व अपनी भावी संतति का मानसिक व सांस्कृतिक संतुलन नहीं खोने देना चाहते तो हमें अभी से गम्भीरतापूर्वक सोचना होगा कि हम कैसा भविष्य चाहते हैं, उसे साकार करने के लिए हम अभी से क्या–क्या कार्य और परिवर्तन करें, जिससे हम भविष्य की भयंकर स्पर्द्धाओं और असुरक्षाओं के युग में संतुलन के साथ जी सकें ।

निष्कर्ष यही निकलता है कि हमें सभी लोगों में, विशेषकर नई पीढ़ी में अविलम्ब भविष्य चेतना (Future Consciousness) जाग्रत करनी ही होगी।

17.3 भविष्य चेतना कैसे विकसित करे' (How to Develop Future conscieousness?)

आप इस बात से सहमत होंगे कि दो–चार अत्यंत बुद्धिमान लोग ही एक मानव समाज की समस्याओं के हम के लिए सारे सुझाव दे दें तो उससे कुछ नहीं बनता । कुछ सुझावों, कुछ तथ्यों या आकड़ों या विषय सामग्री से समस्याओं के हल नहीं होते, उनके हल होते हैं समस्याओं के प्रति सही प्रकार की जागृति चेतना या झुकाव उत्पन्न करने से। भविष्य पर अधिकार प्राप्त करने के बारे में भी यही बात लागू होती है।

भविष्य चेतना जागृत करने के लिए सामान्यतया दो विधियाँ अपनाई जाती हैं :–

1. **काल्पनिक चित्र लेखन विधि** (Scenerio Writing Technique) 'सीनेरियों' शब्द का अर्थ होता है घटनाओं का प्रकल्पित क्रम, या भविष्य का एक काल्पनिक इतिहास। अपने या किसी भी समाज, व्यक्ति या संस्था के जीवन के बारे में भविष्य में क्या घटनाओं के घटित होने के तर्कपूर्ण या आधारपूर्ण संभावनाएं हो सकती हैं उनको व्यवस्थित कम से उसी प्रकार से लिखा जाये जैसे भूतकाल की घटनाओं को इतिहासकार लिखता है। स्पष्ट ही है, ऐसा करना तभी सम्भव है जब कि भविष्य की घटनाओं का पूर्व लेखक क्रियात्मक तथा सर्वागीण ढंग से सोचे कि भविष्य में क्या–क्या हो सकता है, क्या–क्या होने की बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं तथा क्या–क्या घटित होना वह पसन्द करेगा। ऐसा प्रयास निःसन्देह उस व्यक्ति में भविष्य के प्रति जागरूकता व चेतना विकसित करेगा।
2. डेल्फी विधि (Delfi–Technique) इसमें किसी माध्यम (अन्य व्यक्ति) की सहायता से विशेषज्ञों की सम्मतियाँ एकत्र की जाती हैं। उन सम्मतियों को गुमनाम ढंग से पुन: विशेषज्ञों में वितरित किया जाता है। लगातार कई बैठकों में उन सम्मतियों पर विचार–विमर्श (बिना किसी सम्मतिदाता का नाम बताये) किया जाता है और अन्त में, इस प्रकार से समूह की सहमति विकसित की जाती है जिसे भविष्य की गम्भीर सम्भावना माना जाता है । इस विधि से भी भविष्य चेतना का विकास किया जाता है ।

इनके अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं में शिक्षक विविध प्रकारों से विद्यार्थियों में भविष्य के प्रति चेतना या जागृति विकसित कर सकते हैं ।

17.4 भविष्य चेतना उत्पन्न करने में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in Development of Future Consciousness)

भविष्य के प्रति सही प्रकार की चेतना अथवा रूझान उत्पन्न करने में शिक्षा संस्थाओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए ।

यह इसलिये आवश्यक है कि

1. अधिकांश परिवारों में (विशेषकर भारत जैसे अधिकतर अशिक्षित व विकासशील देश में) माता–पिता को न तो इतना खाली समय ही होता है और न उनमें इतनी शिक्षा, ज्ञान और भविष्य के प्रति जिज्ञासा और चेतना ही होती है कि वे अपनी संतानों में भविष्य चेतना को प्रोत्साहित कर सकें । यदि उनमें से कुछ करते भी हैं (जैसा कि कुछ मध्यम वर्ग के माता–पिता करते हैं) तो वे अपने बालकों में भविष्य के प्रति भय, हीन–भावना तथा अस्त–व्यस्त व अस्वस्थ प्रकार के भाव उत्पन्न कर देते है।
2. समाज की अन्य संस्थाएं तथा अन्य कार्य स्थल, व्यापारिक व औद्योगिक केन्द्र अति आधुनिक बनने का प्रयास भले ही करते हों परन्तु उनमें न तो यह ईच्छा ही पायी जाती है और न यह क्षमता ही होती है कि वे जनता में भविष्य के प्रति सही चेतना उत्पन्न कर सकें।

   शिक्षा संस्थाओं का काम ही यह है कि वे विद्यार्थियों में सही प्रकार का ज्ञान, सही प्रकार के मूल्य, सही प्रकार की कुशलताऐ सही सम्मान तथा सही प्रकार का चिन्तन उत्पन्न करें । शिक्षा संस्थाएँ विद्यार्थियों का सामाजीकरण, शिक्षण, व्यक्तित्व निर्माण, चरित्र निर्माण, तथा परिवर्तन व परिमार्जन करती है अत: उन्हें भी भविष्य चेतना जागृत करने का उत्तरदायित्व निभाना उचित ही नहीं अपितु आवश्यक भी है । ऐसा कार्य वे निम्नांकित प्रकारों से कर सकती हैं –

   1.प्रत्यक्ष शिक्षण (Direct Teaching) द्वारा भी शिक्षक व प्रवक्ता अपनी कक्षाओं में विद्यार्थियों को भविष्य की विविध प्रकार की सम्भावनाओं के बारे में, तथा विश्व के अति–आधुनिक समाजों में हो रहे दुतगामी तथा विचित्रतापूर्ण परिवर्तनों व उनके सामाजिक परिणामों के बारे में ठोस जानकारी, ऑकड़े, चित्र प्रस्तुतीकरण तथा उस पर अपने मत दे सकते हैं ।

   2.भविष्य सम्बन्धी खेल (Future Related Game) द्वारा विविध प्रकार की काल्पनिक परिस्थितियों के विकल्पों को सोचने जैसे, घटनाओं की संभावनाओं सम्बन्धी चिन्तन के अभ्यासों तथा मौनोपोली (Monopoly), सॉप–सीढ़ी, चाइनीज चैकर, व्यापार जैसे खेलों द्वारा विद्यार्थियों में भविष्य चेतना का प्रचुर मात्रा में प्रभावषाली ढंग से विकास किया जा सकता है । बिलि रोजार्स जैसे भविश्यशास्त्री के द्वारा सुझाये गए भविश्य सम्बन्धी खेल इस प्रकार के हो सकते है ।

भविष्य चेतना विकास हेतु कुछ खेल (Few Games for Development of Future Consciousness)

1. सन् 2020 में प्रकाशित होने वाली आपकी पाठशाला की वार्षिक पत्रिका कैसी होगी?

   (1). उसका कवर पृष्ठ कैसा होगा?

(2). उसका क्या शीर्षक होगा?

(3). उसमें कैसे–कैसे लेख, कविता आदि होंगे?

(4). उसका कौन सम्पादन करेगा?

(5). उसकी क्या–क्या अन्य विशेषताएँ होंगी जो आजकल की शाला पत्रिका से भिन्न होंगी ।

2. सन् 2000 में अंतरिक्ष में क्या–क्या हो सकता है

   1.अपराध

   2.निर्माणकार्य

   3.अन्य परिवर्तन

3. सन् 2020 में भारत में सबसे अधिक बिकने वाली दस पुस्तकों के नाम क्या होंगे?
4. सन् 2010 में एक भारतीय का पारिवारिक जीवन कैसा होगा? तब हमारे समाज में एक गर्भवती कुँवारी कन्या के साथ उसके माता–पिता, भाई व अन्य रिश्तेदार कैसा व्यवहार करेंगे? कल्पना करके बतायें ।
5. निम्नांकित वषो में आपके जीवन में क्या–क्या महत्वपूर्ण घटनायें होंगी – 2010, 2025, 2050
6. शिक्षक विज्ञान की एक काल्पनिक कहानी (Science–fiction) का पहला अनुच्छेद (पेरेग्राफ) श्यामपट्ट पर लिखें। कक्षा के सभी विद्यार्थियों से कहें कि वे अपनी–अपनी कल्पना के आधार पर उसके आगे एक या दो अनुच्छेद लिख कर उस कहानी को पूरा करें ।
7. भविष्य को 10 वर्षो में खत्म हो जाने वाले व्यवसायों (रोजगार) के नाम लिखें ।
8. सन् 2020 में भारतीय समाज की पाँच प्रमुख सामाजिक कुरीतियाँ क्या होंगी? उनको दूर करने के लिए कैसे–कैसे सामाजिक कानून बनाने पड़ सकते हैं?
9. सन् 2021 में भारतीय राजनैतिक व्यवस्था की क्या–क्या नयी विशेषताएँ होंगी?
10. अगले दस वर्षो में ऐसी क्या नयी खोजें / आविष्कार हो सकते हैं (किन्ही पाँच की कल्पना करे) जिनसे हमारी शिक्षा प्रणाली बहुत कुछ बदल सकती है ।

3. भविष्य से संबंधित पाठ्येत्तर क्रियाओं का आयोजन (Organization Co–curricular Activities Related to Future) पाठशालाओं, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में "फ्यूचर कौंसिल","फ्यूचर क्लब", "फ्यूचरोलोजी ऐसासियेशन" आदि संगठित किये जा सकते हैं जिनमें निरन्तर भविष्य संबंधी किसी विषय पर भाषण, चर्चा, गोष्ठी' सेमीनार, फिल्म–शो, स्लाइड–शो, नाटक, ड्रामा, रोल–प्ले आदि आयोजित किये जा सकते हैं । भविष्य के प्रति जागृत करने के लिए चित्रों व कार्टूनों की प्रदर्शनियॉ लगायी जा सकती हैं । जनसाधारण को भी इन क्रिया–कलापों के माध्यम से भविष्य चेतना के विकास में लाभान्वित किया जा सकता है ।

4. पाठ्यक्रमों में भविष्योन्मुखता विकसित करना (Future orientation of Curriculum) अब यह नितांत आवश्यक हो गया है कि पाठशालाओं और उच्च शिक्षा संस्थाओं के सभी प्रकार के पाठ्यकमों में चाहे वे प्राकृतिक विज्ञानों के पाठ्यकम हों या सामाजिक विज्ञानों के, अविलम्ब आधुनीकीकरण किया जाये ताकि उनके भविष्य की

समस्याओं के प्रति सजगता परिलक्षित हो । घिसे–पिटे, संकुचित व गले–सड़े पाठ्यकमों से कैसे हम लोग नई पीढ़ियों का भविष्य बना सकते हैं? यह प्रश्न सभी शिक्षकों को अपने से और आप को भी स्वयं से पूछना होगा ।

स्वमूल्यांकन – 2

अब तक आप क्या समझे? आप इसका स्वंय मूल्यांकन निम्नांकित अभ्यास प्रश्नो दवारा कर लीजिये

1. कक्षा आठ के बालकों के लिए दो भविष्य चेतना प्रेरक खेल बनाइये ।
   (1)
   (2)
2. भविष्य के प्रति चेतना को विकसित करने के लिए तीन सबसे महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत कीजिये
   (1)
   (2)
   (3)

17.5 भविष्य का भारतीय समाज (Fururiatic Indian Society)

आपको यह याद रखना चाहिये कि यद्यपि भविष्य में कई घटनाएँ अप्रत्याशित या अचानक हो सकती हैं, तथापि यह मानना ही तर्क संगत होगा कि हमारा भविष्य बहुत–कुछ वैसा ही होगा जैसा कि हमारे आज के वर्तमान में हो रहा है और जो सम्मिलित प्रभाव के रूप में हमारे सामने आयेगा ।

यदि आपसे ही पूछा जाये कि बतलाइये कि आज के समकालीन भारत की मूलभूत वास्तविकताएँ क्या हैं? तो क्या आप गरीबी, बेकारी, भ्रष्टाचार, मानव मूल्यों का घोर पतन, ढोगीपन वर्ग–भेदों का बढ़ना, धन लिप्सा की घेर अभिवृद्धि, थोथी नारेबाजी, सामाजिक जीवन में बढ़ती हुई अलगाव की भावना, सांस्कृतिक जीवन में भयंकर संकट, राजनैतिक जीवन में आदर्शो की मजाक, और बढ़ती हुई हिंसा, आतंकवाद, यौन–अनाचार और स्वार्थीपन की प्रवृतियों का उल्लेख किये बिना रह सकते हैं?

कई समाजशास्त्रियों तथा अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों ने भी वर्तमान भारत की इन्हीं परिवर्तन सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख अपनी शोधों तथा अवलोकनों के आधार पर किया है । उदाहरणार्थ, **एम.एन. श्रीनिवास** (N.M.Srinivas) ने भारतीय मध्यम वर्ग में देश के प्रति बढ़ती हुई अनास्था (Loss of faith), अतार्किकता तथा उग्रवादी झगड़ालू प्रवृतियों का उल्लेख किया है। **एस.सी.दूबे** (S.C.Dube) ने भारतीय जनता की महत्वाकांक्षाओं और देश की वास्तविक उपलब्धियों में गम्भीर खाई के अस्तित्व, समाज में विविध प्रकार की प्रौद्योगिक व शैक्षिक प्रगतियों के बावजूद बढ़ती हुई संकुचित मनोवृति, भ्रष्टाचार, जड़ता तथा शक्ति सम्पन्नों द्वारा जनसाधारण के शोषण का चित्रण किया है । **रजनी कोठारी** जैसे राजनीति शास्त्रियों ने भारतीय राजनैतिक जीवन में तेजी से बढ़ते हुए आदर्शो भीड़तंत्र, अनुशासनहीनता, हिंसा व भ्रष्टाचार आदि को इंगित किया है । विज्ञान, शिक्षा व प्रद्योगिकी में अनेकानेक महान् सफलताओं को पाने पर

भी हमारा समाज आज परम्परा और आधुनिकता, तर्क और अंधविश्वास, धर्म निरपेक्षता और धर्मान्धता, समृद्धि और बेकारी, उच्च आदर्शो और कुत्सित व्यवहार प्रणालियों व भ्रष्टाचार के विरोधाभासों में उलझा हुआ है

ऐसे भारतीय समाज का भविष्य 10– 15 या 20 वर्षो में अचानक नहीं बदल सकता । ये गम्भीर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ और अधिक उग्र होकर हमारे भविष्य को हमारे वर्तमान से कहीं अधिक दु:खपूर्ण, विकट और असहनीय बना सकती हैं। विदेशों की भविष्य की खोजों, उनके अच्छे और बुरे सामाजिक भावों (विशेषकर बुरे प्रभावों) तथा भविष्य की अप्रत्याशित घटनाओं जैसे युद्धों, प्राकृतिक विपदाओं आदि से भारतीय समाज के भविष्य का स्वरूप और भी जटिल, विषम और कष्टप्रद हो सकता है। समाज वैज्ञानिकों का चिन्तन तो यही संकेत दे रहा है। दूसरी ओर ऐसे अनेक विचारक भी हैं जो भारत में राम राज्य के शीघ्र लौट आने, दूध–घी की नदियाँ पुन: बहने तथा भारत द्वारा विश्व को नैतिक, आध्यात्मिकता, शांति, विश्व–बंधुत्व के पाठ पढ़ाने वाले धर्म गुरू बनने की आशाएँ कर रहे हैं । कुछ वैज्ञानिक यह सोचते हैं कि भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी की विदेशों जैसे जबरदस्त प्रगति होगी और हम गरीबी, बेकारी, सांस्कृतिक पिछड़ाव आदि समस्याओं का 8– 10 वर्षो में ही सदैव के लिए हल लेंगे। **आदिशेषैया** जैसे अर्थशास्त्री व भविश्यशास्त्री इसके विपरीत यह अनुमान लगा रहे हैं कि 21वीं शताब्दी के भारत में भी मूलरूप से कृषि–प्रधान अर्थतंत्र ही होगा और जनसंख्या का भयंकर विस्फोट हमारे समाज को बहुत परेशानी की आर्थिक परिस्थितियों में झोंक देगा। बढ़ती हुई मंहगाई, कालाधन वर्ग–भेद, शोषण सम्भवत: निकट भविष्य में तो समाप्त नहीं हो पायेंगे।

इतनी सारी सम्भावनाऐ हैं हमारे समाज के भावी स्वरूप के बारे में। अत: हमें कैसा भविष्य चुनना है अथवा बनाना है, उसके बारे में अब गम्भीरता से समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सोचना आवश्यक है और उसके लिए उपयुक्त तैयारी शुरू करनी है।

न केवल राजनीतिज्ञों, आयोजकों व प्रशासकों का इस दिशा में गम्भीर रूप से सोचना आवश्यक है अपितु सभी स्तरों की शिक्षा से सम्बद्ध सभी कार्यकर्ताओं को अब इस दिशा में तुरन्त सोचना व कार्य करना आवश्यक हो गया है। वर्तमान शताब्दी के जो थोड़े से वर्ष अब बचे हैं उनका एक–एक दिन, एक–एक पल इस प्रकार के चिन्तन व तैयारी में व्यय किया जाना चाहिए, उनको बर्बाद होने देना भावी भारतीय समाज के प्रति किया गया गम्भीर अपराध ही माना जायेगा।

17.6 भविष्य की भारतीय शिक्षण संस्थाऐ (Indian Educational Institution in Future)

उपर्युक्त विश्लेषण के संदर्भ में हमें यह देखना होगा कि हमारी भविष्य की शिक्षा कैसी हो? हमारी शिक्षा संस्थाएँ कैसी हो? हमारे शिक्षक कैसे हों और क्या अन्य व्यवस्थाएँ व तैयारियाँ करें ।

भविष्य के भारत की शिक्षा को सुधारवादी, नव निर्माणकारी, आधुनिक, गतिशील तथा उच्च स्तरीय, कुशलताओं को विकसित करने वाली शिक्षा बनाना पड़ेगा । आज की शिक्षा नारेबाजी की शिक्षा है जो थोथे आदर्श, नारों रूपी अफीम के नशे में जनता को गुमराह रखती है, जो जन साधारण को शोषणकर्ताओं का भौतिक, मानसिक और सांस्कृतिक तीनों रूपों से दास बनाए हुए हैं।

जब तक शिक्षा का यह वर्तमान प्रारूप (मॉडल) जिसे "बैंकिंग मॉडल ऑफ एजुकेशन (Banking Model of Education) कहा गया है, नहीं बदला जाता है और उसके स्थान पर आत्मा को झकझोर देने वाली तथा अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाली शिक्षा का तथा आत्मा को सशक्त बनाने वाला शिक्षा का मॉडल (Conscientization Model of Education), जिसे मैक्सिको के सुप्रसिद्ध देशभक्त व शिक्षाशास्त्री पावलो फेरे (Paole Friere) ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक (Education of Oppressed (1973) में प्रस्तुत किया है, नहीं अमल में लाया जाता, भारतीय समाज का शोषण और अन्य समस्याओं का अन्त नहीं हो पायेगा।

आज सम्पूर्ण विश्व में यह स्वीकार किया जा रहा है कि बजाय सिखाने–पढ़ाने (Teaching) पर ही जोर देने के, आवश्यकता इस बात की है कि हर कहीं सीखने का वातावरण (Learning–Enviroment) तैयार किया जाये। जिसमें सीखने वाला स्वयं विभिन्न प्रेरणाओं से प्रेरित होते हुए तथा विविध प्राकार के ज्ञान के अवसर प्रस्तुत करने वाली संस्थाओं, समितियों व औपचारिक व अनौचारिक व्यवस्थाओं का लाभ उठाते हुए अपने लक्ष्यों की ओर अपनी गति से बढता जाये |

विश्वभर में जो महान् आश्चर्यजनक वैज्ञानिक प्रौद्योगिक विकास हो रहे हैं उनकी चुनौतियाँ भी भारतीय शिक्षा को स्वीकार करनी है। स्पर्धा के इस युग में भविष्य के भारत की शिक्षा को अत्यंत उच्च कोटि का बनना ही पड़ेगा। वरना हम दुनिया के प्रगतिशील देशों से काफी पीछे रह जायेंगे। यदि हमने अपनी शिक्षा संस्थाओं को आगामी 5–7 वर्षो में ही बहुत कियात्मक भावी चेतना और तर्कपूर्ण सोच–विचारों के आधारों पर नहीं सुधारा, तो भार का भविष्य निःसन्देह भयंकर रूप से धूमिल हो सकता है।

इस प्रकार की चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करने वाली शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं का स्वरूप निम्नानुसार बनाना होगा

1. बहुत भारी विशाल पैमाने पर टेलीविजन, वीडियो तथा रेडियो का उपयोग करते हुए हमें सभी आयु वर्गो व क्षेत्रों के लोगों को शिक्षित करना होगा ।
2. वर्तमान शिक्षा संस्थाओं को चौबीस घंटों, पारियों में चलाकर, हमें उनके भवनों व साधनों का पूर्णतया उपयोग शिक्षा प्रसार के लिए करना होगा ।
3. विभिन्न स्थानों पर परम्परागत प्रकार के स्कूल कॉलेज खोलते रहने की अपेक्षा, हमें सीखने के जाल (Learning webs) निर्मित करने होंगे ।
4. विभिन्न प्रकार की संस्थाओं, पुस्तकालयों, अजायबघरों, रोजगार के. कार्यालयों, जन प्रसारण के केन्द्रों, कल–कारखानों के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क बनाना होगा । अनौपचारिक शिक्षा (Non–formal Education) की व्यवस्थाओं से खुले विश्वविद्यालयों, पत्राचार पाठ्यक्रमों, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को बहुत विस्तृत पैमाने पर बढ़ाना होगा।
5. शिक्षा संस्थाओं के प्रयोगों, नवाचारों (Innovations) तथा नये विचारों के परीक्षण की प्रयोगशालाएँ बनानी होगी।

17.7 भावी भारतीय शिक्षक (Indian Teacher in Future)

भविष्य के भारतीय शिक्षकों को आजकल के सामान्य शिक्षकों की तुलना में बहुत अधिक परिवर्तित और नये प्रकार का होना आवश्यक होगा, अन्यथा वे भावी समाज में नेतृत्व नहीं कर पायेंगे ।

भविष्य का सफल भारतीय शिक्षक ऐसी विशेषताओं से सम्पन्न होगा :–

1. जो सार्थक परम्परागत मूल्यों और आवश्यक नये मूल्यों का सही सन्तुलन अपने व्यक्तित्व में रखता हो।
2. वह न केवल अपने विषय में अपितु विभिन्न विषयों में उत्कृष्ट स्तर का पांडित्य रखता हो।
3. वह विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक कुशलताओं में दक्ष हो।
4. वह सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक सुधार तथा भविष्य के विषय में सशक्त सामाजिक दार्शनिक सैद्धान्तिक आस्था रखता हो।
5. वह ज्ञानार्जन व ज्ञान प्रदान करने की विभिन्न विधियों व नई कुशलताओं में दक्षता रखता हो ।
6. जो विषय सामग्री को रखने–रखाने के स्थान पर नित्य हो रहे ज्ञान के विस्फोट में उपयुक्त सामग्री का चयन करना जानता हो।
7. जो पाठ्यक्रम के निर्माण, टेलीविजन व रेडियो के पाठों के निर्माण व अन्य शिक्षण उपकरणों के प्रयोग में दक्ष हो।
8. जो अधिकारवादी या निरंकुश व्यक्तित्व वाला शिक्षक होने के स्थान पर सहृदय प्रेरणादायक, जनतन्त्रीय शिक्षक हो।
9. जो विभिन्न प्रकार की संस्थाओं, समूहों व समितियों से उत्तम तालमेल रख सकता हो ।
10. जो आत्मा को झकझोर देने वाली शिक्षा को यथार्थता और पूर्ण आस्था के साथ प्रदान कर सके ।

17.8 भविष्य में क्या नये शैक्षिक परिवर्तन आवश्यक होंगे (Do we need Educational Change in Future?)

हमारी नयी शिक्षा नीति, जो 1986 में लागू की गई है, में यह बतलाया गया है कि भारतीय शिक्षा के प्रत्येक पक्ष में सुधार व नवाचार का समावेश किया जायेगा जिससे भविष्य का भारतीय समाज स्वस्थ, प्रसन्न व सुदृढ़ हो। आपको नयी शिक्षा के इस दस्तावेज को अवश्य पढ़ना चाहिए । आज उसमें देखेंगे कि शिक्षा संस्थाओं के संगठन, प्रशासन व्यवस्थाओं, पाठ्यक्रमों, कार्य–कलापों, मूल्यों, साधन–सामग्रियों शिक्षक–प्रशिक्षण, अनौपचारिक शिक्षा व व्यवसायिक शिक्षा जैसे विभिन्न विषयों पर कई महत्वपूर्ण विचार उक्त दस्तावेज में प्रस्तुत किये गए हैं ।

पिछले अनुच्छेदों में कई महत्वपूर्ण आवश्यक शैक्षिक परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है। उनके अतिरिक्त निम्नांकित परिवर्तन भी किये जा सकते हैं –

1. नई शिक्षा नीति में भी शिक्षा के पुराने प्रारूप को बदलने की बात नहीं कही गई है । आवश्यकता है पुराने प्रारूप को तुरन्त बदलने की।

2. पावलों फेरे के सशक्त क्रान्तिकारी विचारों से उत्पन्न आत्मा को झकझोर देने वाली शिक्षा का प्रारूप भारत में यथाशीघ्र लागू किया जाये।
3. भारतीय शिक्षा जगत की वर्तमान कमजोरियों–भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, लापरवाही, कर्तव्यच्युतता, दलबन्दी, घटियापन तुरन्त समाप्त किये जायें ।
4. निजी और कई सहायता प्राप्त संस्थाओं में जो आर्थिक शोषण शिक्षकों व विद्यार्थियों का आज हो रहा है उसे समाप्त किया जाये ।
5. सभी स्तरों के पाठ्यकमों में नवीनता व भविष्योन्मुखता को लाया जाये ।
6. शिक्षण विधियों व शिक्षा के उपकरणों में सुधार व नयापन लाया जाये ।
7. शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा–संस्थाओं, शिक्षकों के कार्य तथा विद्यार्थियों की प्रगति का एक सही व कठोर मूल्यांकन समय–समय पर हो।
8. परीक्षा प्रणाली के दोषों को पिछले 40 वर्षो से दोहराया जाता है परन्तु उसे न तो साहसपूर्वक समाप्त ही किया जाता है और न सुधारा ही जाता है। 21वीं शताब्दी में भी यदि बोर्डो और विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में नकलबाजी, धांधलीपूर्वक उत्तर–पुस्तिकाओं का मूल्यांकन, तृतीय श्रेणी व असफल छात्रों के अनुपात की अधिकता, परीक्षकों की नियुक्तियों में राग–द्वेष आदि चलता रहेगा तो फिर हमारी भविष्य की शिक्षा भी चौपट ही हो जायेगी। तुरन्त अभी से हमें इस दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे।
9. भविष्य की शिक्षा को सभी वर्गो, आयु समूहों, लिंगों, क्षेत्रों के लिए कार्य करना है । अत: वह बहुत विविधता वाली व प्रभावशाली हो । हमारे पाठ्यकमों में विविधता व उपयोगिता के तत्वों का बहुत अधिक विकास करना होगा।
10. भविष्य की शिक्षा को मूलत: सही प्रकार के मूल्यों की शिक्षा होना आवश्यक है । इसके लिए समुचित व्यवस्थित ढंग से विशाल पैमाने पर व्यवस्थाएं करनी होंगी।

आप इस विषय में सोचिये । गम्भीर चिंतन कीजिये, अपने साथियों से विचार–विमर्श कीजिये तथा यह तर्कपूर्ण निर्णय कीजिये कि भविष्य के भारतीय समाज में कैसी शिक्षा व्यवस्थाओं का होना आवश्यक होगा ।

17.9 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने यह बताया है कि समकालीन विश्व में जिस द्रुतगति से विभिन्न प्रकार के अप्रत्याशित आविष्कार और खोजें नित्य–प्रति हो रहे हैं, उनसे यह दृढ़ संकेत मिलता है कि भविष्य में विश्वभर में अनेकानेक प्रकार के सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक विघटन की अजीब प्रकार की गम्भीर समस्याएँ उत्पन्नहो सकती हैं । उनसे हमकों एक भयंकर प्रकार का सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक झटका लग सकता है। उससे बचने के लिए आवश्यक है कि भविष्य के महत्व को समझा जाये, भविष्य की सम्भावनाओं के प्रति चेतना या सजगता विकसित की जाये तथा सभी लोगों को, विशेषकर नयी पीढ़ी को उसका सामना करने तथा भविष्य को सीखने के एक संसाधन (Learning Resource) के रूप में प्रयोग करने का महत्व और ज्ञान प्रदान किया जाये । हमने भविष्य चेतना को विकसित करने के लिए विभिन्न उपायों का भी उल्लेख किया है ।

समकालीन भारतीय समाज की परिवर्तन सम्बन्धी विशेषताओं और समस्याओं की पृष्ठभूमि में हमने यह बताने का प्रयास किया है कि हमारे समाज की भविष्य की शिक्षा की

क्या–क्या मांगे हैं और पूर्ण करने के लिये हमें निकट भविष्य में ही क्या–क्या सुधरी हुई व नयी शिक्षा–व्यवस्थाएँ लानी होंगी?

17.10 मूल शब्द और सम्प्रत्यय

1. **Futurology** भविष्यशास्त्र : एक अन्तर–अनुशासनीय अध्ययन–जो प्रकृति, कला और विज्ञान दोनों हैं भविष्य का अध्ययन।
2. **Futuristic** भविष्य का अध्ययन Futurology का पर्यायवाची व अत्यन्त प्रचलित शब्द।
3. Future Consciousne : भविष्य चेतना भविष्य के प्रति सजगता, जागरूकता अथवा झुकाव ।
4. **Future Focused Role Image (F.F.R.I.)** : भविष्योनमुखी भूमिका की झांकी भविष्य में व्यक्ति विशेष को क्या उत्तरदायित्व निर्वाह करना होगा, इसके बारे में गम्भीर पूर्वानुमान ।
5. **Cope–ability** : अप्रत्याशित घटित होने वाली घटनाओं या बदली हुई परिस्थितियों में भी सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता जो भविष्य में बहुत अधिक आवश्यक होगी ।
6. **Transience** : अस्थायी, तेजी से लुप्त या नष्ट होने की अनुभूति ।
7. **Throw away culture** : शीघ्रतापूर्वक वस्तुओं का उपभोग करने और तत्पश्चात् उन्हें बेकार समझकर बाहर फेंक देने की प्रवृत्ति जो आजकल के धनवान औद्योगिक समाजों में देखने में आ रही है ।
8. **Learning Resoures** : सीखने की सामग्री । अब भविष्य को सीखने की सामग्री समझा जा रहा है ।

17.11 प्रगति का मूल्यांकन (Evalution)

1. निम्नांकित कथनों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिये

   (1). "भविष्य एक महत्वपूर्ण सीखने की सामग्री है ।"(टौफलर)

   "Future is an Important Learning Resource"

   (2). शिक्षा में भविष्यवाद का मूल उद्देश्य भविष्य की शानदार, जटिल, सुव्यवस्थित, सही छवियों का निर्माण करना नहीं है, बल्कि सीखने वालों को वास्तविक जीवन के संकटों, अवसरों और खतरों के साथ सामंजस्य स्थापन करने में सहायता देना है । (टौफलर)

   "The ultimate purpose of futurism is not to create elegantly complex, well ordered, accurate image of the future, but to help learners cope with real life crises, opportunities and peils."

2. आपके विचार से भविष्य की भारतीय शिक्षा की क्या–क्या महत्वपूर्ण मांगे (Demands) होंगी?

   (1).

   (2).

In your opinion what will be the important demands of Indian Education?

(1).

(2).

3. भविष्य के भारतीय शाला–शिक्षक में कौन–कौन सी विशेषताएँ व कुशलताऐ आवश्यक समझी जायेंगी?

(1).

(2).

(3).

(4).

(5).

(6).

(7).

(8).

(9).

(10).

What characteristics and skill will be necessary in future Indian school teacher?

(1).

(2).

(3).

(4).

(5).

(6).

(7).

(8).

(9).

(10).

4. आपके शहर या गांव की उस प्राथमिक पाठशाला को याद कीजिये जिसमें आपने प्राथमिक शिक्षा पाई थी। सन् 2010 में आप उस पाठशाला का स्वरूप कैसा देखना चाहेंगे? लगभग एक पृष्ठ में अपनी कल्पनाओं को प्रस्तुत कीजिये।

17.12 संदर्भ तथा आगे अध्ययन हेतु पुस्तकें व लेख

1. Toffler,Alvin,**FutureShock**. NewYork, Rendom House, 1970.

2. Toffler,Alvin, (Ed.) **Learning for Tommorow**

3. Tofllen,Alvin **The Third Wave**, London, Pan Books, 1980

4. husein Torsten, **Education in the Year 2000**,Stockholm, University of Stockholm, 1972
5. **Learning To Be**, Paris, UESCO, 197
6. Adisheshiah, Malcolm **Indian Education in 2001**, New Delhi N.C.E.R.T, 1972
7. Seth, S.C., **"Education in An outlook for India's Future(200A.D)** New Delhi, National Committee in Science & Technology, 1978, pp. 153–154
8. Friere Paolo Pedalogy of the Oppressed.
9. Ruhela, S.P. **Trends of Social Change and Future Demand of Education**, paper Presented to the "Futurology Awareness programme" Algappa university, Karaikudi, May 11–13, 1968 (Mimeographrd)
10. Ruhela, S.P. (Ed.), Human Values and Education, New Delhi, Sterling Publishers, 1986.
11. रूहेला, सत्यपाल, "भविष्यशास्त्र तथा शिक्षा का भावी स्वरूप", **एल.के.ओड़** (सम्पादित) **शिक्षा के नूतन आयाम**, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1988 (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ 52–59

ISBN - 13/978-85-8496-334-2